गुरु रामदास जी की वाणी में लोक-काव्य रूप

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

के भाषा संकाय के अन्तर्गत

पीएच.डी. (हिन्दी) की शोध-उपाधि

हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

निर्देशिका

नीकौशल

(डॉ.) नीतू कौशल

अस्सिटैंट प्रोफेसर, (हिन्दी) विभाग

पंजाबी विश्वविद्यालय

पटियाला।

शोधार्थी

पवनदीप कौर

पवनदीप कौर

हिन्दी विभाग

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

2023

विषयानुक्रमणिका

भूमिका **i-viii**

प्रथम अध्याय **1-24**

1.0 काव्य, काव्य रूप और लोक-काव्य रूप तथा उनका उद्भव और विकास

द्वितीय अध्याय **25-47**

2.0 गुरु रामदास जी का जीवन, उनकी वाणी और उसमें प्रयुक्त लोक-काव्य रूपों की युगीन पृष्ठभूमि

तृतीय अध्याय **48-71**

3.0 गुरु रामदास जी की वाणीः भावगत स्वरूप

चतुर्थ अध्याय **72-101**

4.0 गुरु रामदास जी वाणी में प्रयुक्त संस्कारगत लोक-काव्य रूप

4.1 पहरे

4.2 घोड़ियाँ

4.3 लावां

पंचम अध्याय **102-115**

5.0 गुरु रामदास जी की वाणी में यात्रागत लोक-काव्य रूप

5.1 करहला

5.2 वणजारा

छठा अध्याय **116-138**

6.0 गुरु रामदास जी के काव्य रूप वारां और सोलहे का अध्ययन

सप्तम अध्याय **139-186**

7.0 गुरु रामदास जी की वाणी का शिल्प

उपसंहार **187-192**

संदर्भ ग्रंथ सूची **193-203**

प्रथम अध्याय

1.0 काव्य, काव्य रूप और लोक-काव्य रूप तथा उनका उद्भव और विकास

व्यक्ति और समाज का संबंध बहुत घनिष्ठ होता है। समाज में रहकर वह स्वयं का विकास करता है। समाज व्यक्ति के जीवन पर स्पष्ट रूप में प्रभाव डालता है क्योंकि समाज में घटित होने वाली परिस्थितियों से उसका संबंध होता है और इन्हीं परिस्थितियों से उपजने वाले प्रभावों से वह अछूता नहीं रह सकता। व्यक्ति की ही भांति रचनाकार भी समाज के प्रभाव को अनदेखा नहीं कर सकता क्योंकि लेखक को लिखने की प्रेरणा समाज से मिलती है क्योंकि लेखक समाज में रहता है और समाज से विमुख होकर वह साहित्य की रचना नहीं कर सकता। साहित्य के माध्यम से वह अपने भावों को संयम रूप में प्रकट करता है। साहित्य के अंतर्गत वह सब कलात्मक अभिव्यक्तियां शामिल हैं जो रचनाकार को प्रेरित करती हैं इसीलिए वह अपने जीवन के अनुभवों को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकट करता है। रचनाकार अपने अनुभवों को प्रकट करने के लिए साहित्य की किसी भी विधा का आश्रय ले सकता है। सभी साहित्य विधाओं मे से काव्य ही एक ऐसी विधा है जो सब से अधिक रस प्रदान करती है। कवि काव्य के माध्यम से कल्पना का सहारा लेकर अलग-अलग प्रकार के सुंदर विचारों के साथ मनुष्य जीवन की विभिन्न अनुभूतियों की झांकियों को प्रस्तुत करता है। काव्य एक ऐसा माध्यम है जिसके ज़रिए रचनाकार अपने आप को भूल कर चिंतन में खोकर कल्पना के सहारे जीती जागती प्रतिमाओं को अपने छंदों, शब्दों के सहारे साकार कर देता है। "काव्य संसार के प्रति कवि की भाव प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की श्रेय को प्रेय देने वाली अभिव्यक्ति है।"[1] कवि साधारण मनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक भावुक और विचारशील होता है क्योंकि वह प्रकृति तथा अपने वातावरण को जिस नज़र से देखता है उससे आम व्यक्ति नहीं देख सकता इसीलिए

[1] गुलाब राय, काव्य के रूप, (दिल्लीः आत्मा राम एण्ड संस, कशमीरी गेट, 1989) , पृष्ठः 13.

वह अपने अनुभव को अपने तक सीमित नहीं रखना चाहता। वह अपने काव्य के माध्यम से अनुभूतियों को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है कि विधाता की इस नाशवान सृष्टि को भी अमरता प्रदान कर देता है और उसे पढ़ने वाले पाठकों, रसिकों को आनंद से अभिभूत करने के लिए पाठक के स्तर पर जाकर उसके भावों के अनुरूप ही भाव प्रकट करता है। इसके लिए कवि का सहृदय होना बहुत ज़रूरी है तभी वह काव्य सृजन कर सकेगा और उसके काव्य सृजन की सार्थकता इसी से है कि कवि पाठक के अंदर भी अपनी रचना के माध्यम से अनुभूति को प्रकट कर सके और अपनी अनुभूति को पाठक को समान रूप में ग्रहण करवा सके।

जीवन की विभिन्न घटनाओं सहयोगी या प्रतिरोधी परिस्थितियों के प्रभावों के कारण कवि का कोमल और संवेदनशील हृदय जिन अनुभूतियों को अनुभूत करता है वह बहुत सूक्ष्म तथा अमूर्त होती हैं जिसको वह भाषा और शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। अनुभूति के बिना काव्य नहीं रचा जा सकता और अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए रचनाकार काव्य सृजन करता है। कवि के द्वारा सही शब्दों का चयन और उनके अभिव्यक्त अर्थों की संप्रेषण क्षमता उस की सूक्ष्म और अमूर्त अनुभूति को अभिव्यक्ति का स्थूल रूप प्रदान करती है। अनुभूति का सूक्ष्म और अमूर्त रूप आम मनुष्य तथा पाठक की बुद्धि की सीमा से दूर होता है इसीलिए कवि अनुभूति के लिए प्रयुक्त अभिव्यक्ति के स्थूल माध्यम को पहल देने लगता है और काव्य सृजन की ओर अग्रसर हो जाता है। काव्य सृजन की यह सारी प्रक्रिया कवि की आत्मानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति से संबंधित अलग-अलग काव्य रूपों पर निर्भर करती है।

हमारे चारों ओर संसार की सभी वस्तुएं पदार्थक रूपों के माध्यम से ही प्रकट होती हैं। संसार में कोई भी वस्तु रूप के बिना नहीं है। प्रत्येक वस्तु का बाह्य मूर्त तथा स्थूल अनुभव ही उसका रूप है जिसे हम देखते हैं क्योंकि रूप के कारण ही किसी वस्तु को निश्चित अर्थ मिलते हैं। कवि को अपने भावों को प्रकट करने के लिए रूप दृष्टि की ज़रूरत पड़ती है और यह रूप दृष्टि ही रचना का मुख्य अस्तित्व बनाती है जो कि रचना आरंभ करते समय शुरु होता है उसके अंत के साथ ही संपूर्ण होता है जितनी देर तक कवि का मन उत्सुक रहता है वह लिखता जाता है और रचना का रूप बनता जाता है। "रूप पहले ही बना बनाया सांचा नहीं है जिसमें कवि अपने विचार फिट कर देता है। रूप कवि के भीतर से एक दम बाहर नहीं आ जाता। काव्य और उसका रूप साथ-साथ पंक्ति दर पंक्ति जन्म लेते है।" [2] रूप एक तरह की क्रम में बंधी हुई व्यवस्था है। जिसके माध्यम से भाव निश्चित क्रम में संगठित होकर कलात्मक रूप ग्रहण करते हैं। रूप भाव का बाह्य आकार नहीं बल्कि उसने रचना का निर्माण किया होता है। ''रूप किसी वस्तु के अस्तित्व का वह आभ्यन्तर कारण है जिसके द्वारा उस वस्तु के उपादान को आकार प्राप्त होता है।"[3] साधारणतयः रूप से बाहरी आकार का अर्थ लिया जाता है क्योंकि बाहरी आकार या □ांचे से ही किसी वस्तु या पदार्थ का बोध होता है पर ऐसा है नहीं, रचना और रूप दो अलग-अलग वस्तुएं न होकर एक ही है जैसे स्वर्ण एक पदार्थ है पर जब उसे विभिन्न अलंकरणों में □ाला जाता है तो उसका रूप बदल जाता है यहाँ पर स्वर्ण तो स्वर्ण ही रहता है। इसी प्रकार रचना तो रचना ही रहती है चाहे वह कहानी के रूप में हो चाहे उपन्यास के

[2] ऊधम सिंह शाही, पंजाबी सूफी काव्य रुपः वैज्ञानिक अध्ययन, (अमृतसरः रवि साहित्य प्रकाशन हाल बाजार, प्र.सं 2003), पृः 10.

[3] हिन्दी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा, (वाराणसीः ज्ञानमंडल लिमिटेड, द्वितीय सं 1963), पृष्ठः 719.

चाहे काव्य के ''कला के क्षेत्र में रूप का अर्थ बाह्य आकार प्रकार न होकर किसी वस्तु को स्पष्ट करने उसे पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने, तथा उसके अस्तित्व का स्पष्ट बोध कराने की क्षमता से होता है।''[4] कवि अपनी अनुभूति के आधार पर अभिव्यंजना के सभी तत्वों को एकसूत्र में बांधकर इस तरह पेश करता है जिससे अभिव्यक्ति में पूर्णता आ जाती है।

काव्य की आत्मा अनुभूति का ज्ञान रूप के माध्यम से होता है। काव्य के तत्वों को कला पक्ष और भाव पक्ष के नाम से पुकारा जाता है। ''भाव पक्ष में काव्य के समस्त वर्णय विषय आ जाते हैं और कला पक्ष में वर्णन शैली के सब अंग सम्मिलित हैं। ये दोनों पक्ष एक-दूसरे के सहायक और पूरक होते हैं। कला का संबंध आकार या शैली से है, भाव का संबंध काव्य वस्तु से है। वस्तु और आकार एक दूसरे से पृथक नहीं हो सकते। कोई वस्तु आकार विहीन नहीं हो सकती और न आकार वस्तु से अलग किया जा सकता है।''[5] जैसे मनुष्य का शरीर विभिन्न अंगों के मेल से निर्मित होता है और इन अंगों का सही क्रम में होना ही शरीर को रूप देता है लेकिन जब आत्मा इन सब अंगों के माध्यम से अभिव्यक्त होगी तभी शरीर का जन्म होगा। ''कवि स्वानुभूति को प्रकट करने के लिए भाषा, छन्द, शब्द अलंकारादि का प्रयोग करता है और उसकी अनुभूति ही छन्दबद्ध काव्य में प्रस्फुटित हो उठती है। इसी छन्दोबद्ध काव्य को जब किसी विशेष क्रम, ंग, शैली संख्या या विषय के आधार पर सजाया जाता है तब काव्य रूप का जन्म होता है।''[6] जब अनुभूति को काव्यात्मक ंग से अभिव्यक्त किया जाता है तब अनुभूति को रूप प्राप्त होता है। अभिव्यक्ति और रूप

[4] हिन्दी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा, (वाराणसीः ज्ञानमंडल लिमिटेड, द्वितीय सं 1963), पृष्ठः 719.

[5] गुलाब राय, सिद्धांत और अध्ययन, (दिल्लीः आत्माराम एण्ड संस, कशमीरी गेट, प्र सं 1985), पृष्ठः 221.

[6] नजीर मुहम्मद, कबीर के काव्यरुप,(अलीगढ़ः भारत प्रकाशन मंदिर, 1971), पृष्ठः 12.

का गहरा संबंध है क्योंकि अनुभूति की अभिव्यक्ति ही रूप धारण करती है। काव्य रूप विषय की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। अनुभूति के अनुकूल ही अभिव्यक्ति होनी चाहिए अन्यथा उसकी प्रेषणीयता में पूर्णता नहीं आएगी।

कवि के दृष्टिकोण का प्रभाव काव्य रूप पर पड़ता है। ''काव्य रूप कवि की मनोवृति विशेष से ही बनता है। अनुभूति कवि के भीतर भिन्न-भिन्न मानसिक चित्रों में होकर अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करती है और अन्त में यह चित्र एकतान होकर एक सम्पूर्ण रूप की सृष्टि कर देते हैं। कवि की अनुभूति पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हो जाती है और काव्य रूप को जन्म मिल जाता है।''[7] एक काव्य रूप किसी एक तरह की अनुभूति को अभिव्यक्त कर सकता है। एक प्रकार की अनुभूति सभी प्रकार के काव्य रूपों में □ल कर एक सी प्रभावात्मकता नहीं ला सकती। कवि विषय के अनुरूप ही काव्य रूप ग्रहण करता है क्योंकि हर बार कवि की अनुभूति एक सी नहीं होती। ''पूर्ण विचार ही अपने अनुरूप पूर्ण रूप का सृजन कर सकते हैं। आंतरिक पूर्णता ही बाह्य पूर्णता को जन्म देती है। स्पष्ट विचार ही स्पष्ट बिंबों के साथ मिल कर पूर्ण रूप का सृजन करते हैं।''[8] कवि भाषा के माध्यम से विभिन्न बिम्बों के सहयोग से जिस निश्चित आकार प्रकार या विधान से अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त कर उसे निश्चित स्वरूप और भिन्नता प्रदान कर सम्प्रेषणीय बनाने का प्रयत्न करता है उसे काव्य रूप कहते हैं। प्रथम प्रकार के कवि की अनुभूति काव्य रूप के नये साँचे को तैयार करती है, द्वितीय प्रकार के कवि किसी काव्य रूप के समान अपनी अनुभूति को □ाल देता है और तृतीय प्रकार के कवि काव्य रूप को ही अपनी अनुभूति के अनुरूप □ाल लेता है।

[7] रवीन्द्र भ्रमर, हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व, (दिल्लीः भारती साहित्य मंदिर, 1961), पृष्ठः 16.

[8] ऊधम सिंह शाही, पंजाबी सूफी काव्य रूपः वैज्ञानिक अध्ययन, (अमृतसरः रवि साहित्य प्रकाशन, हाल बाजार, प्रं सं 2003) पृष्ठः12.

इन तीनों में से प्रथम और तृतीय प्रकार के कवि ही विकास की ओर अग्रसर होते है, द्वितीय प्रकार के कोई विशेष बदलाव नहीं ला सकते। जब कवि की अनुभूति काव्य रूप के नये साँचे को तैयार करती है तो तब वह किसी रूप आकार को सामने रख रचना नहीं करता बल्कि उसके विचारों ने, उसकी अनुभूति ने, अपने अनुरूप ही रूप का सृजन करना होता है और जब विभिन्न कवियों के द्वारा उस रूप का प्रयोग बार-बार रचना करने के लिए किया जाता है तो वह रूप एक प्रकार का साँचा बन जाता है जो विशेष प्रकार के विचारों को प्रकट करने के लिए रूढ़ हो जाता है। तृतीय प्रकार के कवि किसी साँचे को अपनी अनुभूति के अनुरूप ाल लेता है तो वह किसी प्राचीन परम्परा प्रयुक्त आधार पर प्रस्तुत होकर अपनी रचना के माध्यम से विषय वस्तु को एक नया ाँचा दे रहा होता है। यद्यपि यह साँचा नया नहीं पुराना होता है फिर भी नये प्रयोग के कारण उसके पुराने प्रचलन की पुनरावृति होती है। पुराने के माध्यम से नये विचार प्रस्तुत होते हैं और उसकी जनप्रियता को नवीन आधार मिलता है। ‘‘काव्य रूप किसी काव्य के उस ाँचे या उस आवृति को कहेंगे जिसके माध्यम से कवि की कल्पना शब्द मुख्र होकर साकार होती है।’’[9] कोई काव्य रूप वस्तुतः किसी काव्य रचना के उस समग्र रूप का द्योतक है जो पूर्ववर्ती परम्परा प्रचलित प्रयोग और सुनिश्चित आकार के कारण उक्त रचना को एक विशेष संदर्भ प्रदान करता है।“काव्य रूप एक दिशा में खड़ी रहने वाली नियमबद्ध सीमा नहीं है जब कोई प्रतिभा सम्पन्न कवि काव्य रूपों की परम्परा की परवाह नहीं करता तो वह अपने विचारों अनुसार पूर्ववर्ती परम्परा को नया रूप देता है तो वह काव्य-रूप का नया जन्म होता है। ‘‘जब कोई कवि अपने विचार और अनुभव विभिन्न तरीकों से अपनी विभिन्न कविताओं में

[9] रवीन्द्र भ्रमर, हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व, (दिल्लीः भारती साहित्य मंदिर, 1961), पृष्ठः122.

समायोजित करता है तो उस विशेष तरीके को हम उनका रूप अथवा काव्य रूप कहते हैं।'' [10] कवि अपनी अनुभूति को अपने ढंग से ढालकर विभिन्न प्रकार के काव्य रूपों में प्रस्तुत करता हे। कभी जो काव्य रूप एक काल विशेष में प्रचलित होता है वही आने वाले कालों में अपना प्रचलन छोड़कर अनुपयुक्त सिद्ध होता है और कवि नये विचारों को विशेष ढंग से प्रस्तुत कर काव्य रूप को नया जन्म देता है।

इस तरह काव्य श्रेय को प्रेय रूप देता है और रूप का तात्पर्य उन समस्त तत्वों से समन्वित संघटित आकार से समझना चाहिए जिससे किसी रचना के विशेष गुणों का निश्चय होता है। कवि इसी निश्चित आकार प्रकार या विधान से अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त कर उसे निश्चित स्वरूप और भिन्नता प्रदान कर सम्प्रेषणीय बनाने का प्रयत्न करता है उसे काव्य रूप कहते हैं। इस तरह काव्य रूप अलंकरण या सजावट नहीं है यह भाव को स्पष्ट करने की निश्चित प्रणाली है।

लोक काव्य रूपः-

साहित्य मानव जीवन एवं लोक मानस की सहज अभिव्यक्ति है। साहित्य में समकालीन विचारों एवं लौकिक मान्यताओं को स्वाभाविक रूप से देखा जा सकता है। साहित्य और लोक जीवन का अन्योन्याश्रित संबंध रहता है। यही कारण है कि लोक भूमि से परिचित हुए बिना एवं उसे समाहित किये बिना श्रेष्ठ एवं कालजयी साहित्य का सृजन नहीं किया जा सकता। इसलिए साहित्यकार अपने साहित्य को लोक के तत्वों से सजाकर लोकप्रिय बनाता है। ''किसी रचनाकार को जब भी जनता के नज़दीक जाने की ज़रूरत पड़ी और किसी प्रकार का धार्मिक, सामाजिक या कोई और

[10] सुमन राजे, काव्य रूप सरंचनाः उद्भव और विकास, (कानपुरः साहित्य रतनालय,प्र सं 1989), पृष्ठः 18.

उपदेश लोगों को देना चाहा तो साहित्य को लोक साहित्य के तत्वों द्वारा अभिमंत्रित करके लोक प्रिय बनाने की कोशिश की।''[11] रचनाकार सहज रूप में ही लोक सामग्री का प्रयोग कर जाता है क्योंकि वह लोक में रहता है उसके काव्य का सबसे बड़ा गुण अनुभूति की प्रधानता होती है। वह लोक का कवि होता है इसलिए उसके पास अनुभूति का विशाल भण्डार और हृदय को स्पंदित कर देने वाली शक्ति होती है। लोक काव्य इसी भावों की कोमलता और स्पन्दन के कारण परम्परानुसार साधारण जनता के कण्ठों में निवास करता है। "लोक काव्य लोक मानव की सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। हमारी संस्कृति की सच्ची झलक यदि कहीं प्राप्त हो सकती है तो वह लोक काव्य में ही। लोक काव्य में मानव जीवन की गंभीर अभिव्यंजना शक्ति छिपी हुई है। लोक काव्य हमारे जातीय विकास के इतिहास की अमूल्य निधि है। जातीय हृदय की उथल पुथल, सुख-दुख, संयोग वियोग आदि की भावनाएं भिन्न-भिन्न प्रथाओं के गीतों के रूप में हुई है।''[12] लोक काव्य मानव के हृदय में उठने वाले भावों की सहज अभिव्यक्ति है जो लोक द्वारा स्वीकृत होती है। लोक काव्य लोकचित की सामूहिक चेतना तथा अनुभूतियों का साहित्य है। इसमें जीवन के राग विराग, संयोग वियोग का प्रतिबिंबत रूप प्रकट होता है। अनुभूतियों का स्वच्छ, निष्कपट, सरल रूप लोक काव्य में ही अभिव्यक्त होता है। ''मौखिक साहित्य में प्रचलित परंपरागत गान शैलियों पर आधारित काव्य भेदों को जिनके माध्यम से लोक जीवन की अभिव्यक्ति होती है, लोक काव्य रूपों की श्रेणी में रखा जाएगा।'' [13] लोक काव्य मौखिक संचारित कला है जो एक

---

[11] रवीन्द्र भ्रमर, हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व, (दिल्लीः भारती साहित्य मंदिर, 1961), पृष्ठः 9.

[12] नुपेन्द्र प्रसाद शर्मा, पद्मावत का लोकतात्विक अध्ययन,(पटनाः अनुपम प्रकाशन,प्र सं 1979), पृष्ठः 3.

[13] करनैल सिंह थिंद, लोकयान तथा मध्यकालीन पंजाबी साहित्य, (अमृतसरः रवि साहित्य प्रकाशन, प्र सं 1973), पृष्ठः137.

पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचरित होती रहती है और इसकी निरंतरता मनुष्य की स्मरण शक्ति और सामूहिक स्वीकृति के कारण संभव है।

लोक काव्य लोक जीवन की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति है। ''लोक काव्य की उत्पत्ति लोक मानस में ही होती है और यदि मानव की मानसिक हर्ष विषाद की चरमावस्था की अभिव्यक्ति से यह प्रारम्भ हुआ तो जैसे-जैसे उसका शब्द भंडार विकसित होता गया वैसे-वैसे लोक काव्य की शैली और उसकी विषय वस्तु की गहराई और बढ़ती गयी। समाज के लोग भावाव्यक्ति के लिए लोक काव्य का अनुकरण करने लगे। फिर वही लोक काव्य अगली पीढ़ी के लिए हस्तांरित हुआ और एक व्यक्ति की भावाव्यक्ति न रहकर लोक की भावाव्यक्ति बन गया।''[14] लोक काव्य जनमानस की सहज बुद्धि का रूप उजागर करने के साथ-साथ लोक की भावनाओं का भी सच्चा रूप प्रस्तुत करता है। लोक काव्य में जन-जन का विराट रूप दिखाई पड़ता है। लोक काव्य लोक जीवन का दर्पण होता है, जिसमें एक जीवन पूर्ण रूप से प्रकट होता है। लोक काव्य रूप अपने मूल गुणों के कारण लोक मानस की अभिव्यक्ति और स्वीकृत से जुड़े हुए हैं। मानव ने जब अपने भीतर उपजे आनन्द को शब्दों द्वारा व्यक्त किया तो लोक काव्य का जन्म हुआ। "लौकिक काव्य रूप लोक प्रचलित गान शैलियों अथवा लोक काव्य के विभिन्न प्रकारों अथवा लोक, गायन की विविध परिपाटियों की अनुकृति होते हैं।''[15] लोक-काव्य रूपों से भाव लोक गीतों के विशेष रूप हैं। जिनको लोक समूह ने स्वीकृति देकर सर्वप्रिय बना लिया होता है। ''जन साधारण में रूचि देखकर ही विशिष्ट साहित्य के रचयिता बार-बार इन काव्य रूपों को अपनी काव्य अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते

[14] हरि सिंह पाल,ब्रजलोक काव्य समाजिक संदर्भ, (दिल्लीः नीरज बुक सैंटर, प्र सं 2005), पृष्ठः8.

[15] रवीन्द्र भ्रमर, हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व, (दिल्लीः भारती साहित्य मंदिर 1961), पृष्ठः122.

हैं।''[16] लोक चित की अभिव्यक्ति लोक-काव्य रूप हैं और कवि का संबंध लोक समूह से होता है। जब कवि के मन में भावों का बवंडर उठता है तो जिस लोक चित के साथ निरंतर रह रहा होता है जिस लोक संगीत, संवदेन शैली में वह जीता है, अनायास ही वह इन शैलियों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बना लेता है। कवि अपने भावों को लोक-काव्य रूप के इसी प्रचलित प्रयोग के अनुरूप ाल कर प्रस्तुत करता है।

इस तरह काव्य रूप कवि की अन्तः प्रेरणाभूत अमूर्त कल्पना का ही मूर्त रूप होता है। जब कवि की अमूर्त अनुभूति मूर्त रूप ग्रहण करती है वह तभी सफल कहलाता है। कवि सर्वप्रिय होने के लिए इन्हीं रूपों को लोक में प्रचलित काव्य विधाओं, लोक तत्वों का पुट देकर लोक प्रिय बनाता है क्योंकि वह लोक का प्रिय कवि बनना चाहता है इसलिए उसे आडम्बरों से रहित होना पड़ता है। वह अपने काव्य में लोक के हृदय को शुद्ध रूप से प्रतिबिंबत करता है। कवि लोक की सामग्री को नया रूप देकर अपनी रचनाओं का आधार बनाता है और वह परंपरा से पीढ़ी दर पीढ़ी चले आने वाले लोक काव्य को अपने अभ्यास तथा कल्पना के द्वारा नया रूप देता है। लोक काव्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को स्पर्श करता है। इसके माध्यम से हम लोक के आचार-विचार, रीति-रिवाज़, रहन-सहन की सुंदर झाँकी झाँक सकते है और कवि भी अपने काव्य की लोकप्रियता के लिए अपनी रचनाओं में सामाजिक जीवन में से आचारों, विचारों, भिन्न-भिन्न रीति रिवाजों का उल्लेख करता है। इस लिए कोई भी लेखक लोक से अनभिज्ञ नहीं रह सकता।

---

[16] करनैल सिंह थिंद, लोकयान तथा मध्यकालीन पंजाबी साहित्य, (अमृतसरः रवि साहित्य प्रकाशन, प्र सं 1973), पृष्ठः137.

काव्य शास्त्र में प्रचलित काव्यरूपों के अतिरिक्त कुछ ऐसे काव्य रूप भी है जिनका प्रयोग मूलतः लोक काव्य के लिए होता है। यह काव्य रूप शताब्दियों से लोक काव्य के माध्यम से जन साहित्य में प्रवाहमान होते आ रहें हैं। कवि भी इन काव्य रूपों को अपनी परंपरा से ही प्राप्त करता है और अपनी मौलिकता के अनुभव के आधार पर इन काव्य रूपों में विलक्षणता और विभिन्नता पैदा करता है। काव्य रूपों का उदय हमेशा लोक में से होता आया है। इसलिए कवि अपनी रचना में काव्य रूपों के प्रचलित रूप का प्रयोग करता है तांकि जनता उस लय भाषा को समझ सके जो कवि उन्हें समझाना चाहता है। यहाँ पर हम ऐसे ही लोक काव्य रूपों की चर्चा करेंगे जिनकी उत्पत्ति लोक में से हुई है-

पहरेः

पुराने समय में लोग दिन रात के समय का अनुमान पहर के हिसाब से लगाते थे। एक पहर तीन घंटे का माना जाता है। चार पहर का दिन और चार पहर की रात मानी जाती थी। दिन और रात आठ पहरों के मेल से बनते थे। काहन सिंह नाभा के अनुसार, ''दिन रात का आठवां भाग, तीन घंटे का समय।''[17] सुबह 6 बजे से लेकर शाम के 6 बजे तक के समय को दिन के चार पहरों में बाँटा जाता था और शाम में 6 बजे से लेकर सुबह के 6 बजे तक के पहरो को रात में बाँटा जाता है। ''लगभग तीन घंटे का समय, समय का माप।''[18] इस तरह समय को मापने के लिए दिर और रात के

[17] गुरशब्द रत्नाकर महान कोश, इन्साईक्लोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब 1960), पृष्ठः 798.

[18] पंजाबी यूनीवर्सिटी पंजाबी कोश, जोगा सिंह (सं), (पटियालाः पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी विश्वविद्यालय), पृष्ठः 538.

बारह-2 घंटो को चार-चार पहरों में बाँट लिया जाता था। प्रत्येक पहर तीन घंटे का होता था।

घोड़ियाँ:

लोक में शुरू से ही मंगलमयी अवसरों पर विभिन्न प्रकार के लोक गीत गाए जाते रहें हैं। विभिन्न-विभिन्न लोक गीतों को गाने के लिए विभिन्न प्रकार के अवसर निश्चित होते हैं। लोक गीतों की यात्रा का आगाज़ बच्चे के जन्म से ही शुरू हो जाता है। पंजाब में लड़के के विवाह पर 'घोड़ियाँ' नाम के गीत गाए जाते हैं। ''घोड़ी लोक काव्य में विवाह वाले लड़के की खुबसूरती, लड़के के परिवार की सामाजिक, आर्थिक खुशहाली का वर्णन कर उसके अच्छे भविष्य की कामना की जाती है।''[19] पंजाब में लड़के के विवाह के कुछ दिन पूर्व शाम के समय औरतों के द्वारा गाए जाने वाले गीत घोड़ियाँ कहलाते हैं। घोड़ा-घोड़ी का स्त्री लिंग है और घोड़ियाँ बहुवचन शब्द। काहन सिंह नाभा के अनुसार, ''शादी के अवसर पर बारात जाने के बाद और विवाह संस्कार से पहले दुल्हे को घोड़ी पर बिठा कर दुल्हन के घर जाते हैं इस रीति का नाम घोड़ी है। उस समय जो गीत गाए जाते हैं उनकी संज्ञा घोड़ियाँ है।''[20] इन गीतों को औरते समूह में लंबी हेक के साथ गाती हैं। ''विशेष प्रकार के भावों और विचारों को प्रकट करने वाली घोड़ियों में पंक्ति के आखिर वाले शब्द को विशेष लटका सहित गायन किया जाता है।'' [21] घोड़ियाँ बंद काव्य रूप में आती है। बंद काव्य रूप में सृजन की

---

[19] अमरजीत कौर कालकट (सं), रीता वाले गीतः विभिन्न सरोकार, (चण्डीगढ़ः त्रिलोचन पब्लिशरजस, 2018), पृष्ठः 9.

[20] गुरशब्द रतनाकर महानकोश, इन्साईक्लोपीड़िया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग,पंजाब, 1960), पृष्ठः 798.

[21] गुरनाम सिंह, गुरमति संगीत, प्रबंध और पासार, (पटियाला:पब्लिकेशन ब्यूरों ,पंजाबी विश्वविद्यालय, 2012), पृष्ठः 183.

प्रक्रिया बहुत धीमी गति से चलती है। ''बंद काव्य रूपों की श्रेणी में उन सभी गीत रूपों को शामिल किया जाता है जिनमें पुन:सृजन की प्रक्रिया बहुत धीमी गति और निश्चित नियमों के अधीन चलती है। जैसे घोड़ियाँ संस्कार गीत, विशेष रीति रिवाज़ों के साथ ही गाए जाते हैं। इनके सृजन की तत्काल ज़रूरत नहीं पड़ती। सृजक के पास गीत का सृजन करने के लिए शांति का माहौल होने के कारण उसका सारा ध्यान धैर्य के साथ सृजन करने में लगा होता है।''[22] इस काव्य रूप को गाने के लिए समूहगत उच्चारण की विधि अपनाई जाती है। सामूहिक स्वर और हेक का एकसार होना किसी भी प्रकार की पुनःसृजना को सीमित कर देता है।

गीत शुरू करने से पहले लड़के के विवाह पर पांच या सात दिन पहले घोड़ियाँ गानी ज़रूरी है। इसके बाद कोई भी गीत गाया जा सकता है। ''लड़के के विवाह की तुलना जंग जीतने के साथ की जाती है जैसे कोई राजा अपनी सेना के साथ किसी दूसरे प्रदेश पर जीत प्राप्त करने के लिए जाता है।''[23] घोड़ियाँ गा कर असली रूप में विवाह वाले लड़के को मानसिक तौर पर विवाह के लिए तैयार किया जाता है। घोड़ी चढ़ते वक्त लड़के की शान को विभिन्न तरीकों से बयान किया जाता है। लड़के के वस्त्र, उसके सेहरे, कलगी, जुत्ती तक की प्रशंसा की जाती है। पुराने समय में आने जाने के साधन इतने विकसित नहीं थे इसलिए बारात घोड़ियों और बैलगाड़ीयों पर जाती थी पर आधुनिक समय में केवल घोड़ी चढ़ाने की रसम की जाती है इसके बाद लड़का कार में बैठ जाता है लेकिन फिर भी पंजाब में लड़के के विवाह के कुछ दिन पूर्व

[22] नाहर सिंह (डॉ), लोक काव्य की सृजन प्रक्रिया, (चण्डीगढ़ः प्रताप मेहता, लोकायत प्रकाशन, प्र सं 2013), पृष्ठः 7.

[23] रुपिन्द्रजीत गिल्ल, विवाह रसमां और लोक गीत, (अमृतसरः वारिस शाह फाउडेरशन, प्र सं 2013), पृष्ठः 7.

घोड़ियाँ गाने की का प्रचलन पंजाब में आज भी देखा जा सकता है जहाँ पर घर की औरते और आस-पड़ोस की औरते घर के कामों को निपटा कर एकत्र होकर गीत गाती हैं।

लावां:

विवाह एक पवित्र बंधन है। यह बंधन एक संस्था है। विवाह के सम्पन्न होने के बाद पारिवारिक नींव का आरंभ हो जाता है। विवाह जीवन का केन्द्र बिंदु है। ''विवाह मानवीय जीवन की सृजनात्मक प्रक्रिया है जो मानवी पीढ़ी को आगे बढ़ाती है। इसमें औरत और मर्द दोनों का समान रूप में योगदान है। दोनों के आपसी संबंधों के ऊपर एक दूसरे का विकास निर्भर है। समाजिक जीवन में इन दोनों के मानवीय संबंधों को विवाह का नाम दिया गया है।''[24] संपूर्ण विश्व में अलग-अलग धर्मों को मानने वाले लोग बसे हुए है यह लोग विवाह के लिए अलग-अलग रीति रीवाज़ों का पालन करते हैं जो उस जगह निभाई जाती है। पंजाबी जीवन में सिक्ख परिवारों ने विवाह को पवित्र और अटूट बंधन माना है। सिक्ख धर्म में लावां विवाह की सबसे महत्वपूर्ण रीति है, इस रीति के बाद ही विवाह सम्पूर्ण माना जाता है। काहन सिंह नाभा के अनुसार ''जिस द्वारा पिता के घर से संबंध तोड़ कर पति के साथ जोड़ा जाता है।''[25] लावां की रीति विवाह के समय निभाई जाती है। सभी धर्मों में लावां का ढंग और संख्या अलग-अलग है। हिंदु धर्म में लावां में यह संख्या सात मानी जाती है और रात का समय उचित माना जाता है। सिक्ख धर्म में यह संख्या चार मानी जाती है

[24] अमरजीत सिंह गिल्ल, विवाह दीआ रहु रीतां ते पंजाबी लोक गीत, (अमृतसरः रवि साहित्य प्रकाशन, प्रं सं 2012), पृष्ठः 89.

[25] गुरशब्द रत्नाकर महान कोश, इन्साईक्लोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग,पंजाब,1960), पृष्ठः 798.

और दिन के समय लड़का-लड़का द्वारा धर्म और रीति के अनुसार इष्ट के चारों तरफ घूमकर लावां ली जाती हैं।

लावां वाणी हर सिक्ख के विवाह के समय पढ़ी जाती है। यह मनुष्य के जीवन में आनंद और खुशी लाने की पूर्ण रहनुमाई करती है। ‘‘लावां सिक्ख् धर्म में विवाह की रीति से संबंधित है, जिसको आनंद कारज कहा जाता है।"[26] लावां में उन गुणों तथा अवस्थाओं का वर्णन मिलता है जिनको धारण करके दम्पति हमेशा के लिए अपने जीवन को सुखमय बना सकता है। गृहस्थ धर्म में प्रवेश करने के लिए सिक्ख धर्म में निश्चित वाणी लावां है और इसी से महत्वपूर्ण पड़ाव विवाह को संपूर्ण माना जाता है। लावां का संबंध चाहे सिक्ख धर्म से है लेकिन फिर भी दुनिया का हर एक इन्सान चाहे वह किसी भी धर्म से संबंध रखता हो वह लावां में दिये उपदेशों को ग्रहण कर अपने जीवन को सफल बना सकता है।

करहलाः

पुराने समय में यातायात के साधन कम होने के कारण लोग एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए ऊँटों का प्रयोग यातायात के साधन के रूप में करते थे और व्यापारी लोग व्यापार करने के लिए ऊँटों पर समान लाद कर प्रदेशों में रोज़गार के लिए जाते थे। काहन सिंह नाभा के अनुसार, "करहल का मूल संस्कृत का क्रमेल शब्द है। सिंधी में करहों शब्द है जिसका अर्थ है, दीर्घ जंघ अथवा बड़ी टांगों वाला शुतर या

[26] अमृतपाल कौर, गुरमति काव्य, स्वरुप, सिद्धांत और स्थिति, (पटियालाः पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी विश्वविद्यालय, 2014), पृष्ठः 101.

ऊठ।"[27] इस तरह करहला शब्द का प्रयोग ऊँट के लिए किया जाता है। ''शाहपुर और जेहलम के थलों में आने जाने के लिए तथा समान को एक जगह से दूसरी जगह जाते समय होठी (ऊँट सवार) रास्ते में मनोरंजन के लिए जो गीत गाते थे, उसको करहला कहा जाता है।"[28] इस तरह ऊँट सवारों द्वारा गाए जाने वाले गीत एक अलग लोक-काव्य रूप में स्थापित हो गए।

करहला गीतों में प्रदेश की लंबी यात्रा और व्यापारियों तथा यात्रियों का अपने सज्जन मित्रों से बिछुडे होने के कारण इन गीतों में विरह की कसक और वैराग्य का स्वर गूंजता था। "सांदल बार तथा अन्य बारां के जांगली लोग अपने पूर्वजों को राजपुताने से आया बताते हैं और आज तक ऊँट के लिए "करहें" शब्द का प्रयोग प्रचलित है और आज भी राजपुताने के लोक गीतों में "ोला मारु" में "करहें", "करहलऊ", ''करहला'' या ''करहा'' शब्द का प्रयोग होता है।"[29] इस तरह राजपूत लोग जिनका क्षेत्र मारुथलों से संबंधित है वह आने जाने के लिए ऊँट प्रयोग करते हैं और उनमें ऊँट के लिए करहला शब्द का प्रयोग किया जाता है।

ोला मारु रा दूहा एक प्राचीन लोक प्रिय लोक गीत है। राजस्थान में इसका बहुत प्रचलन है। इसके नायक, नायिका ोला और मारवाणी के नाम साहित्य और बोल चाल में नायक-नायिका के अर्थों में प्रचलित हो गए है। ''सिंध गुजरात, मध्य भारत और मध्य प्रदेश के कई हिस्सों में इसकी कथा आज भी प्रचलित है। राजस्थान में यह आज के समय में भी ोली-ाढ़ी गाने वाली पेशवर जातियों के मुँह से कई

[27] गुरशब्द रत्नाकर महान कोश, इन्साईक्लोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग,पंजाब, 1960), पृष्ठः 225.

[28] पंजाबी लोकधारा विश्वकोश, सोहिदर सिंह वणजारा बेदी, (दिल्लीः नेशनल बुक शाप 2009), पृष्ठः1034.

[29] शेर सिंह शेर, बार दे ोले, (अमृतसरः हिन्द पब्लिशरज, 1954), पृः 6.

तरह के बिगड़े हुए रूपों में सुना जाता है।''[30] इस तरह हो सकता है कि मारूथलों में ऊँटों पर सवार यात्रियों तथा व्यापारियों द्वारा गाए जाने वाले लोक गीत ोला मारू के प्रेम से संबंधित हों। जिनको गाकर यात्री अपना मनोरंजन करते हैं और ोला मारू की प्रेम कहानी के यही गीत आगे चलकर करहला लोक-काव्य रूप में स्थापित हो गए।

वणजाराः

वणजारे व्यापार करने वाले सौदागर होते थे। ''एक जाति जो घूम फिर कर औरतों के हार सिंगार की वस्तुएं बेचती है। वणजारा शब्द का मूल संस्कृत के वणिज से है, जिसका अर्थ व्यापार से है।''[31] वणजारे एक जगह से दूसरी जगह व्यापार करने के लिए जाते रहते थे। सफर की कठिनाईयों को सहन करके भी लाभ प्राप्त करने के बारे में सोचते थे। ''मध्ययुग में वणिज, व्यापार इनके हाथ में था। मध्य भारत, दक्षिण, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और पंजाब में इनका बसेरा था। अंग्रेजों के भारत में आने के बाद आवाजाई के साधन बढ़ जाने के कारण इनके व्यापार को धक्का लगा। अब वणजारा शब्द घूम-फिर कर घर-घर जा कर वस्तुएं बेचने वालों के लिए रूढ़ हो गया।''[32] अंग्रेजों के भारत में आने से पहले इनका काम देश के अलग-अलग भागों में अनाज, मसाले तथा ज़रूरत की वस्तुए पहुँचाना होता था। अंग्रेजों के भारत में राज के बाद यातायात तथा व्यापार का कारोबार बहुत बढ़ गया, वस्तुएं एक जगह से दूसरी जगह जल्दी पहुँचने लगी तथा वणजारों का प्राचीन कारोबार बंद हो गया, फिर वह घर-घर घूमकर सामान बेचकर अपना जीवन निर्वाह करने लगे।

---

[30] शाकर पुरूषार्थी, ोला मारू रा दूहा, (पटियालाः भाषा विभाग,पंजाब,1960), पृष्ठः10

[31] पंजाबी लोकधारा विश्वकोश, सोहिदर सिंह वणजारा बेदी, (दिल्लीः नेशनल बुक शॉप, 2009), पृष्ठः 2084.

[32] गुरु ग्रंथ विश्वकोश, रतन सिंह, जग्गी, (पटियालाः पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी,2002), पृष्ठः 470.

पंजाब में वणजारों को लुबाणा जाति का माना जाता है। ''The labanas of punjab are also the descendants of vanjaras. In the outh Indian the labanas are called lambadis or lambanis. The term labana, labhan or lambadi are derived from "lavan" which means salt and the members of this tirbe were resdents of littoral areas and used to trade salt.''[33] लुबाणा जाति के नाम को लवणिक से उत्पन्न हुआ माना जाता है क्योंकि इनका मुख्य व्यापार लूण (नमक) का था। " The term labana appears to be derived from Lun (salt) and bana (Trade) and lubana, lobana, Labana or Libana was doubtless the great salt carrying and salt trading caste as the Banjara was the general carrier in former time. Indeed the labana is occasionally called a Banjara.''[34] एच.ए. रोज ने भी अपनी किताब '' ग्लासरी ऑफ पंजाब ट्राईबस एण्ड कास्टस'' में वणजारा जाति को लुबाणा से संबंधित बताया है जिनका व्यापार नमक का था और समय बीतने के साथ-साथ अब वह ज़रूरत की वस्तुएं बेचते हैं। इस तरह लुबाना जाति का दूसरा नाम वणजारा है जो कि घर-घर जाकर घूम-फिर कर वस्तुएं बेच कर अपना जीवन निर्वाह करते है।

वारांः

वार एक प्रसिद्ध पंजाबी लोक-काव्य रूप है। यह लोक-काव्य रूप पुरातन होने के साथ-साथ विशेष महत्वपूर्ण भी है। वीर रस से संबंधित साहित्य में वारां प्रमुख हैं। काहन सिंह नाभा के अनुसार, ''जंग युद्ध, युद्ध संबंधी काव्य, वह रचना जिसमें शूरवीरता

[33] शेर सिंह शेर, दि सिकलीगिरस ऑफ पंजाब (ए जिप्सी टाईब), (दिल्लीः स्टरलिंग पब्लिशरज प्राईवेट, 1966), पृः1.

[34] एच. ए. रोज, ए गलासरी ऑफ दि ट्राईबस एण्ड कास्टस ऑफ दि पंजाब एण्ड नारथ, वैस्ट फरंटीअर प्रोविंयस, जिलद 3, (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब, 1970), पृष्ठः 2.

का वर्णन हो।''[35] पंजाबी में वार काव्य रूप जिन अर्थों में प्रयोग किया जाता है वह यश करना या वारे जाना है। दुनियावी वारां बहादुरों की बहादुरी से संबंधित होती हैं।जिसमें दो योद्धाओं की कीर्ति को देखकर उनकी प्रशंसा की जाती है। "वार के लिए प्रमाणिक रूप पउड़ी है जिसमें वार की रचना की जाती है। पउड़ी एक लघु आकारी रचना है जिसमें विचार सीढ़ी के डण्डों के अनुसार रचित होते हैं एक विचार के बाद दूसरा विचार क्रमानुसार जुड़ता जाता है।''[36] जैसे योद्धा युद्ध भूमि में दुशमन के चक्रव्यूह के घेरों को एक के बाद एक करके भेदता हुआ निकलता जाता है वैसे ही वार में उसकी बहादुरी को क्रमनुसार चित्रित किया जाता है। "वार का आरंभ मंगलाचरण से होता है जिसमें वार रचयिता अपने इष्ट का ध्यान कर अपनी युद्ध कथा की भूमिका बनाता है, फिर युद्ध का वर्णन करने के लिए किसी प्रभावशाली युद्ध कथा को विषय बनाकर प्रयोग करता है और नायक का वर्णन करता है।''[37] वार उस काव्य रूप को कहा जा सकता है जिसमें बहुत उत्साह के साथ बाह्यमुखी तथा अंर्तमुखी संघर्ष का ऐसा चित्रिण किया जाए कि पढ़ने या सुनने वाले पाठक के भीतर एक नयी जागृति का संचार हो।

सोलहे:

सोलहा अंक प्रधान काव्य रूप है। यह उस रचना के लिए प्रयोग किया जाता है जिसके सोलह पद होते हैं। लोक में सोलह अंक को पूर्णता का आधार माना जाता है। जिस पुरुष में 16 कलाएं होती है वही संपूर्ण ब्रह्म ज्ञानी होता है।चंद्र अमावस्या से

[35] गुरुशब्द रत्नाकर महान कोश, इन्साईक्लोपीड़िया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग,पंजाब, 1960), पृष्ठः 1091.

[36] अमृतपाल कौर, गुरमति काव्य:स्वरूप सिद्धांत और स्थिति, (पटियालाः पब्लिकेशन ब्यूरो,पंजाबी विश्वविद्यालय, 2014),पृष्ठः 45.

[37] राजिन्द्रर कौर ,भाई गुरदास दीआं वारां (एक साहित्यक अध्ययन), (जालंधरः न्यू बुक कम्पनी,1971), पृष्ठः 48.

पूर्णिमा तक की यात्रा में 16 कला संपूर्ण करता है।''लहंदे (पाकिस्तान) में बच्चे के जन्म समय एक रीति प्रचलित है। जिसको सोहिला कहा जाता है। नवजन्में बच्चे की प्रतिभा को उजागर करने के लिए थाली में सोलह दीयों को जलाकर रखा जाता है और सोलह बार आरती उतारी जाती है,जैसे जैसे दीयों की संखया बढ़ती जाती है उसका व्यक्तित्व प्रतिभा सम्पन्न होने की क्षमता ग्रहण कर लेता है।''[38] इस तरह थाली में सोलह दीयों का रखा जाना और सोलह बार आरती उतारना,यह सोलह की संखया से संबंधित है। आरती उतारते समय जो खुशी के गीत गाए जाते हैं,वह सोहिला के नाम से जाने जाते हैं, यह भावना प्रधान गीत हैं जो कि सोहिला तथा सोलहा एक रीति का अंग बन गए हैं। सोहले में 16 बंद होते हैं पर इनकी वृति सोहिला वाली ही है। सोहिले की ही तरह सोलहे में भी शोभा तथा महिमा होती है।इस तरह यह मंगल गीतों के लिए रूढ़ हो गया जिनमें विशेष रूप में किसी की शोभा का ही वर्णन किया जाता है।

अत: काव्य कवि के अनुभव की चेतन अभिव्यक्ति है इस अभिव्यक्ति के माध्यम से ही वह समाज में एकात्मकता स्थापित करता है। वह समाज के नित्यप्रति सुख दुख के साथ जुड़ा होता है। समाज उसकी सोच को प्रभावित करता है। जज्बातों और बुद्धि की सूक्ष्म शक्ति द्वारा प्राप्त किये गए काव्य बोध को जिंदगी और समाज की एकात्मकता में बांधकर प्रकट करता है। इन्हीं जज्बातों को प्रकट करने के लिए उनकी अभिव्यक्ति के लिए उसे रूप की ज़रूरत पड़ती है। कवि के विचारों को असली शक्ति काव्य के माध्यम से मिलती है और काव्य में पूर्णता तब आती है जब उसे रूप मिल जाता है। सारा संसार विचारों से संबंधित ज्ञान रूप के साथ ही बंधा हुआ है क्योंकि

[38] सोहिंदर सिंह वणजारा बेदी,पंजाबी साहित्य इतिहास दी लोक रूढ़ियां, (नयी दिल्लीः लोक प्रकाशन,1982), पृष्ठः 40.

संसार का ज्ञान हमें रूप के द्वारा ही होता है। कवि को अपने विचारों के लिए सृजन की पहली प्रेरणा इस संसार में व्याप्त विभिन्न रूपों से ही प्राप्त होती है उसी से प्रेरित होकर वह लिखता है और अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। यहाँ पर महत्व है अभिव्यक्ति के उस विशिष्ट रूप का जिसमें वह प्रकटीकरण करता है। इन विशिष्ट काव्य रूपों को कवि अपने लोक से प्राप्त करता है और अपनी मौलिकता और अनुभव के माध्यम से इन में विलक्षणता पैदा करता है। लोक काव्य जनता के हृदय का उद्गार है यह परंपरा से प्राप्त और दीर्घजीवी है। यह अपनी निर्मल और स्वाभाविक प्रवृति के द्वारा विशिष्ट प्रकार की शांति और सुख प्रदान करता है। लोक काव्य में मानव मन की सच्ची भावनाओं की अभिव्यक्ति होने के कारण इस जैसी सरलता और सहजता अन्यत्र प्राप्त नहीं होती। यही सच्ची अभिव्यक्ति लोक काव्य के विभिन्न रूपों घोड़ियाँ, लावां, करहला, वणजारा, पहरे, वारां, सोलहे में देखने को मिलती है। इन सभी रूपों के जन्म, विकास के पीछे समाजिक कारण कार्यशील होते हैं। समाजिक और सास्कृतिक स्थितियां इन काव्य रूपों को प्रभावित करती रहती हैं, कुछ काव्य रूप रीति रिवाजों से संबंधित होते हैं- जैसे घोड़ीयाँ, लावां, इन काव्य रूपों का संबंध संस्कार प्रणाली अथवा रीति रिवाजों के साथ है। इनमें से जो ध्वनि प्रकट होती है उनका स्वर पहले रीति का है और बाद में काव्य का। यह काव्य रूप रीति से काव्य रूप की ओर यात्रा करते हैं। इन्हीं अनुष्ठानिक गीतों के आधार पर ऐसे सांचे बनाये गए जिनको कवियों ने उपयुक्त मानकर अपने-अपने भावों की अभिव्यक्ति का साधन बना लिया और इन सांचों में □ले हुए विचार ही लोक में ज्यादा लोकप्रिय हुए।

काव्य रूपों का उदय हमेशा लोक में से होता आया है इस की उदाहरण करहला, वणजारा है क्योंकि इनके माध्यम से किसी जाति की संस्कृति, मूल प्रवृतियां, जाति

चरित्र पूरी तरह रूपमान हुआ है। करहला जहाँ राजपुताने तथा मारूथल क्षेत्र के लोगों की भावनाओं को प्रकट करता है वहाँ वणजारा उन लोगो की विशेषताओं को प्रकट करता है जो एक अलग कबीले से संबंध रखते है जिनके रीति रिवाज़, रहन सहन सब अलग है। पहरे एक ऐसा लोक-काव्य रूप है जिसमें समूह की आत्मा श्वास लेती दिखती है इसमें दिन-रात के भागों को बाँटा गया है। पुराने समय में दिन रात को आठ पहरों में बाँटा जाता था। यह बाँटने की प्रक्रिया लोक द्वारा ही हुई क्योंकि समय को जानने की ज़रूरत सबको थी और समय का अनुमान पहरों के हिसाब से लगाया जाता था। इसको रचने वाली दृष्टि सूक्ष्म नहीं सामूहिक थी। वारां काव्य रूप पंजाबी का प्राचीन काव्य रूप है। इसमें वीरता की गूंज सुनाई पड़ती है। वारां में पंजाबी जन जीवन के इतिहास को बड़ी कलात्मकता के साथ परिपूर्णता के साथ ओत प्रोत करके प्रकट किया गया है।

इस प्रकार किसी वस्तु का औचित्यपूर्ण, समन्वित, सुन्दर, संगठन और छवि ही उसका रूप है। काव्य के संबंध में रूप काव्य की आत्मा अनुभूति का ज्ञान करवाने वाला एक साधन है। कवि की अनुभूति ही तीव्रतम बनकर काव्य का रूप धारण करती है और कवि अपने विचारों को प्रभावशाली रूप देने के लिए लोक में प्रचलित काव्य रूपों का प्रयोग करता है। साहित्य और लोक का रिश्ता इतना गहरा है कि इन दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। परम्पराबद्ध होने के कारण साहित्य में मौलिकता का अभाव हो जाता है और परम्परा में पड़कर बासी होने लगता है तो लोक अपने भावों से उसे नया रूप देता है। लोक में मौखिक धारा में बहते रहने वाले अनेक काव्य रूप समय पाकर साहित्य का विशेष अंग बन जाते हैं। इसीलिए रचनाकार अपने हृदय की बात को प्रभावोत्पादक □ंग से कहने के लिए लोक प्रचलित काव्य रूपों

को उपयुक्त मानता है। यह काव्य रूप जहाँ साहित्य को नया रूप देते है वहाँ साहित्यकार भी इन लोक धरातल से जुड़े काव्य रूपों को अनुभव द्वारा आत्मासात करके अपने विचारों के साथ रंग कर इन लोक काव्य रूपों को विलक्षणता, विभिन्नता प्रदान करता है।

द्वितीय अध्याय

2.0 गुरु रामदास जी का जीवन, उनकी वाणी और उसमें प्रयुक्त लोक-काव्य रूपों की युगीन पृष्ठभूमि

सिक्ख धर्म के महान् दस गुरु साहिबानों द्वारा सिक्ख धर्म की शिक्षाएं देकर राष्ट्र को नया जीवन दिया गया जिसका जन जीवन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। दस गुरु साहिबान युग निर्माता थे और इनके द्वारा नवीनयुग का सूत्रपात हुआ। इस सूत्रपात का श्रेय गुरु नानक देव जी को है क्योंकि उनके द्वारा ही सिक्ख धर्म की नींव स्थापित की गई। गुरु नानक देव जी द्वारा चलाई गुरु श्रृंखला में गुरु रामदास जी चतुर्थ गुरु हुए जिनके आदर्शमय ऊंचे व्यक्तित्व तथा प्रेममय मधुर वाणी ने सिक्खों को दृढ़ निष्ठा, सहयोग और प्रेम की शिक्षा प्रदान की। गुरु रामदास जी सहनशीलता की मूर्त थे। सिक्ख धर्म में उन्हें श्री अमृतसर का संस्थापक कहकर संबोधित किया जाता है। ''गुरु रामदास जी ने श्री अमृतसर की नींव रखी। यह शहर गुरु रामदास जी की यादगार है।''[39] गुरु रामदास जी में नम्रता, विनय, प्रेम के विशेष गुण थे और उनकी महानता का रहस्य इसी में अन्तर्निहित है। इन्हीं गुणों ने उन्हें इस योग्य बनाया कि पंजाब के अमृतसर में अमृत से भरे निर्मल सरोवर के तट पर एकत्र होने वाली सारी संगत के द्वारा 'धन गुरु रामदास' कह कर गुरु रामदास जी की अराधना की जाती है। गुरु रामदास जी की अराधना तथा जय जयकार का सिंहनाद आज भी उनके बसाए हुए नगर श्री अमृतसर में सुनाई देता है।

गुरु रामदास जी का जीवनः

चौथे पातशाह साहिब श्री गुरु रामदास जी का संपूर्ण जीवन इस सत्य को प्रकट करता है कि परमात्मा की गुरु जी पर असीम कृपा थी। परमात्मा की कृपा के कारण ही जीवन में अनेक कठिनाईओं को पार करके गुरु जी सिक्ख धर्म के चतुर्थ गुरु के

[39] हरजिंदर सिंह ि◌ल्लों, गुरु रामदासः जीवन, चिंतन ते बाणी, (अमृतसरः वारिस शाह फाउडेंशन, 1998), पृष्ठः 5.

रूप में सुशोभित हुए।गुरु रामदास जी का संबंध सोढ़ी वंश से था। ‘‘इस वंश मे गुरदयाल सोढ़ी का निवास स्थान पंदरहवीं सदी के अंत समय में लाहौर चूना मंडी में था। जिसके दो लड़को में से एक का नाम ठाकर दास था। ठाकर दास के घर हरि दास का जन्म हुआ।’’[40] गुरु रामदास जी इन्हीं हरिदास जी के पुत्र थे। ‘‘हरिदास जी की पत्नी का नाम बीबी अनूपी था,जिनको दया कौर के नाम से भी जाना जाता है। हरिदास और बीबी अनूपी के घर 24 सितंबर 1534 ई. को एक बालक ने जन्म लिया, जिसका नाम रामदास रखा गया।’’[41] गुरु रामदास जी अपने माता-पिता की पहली संतान थे उनका नाम रामदास रखा गया पर पहले पुत्र तथा पहली संतान होने के कारण उन्हें जेठा कहकर ही पुकारा जाने लगा। ‘‘घर में पहले बेटे के रूप में वह घर के ज्येष्ठ पुत्र थे। इसीलिए उनका नाम ही जेठा पड़ गया।’’[42] गुरु रामदास जी अभी बालपन से उभरे नहीं थे कि माता-पिता का साया सिर से उठ गया। ‘‘जेठा मुश्किल से सात साल का था, छह साल का भाई और पाँच साल की बहन। माँ परमात्मा को प्यारी हो गई और कुछ दिनों के पश्चात् ही पिता जी भी चलाना कर गए।’’[43] इतनी छोटी उम्र में माँ-बाप के गुज़र जाने के बाद छोटे बच्चे रोटी के लिए भी आतुर हो गए। फिर उनकी नानी लाहौर उनके पास आ गई। पर नानी के लिए भी मुश्किल था कि वह अपने घर की ज़िम्मेवारी छोड़कर लाहौर में रहती। ‘‘नानी अभी लाहौर में ही थी कि एक दिन जेठे ने सलाह की कि छाबड़ी लगाई जाए मन बना लिया और एक दोस्त ने घुंगणीयां का

---

[40] हिम्मत सिंह सोढ़ी, गुरु रामदास जीवन और रचना, (पटियालाः पब्लिकेशन ब्यूरों पंजाबी विश्वविद्यालय, 1995) पृष्ठः 1.

[41] वही, पृष्ठः 1.

[42] कुलदीप सिंह धीर, गुरु रामदासः जीवन और वाणी (नयी दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नेहरू भवन, 2012), पृष्ठः 16.

[43] हरनाम दास सहराई, रामदास सरोवर नाते, (जालंधरः दीपक पब्लिकेशन, अड्डा टांडा 1992), पृष्ठः 42.

थाल भी बना दिया। जेठा अब घुंगणीयां बेचता और लाहौर का नज़ारा भी देखता।''[44] गुरु रामदास जी बचपन में ही जीविका हेतु कार्य करना सीख गए थे। वह उबले हुए काले चने बाज़ार में बेचते थे। बालक जेठा (गुरु रामदास जी) को देखकर नानी खुश थी कि जेठा जी आजीविका हेतु काम करना सीख गये हैं। पर लाहौर का हाकिम मुगल था। इसलिए मुसलिम धर्म के अतिरिक्त दूसरे धर्मों के लोगों का जीवन यापन थोड़ा मुश्किल था।क्योंकि मुगल हाकिम दूसरे धर्मों के प्रति सहनशील नहीं था। यही सब देखकर नानी ने फैसला कर लिया कि वह तीनों बच्चों को अपने साथ गांव बासरके ले जाएगी।इसलिए नानी ने मुगल हाकिम की कठोरता से बचाने तथा अपनी छत्र छाया में बच्चों को पालने के लिए लाहौर छोड़ दिया।

गुरु अमरदास जी से मेलः

नानी के साथ बासरके आने के बाद गुरु रामदास जी का मिलन गुरु अमरदास जी से हुआ। जब गुरु रामदास जी लाहौर से बासरके आए तब आस पास के लोग नानी को हौसला देने के लिए आते रहते थे। गुरु अमरदास जी भी आए इसके बाद जब भी वह खडूर साहिब से आते तो गुरु रामदास जी से ज़रूर मिलते। ''जिस समय गुरु रामदास जी बासरके आए तब गुरु अमरदास जी की उम्र 62 साल थी और वह सिक्ख धर्म के दूसरे गुरु अंगद देव जी के भक्त थे।''[45] बचपन में माता-पिता के गुज़र जाने के कारण गुरु रामदास जी उस स्नेह से वंचित रहे जो माता-पिता से प्राप्त होता है पर गुरु अमरदास जी से मिलने के पश्चात उन्हें वही स्नेह का अहसास हुआ

[44] वही, पृष्ठः42

[45] गोबिंद सिंह मनसुखानी, गुरु रामदास जीवन, बाणी ते फलसफा, (अमृतसरःलोक साहित्य प्रकाशन, प्र सं 1997), पृष्ठः 23.

इसलिए गुरु रामदास प्रतिदिन गुरु अमरदास जी के दर्शन करने तथा दरबार में कीर्तन सुनने के लिए आने लगे।

वैवाहिक जीवनः

प्रत्येक माता-पिता की भांति गुरु अमरदास जी तथा उनकी पत्नी अपनी बेटी बीबी भानी के लिए सर्वश्रेष्ठ वर की खोज में थे।"जब बीबी भानी जी की माता ने बीबी भानी के विवाहयोग्य होने की बात गुरु अमरदास जी से की तो गुरु जी ने भाई जेठा जी की ओर ईशारा किया।"[46] गुरु अमरदास जी जानते थे कि गुरु रामदास जी ही योग्य हैं, गुरु अमरदास जी की जौहरी जैसी नज़र ने हीरे को पहचान लिया था। "1552 ई. में बीबी भानी और गुरु रामदास जी का विवाह सम्पन्न हुआ।"[47] यहाँ से गुरु अमरदास जी की छत्रछाया में गुरु रामदास जी की जिंदगी में नये अध्याय का आरंभ हुआ।

व्यक्तित्व में विकासः

गुरु रामदास जी के विवाह से पूर्व ही गोइंदवाल नगर बसना शुरू हो गया था। गुरु अंगद देव जी के हुक्म से गुरु अमरदास जी को इस नगर को बसाने का कार्य भार सौंपा गया था क्योंकि गुरु रामदास जी का स्वभाव सहनशीलता, नम्रता, धैर्य जैसे कोमल गुणों से परिपूर्ण था। गुरु अमरदास जी की छत्रछाया में उनके व्यक्तित्व का और भी विकास हुआ। गोइंदवाल की उसारी के समय गुरु रामदास जी ने सेवा भावना के साथ निर्माण कार्यों में भाग लिया। गुरु रामदास जी की सेवा भावना को ब्यान

[46] साहिब सिंह,जीवन वृतांतःश्री गुरु रामदास जी, (अमृतसरः सेवा सिंह ब्रदरज़,1968), पृष्ठः 13.

[47] हिम्मत सिंह सोढ़ी,गुरु रामदासःजीवन ते रचना, (पटियालाः पब्लिकेशन ब्यूरो,पंजाबी यूनिवर्सिटी), पृष्ठः 4.

करती एक साखी भी प्रचलित है जैसे जब लाहौर से आये गुरु जी के संबंधियों ने उन्हें गोइंदवाल की उसारी के समय मज़दूरों की तरह काम करते देख डांटा और कहा "अगर ससुराल में आकर मज़दूरी ही करनी थी तो यह काम लाहौर रहकर ही कर लेना था। यहाँ पर आकर हमारी नाक क्यों कटवाई।"[48] अर्थात् गुरु रामदास जी को सिर पर मिट्टी की टोकरी उठाते देख उनके संबंधियों का गुस्सा काबू में न रहा पर गुरु रामदास जी सहनशीलता की मूर्त थे उनका कहना था "मुझे परमात्मा के दर्शन इस सेवा भावना के कारण ही हुए हैं। जो चीज़ योग साधना से नहीं मिलती, यहाँ एक नदर से प्राप्त हो जाती है।"[49] गुरु रामदास जी का व्यक्तित्व एक साधारण मनुष्य का था लेकिन गुरु अमरदास जी के शिष्य बनने के बाद उनके व्यक्तित्व में बदलाव आया और वह अपने सहनशील, दयावान व्यवहार के कारण गुरु अमरदास जी का दिल जीतने में सफ़ल हुए। प्रियत्म परमात्मा तथा गुरु के ज्ञान का प्रसार उनके हृदय में गुरु अमरदास जी द्वारा हुआ। जैसे किसी प्रभावी रचना के पीछे कोई प्रेरणा अपना कार्य करती है वैसे ही गुरु रामदास जी के व्यक्तित्व को साधारण से अलाही बनाने में गुरु अमरदास जी की प्रेरणा का पूर्ण योगदान था।

संतानः

गुरु रामदास जी और बीबी भानी के घर तीन सपुत्र पैदा हुए। सबसे बड़े पुत्र पिर्थीचंद थे। पिर्थीचंद बचपन से ही ईर्ष्या तथा झगडालू स्वभाव वाले थे। गुरु जी के द्वितीय पुत्र महांदेव त्यागी प्रवृति वाले थे उनका ज्यादातर समय ध्यान में ही व्यतीत होता था। गुरु जी के तृतीय पुत्र गुरु अर्जुन देव जी रूहानीअत की मूर्त थे। काहन सिंह

[48] हरनाम दास सहराई,रामदास सरोवर नाते,(जालंधरः दीपक पब्लिकेशन,अड्डा टांडा,1992),पृष्ठः 50.

[49] वही, पृष्ठः 50.

नाभा ने गुरु रामदास जी के पुत्रों के जन्म सम्बन्धी जो तिथियाँ दी हैं वह इस प्रकार हैं, ''पिर्थीचंद जन्म संवत 1615, महांदेव जन्म संवत 1617, अर्जुन जन्म संवत 1620।''[50] गुरु रामदास जी के तीनों सपुत्रों में से गुरु अर्जृन देव जी ही सबसे योग्य थे। ''चौथे गुरु रामदास जी के तीन सपुत्रों में से सबसे छोटे अर्जुन देव जी ने अपने पिता के दिये ज्ञान को अच्छी तरह समझा और उनकी चलाई हुई पवित्र जीवन पद्धति पर चलकर स्वयं को गुरूगद्दी के लिए हर तरह से योग्य साबित किया।''[51] इस प्रकार गुरु अर्जुन देव जी आगे चलकर सिक्ख गुरु परंपरा में पंचम गुरु पद पर सुशोभित हुए तथा अपने पिता द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर सिक्ख धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

गुरुगद्दी मिलनाः

गुरु अमरदास जी ने सिक्खों की बढ़ती संख्या को देखते हुए और सिक्ख धर्म के प्रचार के लिए एक नये नगर के निर्माण का फैसला किया। उन्होंने नगर का कार्य गुरु रामदास जी को सौंप दिया। ''हुकम हुआ गुरु अमरदास का, शहर बसाना है। सिर झुका दिया रामदास ने हज़ूर आगे।''[52] इस प्रकार नये नगर अमृतसर को बसाने का कार्य गुरु रामदास जी द्वारा आरंभ कर दिया गया।गुरु अमरदास जी को यह ज्ञात था कि उनके जीवन का अंत नज़दीक है इसलिए उन्होंने गुरु नानक देव जी तथा गुरु अंगद देव जी की चलाई मर्यादा को कायम रखा। ''गुरु अमरदास जी ने,गुरु रामदास जी को 1574 ई. को गुरूगद्दी सौंप दी।''[53] गुरु रामदास जी 1574 ई से लेकर 1581 तक गुरगद्दी पर सुशोभित रहे।गुरु जी ने अपने गुरु काल में सिक्ख धर्म को अपने

[50] गुरशब्द रत्नाकर महानकोश, इन्साईकलोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग,पंजाब,1960), पृष्ठः 934.

[51] हरि सिंह,दैवी-जीवनःगुरु अर्जृन देव जी, (सारदा पंजाबी पब्लिशरज़, तीसरा सं.1960),पृष्ठः 21.

[52] हरनाम दास सहराई रामदास सरोवर नाते, (जालंधरः दीपक पब्लिकेशन, अड्डा टांडा, 1992), पृष्ठः 106.

[53] हरवंत कौर, गुरु रामदासः जीवन, चिंतन अते बाणी, (अमृतसरः रूही प्रकाशन,प्र.सं.2005),पृष्ठः 6.

शब्दों द्वारा अलौकिक ज्ञान प्रदान किया तथा गुरुवाणी की रचना करके संपूर्ण मानव जाति का कल्याण किया।

गुरु चक्क नगर बसानाः

गुरु चक्क नगर अर्थात अमृतसर को बसाने का कार्य गुरु रामदास जी ने अपने गुरु काल में संपूर्ण किया।सिक्ख धर्म के प्रति लोगों का झुकाव देखकर गुरु अमरदास जी ने सिक्ख धर्म के प्रचार प्रसार के लिए एक ऐसे नगर को बसाने का निर्णय किया जहाँ पर सिक्ख श्रद्धालुओं के नतमस्तक होने के लिए विशेष धार्मिक स्थान हो। ''नगर के साथ-साथ धर्म स्थान का होना भी ज़रूरी था। गाँवों में प्रचार तो कायम रखना ही था पर गुरु रामदास जी ने यह भी ज़रूरी समझा कि केन्द्रीय नगर में भी एक शानदार धर्म स्थान बनवाया जाए।''[54] गुरु रामदास जी की दूर दृष्टि यह सोच रही थी कि यह नगर सिक्ख धर्म के प्रति बढ़ रही भक्तों की संख्या तथा उनकी ज़रूरतों को पूरा कर सके। करतारपुर साहिब,खडूर साहिब तथा गोइंदवाल साहिब की भांति गुरु चक्क नगर किसी दरिया के किनारे पर नहीं था इसीलिए गुरु रामदास जी ने गुरु चक्क नगर में धर्म स्थान को सरोवर के ठीक बीच में स्थापित किया। गुरु रामदास जी अपने गुरु काल में केवल सरोवर का ही निर्माण करवा सके। सरोवर के बीच बनने वाले हरिमंदिर साहिब का निर्माण गुरु अर्जुन जी के गुरु काल में संपूर्ण हुआ पर हरिमंदिर साहिब का सपना गुरु रामदास जी ने पहले ही देख लिया था। ''जो हरिमंदिर बनेगा उसके चार दरवाज़े होंगे, उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम। चार ऋतुओं की महक हमारे हरिमंदिर में प्रवेश करेगी।''[55] गुरु रामदास जी द्वारा देखा सपना सम्पूर्ण हुआ

[54] साहिब सिंह, जीवन वृतांतः श्री गुरु रामदास जी, (अमृतसरः सेवा सिंह ब्रदरज़ 1968),पृष्ठः 18.

[55] हरनाम दास सहराई,रामदास सरोवर नाते, (जालंधरः दीपक पब्लिकेशन, अड्डा टांडा, 1992), पृष्ठः112.

और आने वाले समय में गुरु चक्क नगर अमृतसर के नाम से धर्म का केन्द्रीय स्थान बन गया। जिसे आज भी सिक्ख संगतों के साथ-साथ संपूर्ण संसार के लोगों द्वारा मान, सम्मान से पूजा जाता है।

पांचवे गुरु का चयनः

गुरु रामदास जी के तीनों पुत्र गुरु अमरदास जी के जीवन काल में ही जन्म ले चुके थे। गुरु अमरदास जी के ज्योति ज्योत समाने के समय गुरु अर्जुन देव जी की आयू 11 वर्ष की थी। गुरु अर्जुन देव जी हर समय वाणी का पाठ करते रहते थे जिसे देखकर गुरु अमरदास जी ने यह कह दिया था कि यह वाणी के पुंज हैं। ''उनके हृदय में वाणी के प्रति प्रेम भी कूट-कूट कर भरा था।''[56] संगत की सेवा करना, लंगर में सेवा, कीर्तन का श्रवण, नगर के प्रत्येक व्यक्ति के सुख दुःख में शामिल होना इत्यादि संपूर्ण गुणों को गुरु अर्जृन देव जी में देखकर गुरु रामदास जी ने गुरूगद्दी के लिए पूर्ण योग्य गुरु अर्जुन देव जी को ही माना। गुरु रामदास जी ने भरे दीवान में गुरु अर्जृन देव जी को 1581 ई में गुरूगद्दी का वारिस बनाया।

ज्योति ज्योत समानाः

गुरु रामदास जी की संपूर्ण जिंदगी कठिन तप और परिश्रम का प्रमाण है। बाल्यकाल में आजीविका हेतू परिश्रम,गोइंदवाल साहिब में जीवन यापन के लिए मेहनत करने के अतिरिक्त जो समय मिलता वह लंगर तैयार करने तथा संगत की सेवा करने में लगाते। गुरूगद्दी मिलने के बाद नये नगर की जिम्मेवारी को इन्होंने तनदेही के साथ निभाया। यह सब गुरु रामदास जी के जीवन काल की कड़ी मेहनत

[56] साहिब सिंह, जीवन वृतांतःश्री गुरु रामदास जी, (अमृतसरः सेवा सिंह ब्रदरज़, 1968), पृष्ठः28.

को दर्शाता है। ''सहनशीलता, प्रेम, नम्रता, वाणी के पुंज श्री गुरु रामदास जी समाधि अवस्था में चले गये और 1 सितंबर 1581 ई. को गोइंदवाल में ज्योति ज्योत समा गए।''[57] उस समय इनकी उम्र 47 साल की थी।गुरु रामदास जी का संपूर्ण जीवन सेवा, दया, कोमलता के गुणों से परिपूर्ण रहा जो कि सिक्ख धर्म के गौरवमयी तथा आध्यात्मिकता पूर्ण इतिहास को ब्यान करता है।

गुरु रामदास जी की वाणीः

महान् पुरुषों द्वारा लिखित वाणी सदैव समाज को सही दिशा की ओर प्रेरित करती है तथा आधार रहित आस्थाओं, धारणाओं को नकारती रही है। सिक्खों के चौथे गुरु रामदास जी के महान व्यक्तित्व तथा वाणी ने युग, समाज का पथ प्रदर्शित किया। गुरु रामदास जी ने गुरु नानक देव जी के लोकहित पूर्ण विचारों को अपनी भावना से ओत-प्रोत कर वाणी के माध्यम से प्रस्तुत किया। गुरु रामदास जी की वाणी एकस्वरता के भाव से परिपूर्ण होकर सष्टि की मंगलकामना करने की प्रेरणा देती है। गुरु रामदास जी की वाणी की महानता इसमें है कि यह वाणी विषय और रूप दोनों पक्षों से ही श्रेष्ठ भी है और महान् भी है। गुरु जी की वाणी आत्मिक शांति देने के साथ-साथ आध्यात्मिक अनुभूति का भी अहसास करवाती है। यह वाणी मूल रूप में रूहानीअत का एक ऐसा प्रवाह है। जिसके हर शब्द में मुक्त होने की विधि और संदेश समाया हुआ है।

[57] गोबिंद सिंह मनसुखानी, गुरु रामदास जीवन, बाणी ते फलसफा, (अमृतसरः लोक साहित्य प्रकाशन,प्र सं 1997), पृष्ठः 48.

गुरु रामदास जी की वाणी का केन्द्रीय बिंदु प्रेम है। यह प्रेम परमात्मा के प्रति है तथा गुरु की कृपा दृष्टि से ही प्राप्त होता है। गुरु रामदास जी को यह प्रेम गुरु अमरदास जी की छत्र छाया में प्राप्त हुआ जिसने गुरु जी को सहजता, सरलता जैसे गुणों का धारणी बनाकर उनके व्यक्तित्व का विकास किया।गुरु रामदास जी की सहजता,स्वाभाविकता उनकी वाणी में देखी जा सकती है।उनकी शैली भी विचित्र एवं वैविध्यपूर्ण है। उन्होंने अपनी अनुभूति को विलक्षण, वैयक्तिक शैली के माध्यम से वाणी में अभिव्यक्त किया। गुरु रामदास जी ने व्यापक अनुभव एवं गहन अनुभूति के बल पर ही अपनी वाणी में भिन्न-भिन्न लोक-काव्य रूपों का प्रयोग किया क्योंकि लोक-काव्य रूपों के माध्यम से ही भावों की सहज प्रतीति, विचारों की स्पष्टता परिलक्षित होती है। लोक-काव्य रूपों के माध्यम से लोक के स्तर पर जाकर लोगों की भावनाओं तथा विचारों को सहजतापूर्ण समझा जा सकता है। गुरु जी द्वारा वाणी में विभिन्न लोक-काव्य रूपों का प्रयोग सरलता से किया है। ''तीस रागों में यह रचना कई छंद रूपों और कई काव्य रूपों में है। आप ने 246 पदे रचे जिनमें दुपदे, चौपदे और पाँच पदे विशेष हैं। अन्य छंद रूपों में छंत 32 है और अष्टपदियों की संख्या 31 है।''[58] गुरु रामदास जी की वाणी में प्रयुक्त लोक-काव्य रूप करहला, वणजारा घोड़ीयां, वारां, सोलहे में परमात्मा के वियोग की तड़प को ब्यान किया गया है। वारां में परमात्मा का कीर्ति गान करने के साथ-साथ समाजिक विषयों का संकेत भी है। पहरे में जीवन की चार अवस्थाओं का वर्णन कर मनुष्य को व्यतीत होती आयु के साथ परमात्मा का नाम स्मरण करने का संदेश दिया है।

[58] हिम्मत सिंह सोढी, गुरु रामदासःजीवन और रचना, (पटियालाः पब्लिकेशन ब्यूरो,पंजाबी विश्वविद्यालय, 1995), पृष्ठः 72.

गुरु रामदास जी की वाणी की विचारधारा का आधार गुरु नानक देव जी द्वारा चलाई हुई लोकमंगल की धारणा है और इसी धारणा का पालन करने का संदेश केवल सिक्खों के लिए नहीं ब्लकि संपूर्ण मानव जाति के लिए है। गुरु रामदास जी की वाणी में प्रभु प्रेम का भाव प्रधान है जो उनके वैयक्तिक अनुभव से उपजा है। उन्होंने इसी अनुभव को प्रकट करने के लिए लोक जीवन से लोक-काव्य रूपों को ग्रहण किया है जिनसे साधारण व्यक्ति पहले से ही जुड़ा हुआ है। गुरु रामदास जी ने बहुत भावपूर्ण तथा प्रभावशाली दृश्य लोक प्रचलित काव्य रूपों के माध्यम से प्रकट किये हैं। उनकी वाणी में प्रयुक्त लोक-काव्य रूप कलात्मक विलक्षणता का उच्च स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। गुरु जी ने करहला, वणजारा, घोड़ियां, लावां, पहरे, वारां, सोलहे के माध्यम से अपने विचारों को पूर्ण रूप में स्पष्ट कर साधारण मनुष्य को जीवन का मूल लक्ष्य समझाकर जीवन को उच्च तथा विकासात्मक पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया है।

गुरु रामदास जी की वाणी में प्रयुक्त लोक काव्य रूपों की युगीन पृष्ठभूमिः

मानव अपने युग की सम विषम परिस्थितियों से प्रभावित होता है। वह अपने युग परिवेश से कटकर नहीं चल सकता। मानव होने के नाते रचनाकार भी समाज का एक अंग होता है और उस पर समाज की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है और रचनाकार के साहित्य से युग समाज की परिस्थितियों का सच्चा रूप झलकता है क्योंकि रचनाकार समाज में रहता है और इसी कारण वह परिवेश को अनदेखा नहीं कर सकता। फलस्वरूप जीवन संदर्भों की छाप उसकी साहित्यिक कृतियों पर पड़ती है और वह अपने परिवेश या परिस्थिति विशेष में जन्म लेकर ,युग में होने वाली घटनाओं से प्रभाव ग्रहण कर और उसकी प्रेरणा के फलस्वरूप उस प्रभाव को रचनाओं में प्रतिबिम्बित करता है। वाणी के रचयिता गुरु रामदास जी के व्यक्तित्व पर भी उनके

युग, आस पास की परिस्थितियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी प्रभाव के परिणामस्वरूप गुरु रामदास जी की वाणी में लोक-काव्य रूपों के माध्यम से जो भाव प्रकट हुए हैं वह सहज ही दृष्टिगोचर हैं। साधारण जन द्वारा लोक-काव्य के प्रचलित रूप के माध्यम से अपनी संवेदनाओं को व्यक्त किया जाता रहा है। इन्हीं लोक प्रचलित काव्य रूपों से प्रभावित होकर गुरु जी ने लोक की भावनाओं का सच्चा रूप प्रस्तुत करने के लिए लोक की ही भाषा में बात की।प्रस्तुत अध्याय में गुरु रामदास जी की वाणी में परिलक्षित लोक-काव्य रूपों की युगीन पृष्ठभूमि प्रस्तुत की लोक की संवेदना का विस्तृत विश्लेषण निम्नलिखित अनुसार किया गया है।

किया जाएगा।

पहरेः

पहरे पंजाबी का प्रसिद्ध लोक-काव्य रूप है। पहरे शब्द 'पहर' से बना है। दिन तथा रात के चौबीस घंटों में से आंठवे भाग को अर्थात तीन घंटे के समय को पहर कहा जाता है। पहरे लोक-काव्य रूप लोक जीवन में पूर्ण रूप से व्याप्त था क्योंकि प्रतिदिन के कार्य व्यापार लोक के द्वारा पहर का अनुमान लगाकर ही किये जाते रहे हैं। गुरु रामदास जी के समाज में ज्यादातर दो श्रेणी के लोग थे। एक हिंदु और दूसरा मुसलमान। दोनों की संख्या बहुत ज्यादा थी। दोनों में जाति-पाति के बंधन विद्यामान थे। निम्न जाति का जीवन यापन अच्छा नहीं था। ऊंची जाति के लोग उन से बुरा व्यवहार करते थे उनका जनसाधारण के जीवन से कोई संबंध नहीं था। ऐसे समाज में गुरुवाणी ने नयी दिशा दिखलाने का पथ प्रेरित किया। समाज में लोगों ने जैसे ही गुरुओं की शिक्षाओं पर अमल करना शुरु किया वैसे उनके हालात भी सुधरने लगे। गुरु

साहिबान ने अपनी वाणी के माध्यम से लोगों के ही नित्य प्रति जीवन से ही उदाहरण लेकर लोगों को समझाया। इसी दिशा में गुरु रामदास जी ने मोह माया, झूठ, जाति पाति, भेद-भाव में पड़े लोगों को व्यर्थ के विकारों से निकालने के लिए रात के चार पहरों को जीवन की चार अवस्थाओं में □ालकर प्रस्तुत किया तांकि लोगों को उन्हीं के नित्य प्रति व्यवहार के माध्यम से संबोधित किया जा सके।समाज में फैली विषमताओं के कारण परमात्मा को भूले हुए लोगों को विकारों की दलदल से निकालने के लिए गुरु जी ने पहरे वाणी में आध्यात्मिक व्याख्या करके मनुष्य को उचित लक्ष्य की ओर अग्रसर किया।

घोड़ियाँ:

घोड़ियाँ लोक-काव्य रूप का संबंध लड़के के विवाह से है। इस लोक-काव्य का गायन दूल्हे के घर में विवाह के कुछ दिन पहले ही घर की स्त्रियों द्वारा शुरू कर दिया जाता है। घोड़ियाँ लोक-काव्य रूप में लड़के के जन्म से लेकर उसके विवाह तक के सभी संस्कारों का गायन किया जाता है। इस लोक-काव्य रूप में दूल्हे की बहनों के द्वारा घोड़ी का श्रृंगार करते हुए मन के भावों की अभिव्यक्ति गायन करके की जाती है। विवाह के समय, जब दूल्हा घोड़ी पर चढ़कर दुल्हन को ब्याहने के लिए जाता है तो दूल्हे की बहनों द्वारा गाए जाने वाले खुशी के गीतों को घोड़ियाँ कहा जाता है। गुरु रामदास जी ने घोड़ियाँ शीर्षक के अंतर्गत वाणी की रचना इसी लोक-काव्य रूप के आधार पर की है। गुरु रामदास जी के समय समाज भिन्न-भिन्न वर्गों में बंट चुका था। ऊंच जाति के लोग निम्न जाति वाले लोगों से भेद-भाव करते थे। मुसलमान तथा हिंदु प्रजा के बीच वैर विरोध की भावना विद्यमान थी। धर्म का कोई अस्तित्व नहीं था। दिखावे, पाखंण्ड में प्रजा अंधी होकर,ज्ञानविहीन होकर ठोंकरे खा रही थी। इन्हीं

आडम्बरों से निजात दिलवाने के लिए गुरु रामदास जी ने लोगों को उन्हीं की धुन में शिक्षा दी। ''विवाह जैसे अवसरों पर इक्ट्ठे हुए रिशतेदार अपनी खुशी को प्रगट करने के लिए मनोरंजन प्रधान गीतों का आश्रय लेते थे इसी कारण घोड़ियाँ लोक-काव्य रूप में अस्थिरता आ गई थी।''[59] इन लोक प्रचलित काव्य रूपों को गुरु रामदास जी ने आध्यात्मिकता के साथ एकस्वर करके नया अर्थ और स्वरूप प्रदान किया। काहन सिंह नाभा के अनुसार ''श्री गुरु रामदास जी ने मनोरंजन प्रधान गीतों की कुरीति को दूर करने के लिए राग वडहंस में घोड़ियाँ वाणी रची, जिसमें लोक परलोक के सुखों की प्राप्ति का उपदेश है।''[60] इस प्रकार गुरु रामदास जी ने घोड़ियाँ की लौकिक रसम को अलौकिक अर्थ प्रदान कर दुनियावी जीवन को वाणी के दैवीय ज्ञान के द्वारा सुधारने का संदेश समप्रेषित किया गया है।

लावां:

विवाह एक ऐसी मर्यादा है जो प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में विद्यमान है।''समाज की ओर से कुछ विशेष संस्कारों की पूर्ति करके स्त्री और पुरुष के आपसी संबंधों को प्रमाणिकता दी जाती है जिसे विवाह कहा जाता है।''[61] विवाह को पति-पत्नी की पूर्णता, विकास और सुख के लिए गृहस्थ जीवन महत्वपूर्ण माना जाता है और इस गृहस्थ जीवन में विवाह के द्वारा प्रवृत्त हुआ जाता है। मनुष्य समाज में अकेला नहीं रह सकता। उसे जीवन यात्रा को चलाने के लिए एक जीवन साथी की ज़रूरत होती है मनुष्य अपनी पत्नी और बच्चों के साथ सुखदायी जीवन व्यतीत करके दुनियावी सुखों

[59] विद्यावती, गुरु रामदासः जीवन और वाणी, (समानाः संगम पब्लिकेशन, 2005), पृष्ठः 35.

[60] गुरुशब्द रत्नाकर महानकोश, इन्साईकलोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग,पंजाब,1960), पृष्ठः 335.

[61] अशविंदर कौर, लावां समाजिक ते आध्यात्मिक दृष्टि, (अमृतसरः नाद प्रगास प्रकाशन, 2017), पृष्ठः 47.

को प्राप्त करना चाहता है। इसी भावना से प्रेरित होकर वह विवाह संबंध कायम करता है। विवाह ही पारिवारिक संबंधों को स्थापित करने का सफल माध्यम है और परिवार के द्वारा स्थापित किये गए संस्कार, धारणाएं, विश्वास निरंतर पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित होते रहते हैं।

लावां समाज से आध्यात्मिक रूप में संबंधित है। जिसके द्वारा सुख्मयी दंपति का संकल्प दिया गया है जो कि जीव स्त्री को पति परमात्मा से मिलाप का पथ प्रदर्शित करती है। लावां द्वारा पथ प्रदर्शित करने का श्रेय गुरू रामदास जी को है जिन्होंने लावां वाणी की रचना की गुरु रामदास जी द्वारा रचित वाणी लावां समाजिक जीवन को महत्व प्रदान करने वाला संस्कार है। यह वाणी अपने आध्यात्मिक तथा संस्कारगत स्वरूप के कारण समाज के साथ पूर्ण रूप से जुड़ी हुई है। लावां सूही राग में लिखी गई वाणी है जो सिक्ख धर्म में स्त्री और पुरुष के विवाह के समय पढ़ी जाती है। गुरु रामदास जी समाज का विकास करना चाहते थे इसलिए उन्होंने लावां वाणी के माध्यम से विवाह को पवित्र संयोग के रूप में स्थापित कर मनुष्य को जीवन में आदर्श कायम करने की प्रेरणा दी है। गुरु जी ने लावां वाणी के द्वारा जीवात्मा को स्थिरता की ओर अग्रसर किया है जिसका मंतव्य परमात्मा की प्राप्ति है। "गुरु रामदास जी के समय में विवाह सम्पन्न करवाने के लिए पण्डित को बुलाना आवश्यक होता था। पंडित जी पैसों की दक्षिणा लेकर मंत्रों का उच्चारण कर ही विवाह संस्कार संपूर्ण करवाते थे। गुरु रामदास जी को इस संबंधी बुरा अनुभव हुआ जब उनके एक सिक्ख ने शिकायत की कि एक पंडिण्त ने निर्धारित रकम लेकर उसकी पुत्री का विवाह करवाने का वचन दिया था पर अब वह दक्षिणा दोगुणा ज्यादा मांग रहा है। उस सिक्ख की इस पीड़ादायक स्थिति का गुरु जी के कोमल मन पर गहरा प्रभाव

पड़ा। उन्होंने इस महत्वपूर्ण संस्कार की पवित्रता कायम रखने के लिए 'लावां' शीर्षक से जानी जाने वाली वाणी रची और इस संस्कार को आडम्बरों से मुक्त करवाने और के लिए 'आनंद कारज' की रीति चलाई।''[62] आनंद कारज की रसम में,लावां वाणी का पाठ करके ही सिक्ख धर्म में विवाह संपन्न किया जाता है। ''आनंद विवाह की रसम गुरु अमरदास जी ने अपनी पुत्री बीबी भानी तथा गुरु रामदास जी के विवाह समय शुरू की थी। इस रीति अनुसार बीबी भानी तथा गुरु रामदास जी ने गुरू अमरदास जी के इर्द गिर्द फेरे लिए गुरु अमरदास जी ने आनंद साहिब का पाठ पढ़ा।''[63] इस तरह प्रचलित आनंद विवाह की रीति में गुरु रामदास जी ने लावां वाणी का पाठ शामिल किया।इस वाणी का नाम लावां चार बंदों की पहली तुक में लांव शब्द आने के कारण पड़ गया। ''गुरु रामदास जी ने सूही के छंतों में ऐसे छंत की रचना की है जो आजकल सिक्ख धर्म में लावां के नाम से प्रसिद्ध है। सिक्ख धर्म में विवाह की रसम इस छंत के चार बंदो के उच्चारण के साथ फेरे या परिक्रमा लेकर ही संपूर्ण होती है।''[64] इस तरह गुरु रामदास जी ने अपनी आध्यात्मिक अनुभूति का समाजीकरण करते हुए जीवात्मा-परमात्मा के विराट विवाह का रूपक रचा है। इससे लोक मानस की अभिव्यक्ति भी होती है और लोक की संस्कृति के दर्शन भी होते हैं।

करहलाः

करहला लोक-काव्य रूप ऊंट संवार परदेसीओं तथा व्यापारियों द्वारा गाया जाने वाला लोक-काव्य रूप है। मध्यकाल में यातायात के साधन इतने ज्यादा नहीं थे। लोग

---

[62] हरवंत कौर, गुरु रामदासःजीवन चिंतन और वाणी, (अमृतसरः रूही प्रकाशन, प्र. सं. 2005), पृष्ठः74.

[63] गुरबचन सिंह खालसा, गुरमति रहित मर्यादा, (अमृतसरः धर्म प्रचार कमेटी शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, 2008), पृष्ठः 22-23.

[64] महिन्द्र कौर गिल्ल, वाणी मंडल, (जालंधरः दीपक पब्लिशरज़,1989), पृष्ठः90.

ज्यादातर यातायात के लिए बैल गाड़ी, घोड़ो तथा ऊंटो का ही प्रयोग किया करते थे। ऊंटों का प्रयोग दूर देशों में व्यापार करने तथा माल ले जाने के लिए किया जाता था। ऊंट सवार प्रति दिन देश विदेशों का सफर करने वाले परदेसी होते थे। करहला शब्द ऊंट के लिए ही प्रयोग किया जाता है। ''लहंदी में करहा ऊंट को कहते हैं।''[65] ऊंट यात्रियों का भार उठाकर नित देश प्रदेश में भटकता रहता है। गुरु रामदास जी ने अपनी वाणी मे करहला को एक रूपक के तौर पर प्रयोग करके मनुष्य को वाणी के द्वारा जीवन के मूल भाव से अवगत करवाया है। मनुष्य मन भी विभिन्न दुनियावी जंजालों के अधीन होकर आवागमन के जाल में फंसा रहता है। मनमुख व्यक्ति अहंकार तथा माया के बंधनों में पड़कर ऊंट की भांति आवागमन के चक्कर में विभिन्न जन्मों में भटकता रहता है। ऊंट की इसी भटकन वाली प्रवृति को मनुष्य मन की भटकन के साथ जोड़कर गुरु रामदास जी ने करहला वाणी में प्रस्तुत किया है। गुरु जी द्वारा बसाए नगर में विभिन्न सौदागरों का आना जाना था इसलिए गुरु जी ने वाणी के संदेश को सौदागरों द्वारा किये जाने वाले व्यापार के माध्यम से प्रस्तुत कर सभी को जीवन के मूल उद्देश्य प्रभु प्राप्ति तथा नाम स्मरण करने का उपदेश दिया है।

वणजाराः

वणजारा देश-प्रदेश में माल बेचने वाले सौदागर थे इनके द्वारा प्रदेशों की यात्राओं के दौरान गायन किया जाने वाला लोक-काव्य वणजारा के नाम से प्रचलित हो गया। वणजारा शब्द का प्रयोग व्यापार करने वाले व्यक्ति के लिए किया जाता है जो अपना माल देश प्रदेश में बेचता है। जब गुरु अमरदास जी ने गुरु रामदास जी को नया नगर स्थपित करने का आदेश दिया था तब गुरु अमरदास जी का सपना था कि

[65] सोहिदर सिंह वणजारा बेदी, पंजाबी लोकधारा विश्वकोश, (दिल्लीःनेशनल बुक शाप 2009), पृष्ठः572.

नया नगर सारी ज़रूरत की वस्तुओं तथा सुविधाओं से संपन्न हो। ''दिल्ली दक्षिण में माल बेचने वाले, सौदागर अपना माल हमारे बसाए हुए शहर में बेच जाएं। शहर में शाहूकारों का वास हो। हमारे शहर की महिमा देश प्रदेश में बिखरे। जो चीज़ कही से भी न मिले वह हमारे शहर में से, गली गली में से खरीदी जा सके।''[66] गुरु अमरदास जी का यह सपना गुरु रामदास जी ने संपूर्ण किया। गुरु चक्क नगर में तरह-तरह के व्यापारियों का बाज़ार में वास हो गया। ''संप्रदायी विद्वान बताते हैं कि श्री गुरु रामदास जी के पास कोई वणजारा उपदेश लेने आया था। वणजारा वाणी उस वणजारे के लिए उच्चारण की गई थी।''[67] गुरु रामदास जी द्वारा सिरी राग में लिखित वणजारा वाणी में लौकिक व्यापार के माध्यम से अलौकिक व्यापार के बारे में बताया गया है। गुरु रामदास जी के नम्र स्वभाव, मीठी वाणी,दयालु प्रवृति वाले व्यक्तित्व की महिमा सभी ओर थी। हर कोई गुरु जी के दर्शन का अभिलाषी होता था। इस तरह नये बसे नगर में व्यापार करने की दृष्टि से आये वणजारा को गुरु जी ने जीवन के सही व्यापार परमात्मा के नाम स्मरण का उपदेश दिया था।

वारां:

वारां लोक-काव्य रूप का पंजाबी साहित्य के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान है। ''वार काव्यबद्ध तथा उत्साह पूर्ण वार्ता है जिसमें किसी संघर्ष के संबंध में नायक का यशोगायन किया जाता है। इसमें वीर रस की प्रधानता होती है।''[68] पंजाब शुरू से ही बहादुरों और शूरवीरों की धरती रहा है विदेशी हमलावरों के आक्रमणों की मार भी

---

[66] हरनाम दास सहराई, रामदास सरोवर नाते, (जालंधरः दीपक पब्लिकेशन, अड्डा टांडा, 1992), पृष्ठः 106.

[67] वीर सिंह, संथया श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पोथी द्वितीय, (अमृतसरः खालसा समाचार, हाल बाजार, प्र.सं 1963), पृष्ठः 703.

[68] जतिन्द्र कौर,पंजाबी लोक-काव्य रूप, (मोहालीः यूनिस्टार बुक्स लिमिटेड, 2015), पृष्ठः 67.

पंजाब की धरती को ही अधिकतर सहन करनी पड़ी है। एक योद्धा के गुण इस धरती के लोगों में इसी कारण पाए जाते हैं क्योंकि उन्होंने शुरू से ही अपनी रक्षा के लिए इन हमलावरों का मुकाबला किया। जंग के मैदान में बहादुरी दिखाना और जीत प्राप्त करना सबसे बड़ा सम्मान था आम लोगों में बहादुरी पूर्ण भावनाओं को उद्वेलित करने के लिए वारां का गायन किया जाता था। पंजाब में वारां का बहुत महत्व है क्योंकि पहले यह वीर रसी गाथाओं के रूप में योद्धाओं में उत्साह भरती थी और धीरे-धीरे समय पाकर गुरु साहिबानों द्वारा इसे आध्यात्मिक विचारों से ओत-प्रोत कर वाणी का संदेश संचारित करने के निमित्त प्रयोग किया जाने लगा। गुरु रामदास जी के गुरु काल में बहुत से ऐसे लोग थे जो गुरु घर की निंदा करते थे। ''कुछ पुरातन पंथी, जोगी तपे और ईष्यालू लोग गुरु घर की निंदा करते रहते और यह प्रचार करते थे कि हरि नाम के धन के वही मालिक हैं।''[69] गुरु घर की निंदा करने वाले लोग मुगल शासकों के कान भरते थे और गुरु घर के प्रति भड़काते थे। गुरु रामदास जी ने वारां वाणी के माध्यम से मनुष्य को झूठ, निंदा, पाखण्ड आडम्बरों जैसे विकारों से निकलकर परमात्मा का यशोगायन करने का उपदेश दिया है।

सोलहेः

सोलहा लोक-काव्य रूप सोलहां बंद को प्रस्तुत करता काव्य रूप है। जिसमें यश तथा महिमा प्रधान काव्य को महत्व दिया जाता है। किसी व्यक्ति के भविष्य की मंगलमयी कामना के लिए स्तुति प्रधान काव्य सोलहे कहलाता है। ''सोहिला शब्द उन

[69] हिम्मत सिंह सोढ़ी, गुरु रामदासः जीवन और रचना, (पटियालाः पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी विश्वविद्यालय, 1995), पृष्ठः40.

मंगल गीतों के लिए रूढ़ हो गया जिनमें किसी व्यक्ति की शोभा हो।''[70] गुरु रामदास जी ने मारू राग में सोलहे की रचना की है। गुरु रामदास जी वाणी का उपदेश संगत में सुनाते थे। यह गुरु जी का नित्यदिन का कार्य था। संगत का महत्व उनके लिए बहुत ज्यादा था। सभी गुरु साहिबान ने अपनी गुरुगद्दी का वारिस संगत की मौजूदगी में पाया था क्योंकि सभी गुरु साहिबान संगत के महत्व से ज्ञात थे। गुरु रामदास जी ने इसी साधू संगत की महिमा को मारू राग में सोलहे के माध्यम से उजागर किया है तथा सोलहे में गुरु और साधू संगत के माध्यम से परमात्मा की प्राप्ति के बारे में बताया है। "मारू सोलहे गुरु रामदास जी की एक दार्शनिक रचना है यह वाणी गुरु जी के आध्यात्मिक अनुभव को प्रकट करती है। उन्होंने मनुष्य जीवन की आध्यात्मिक मंजिल को सोलहे में रूपमान किया है।''[71] परमात्मा के गुणों का गायन करना, नाम स्मरण करना ही मनुष्य को आध्यात्मिकता की ओर लेकर जाता है। गुरु रामदास जी ने प्रियतम परमात्मा के प्रति अपने मन के भावों को सोलहे वाणी के माध्यम से प्रकट कर मनुष्य को विकारों का त्याग करके सतिसंगत करने का उपदेश दिया है।

अत: श्री गुरु रामदास जी जैसे अनुभवी कलावान व्यक्ति के बारे में कुछ लिखना सागर को बूंद भेट करने के बराबर है। गुरु रामदास जी महान पवित्र आत्मा, दयावान मनुष्य और उच्च कोटि के कवि होने के साथ साथ एक बहुत बड़े समाज के निर्माता भी थे। गुरु रामदास जी ने गुरु नानक देव जी द्वारा प्रेरित किये मार्ग पर चलते हुए चेतनता के साथ समाज के कई पक्षों में परिवर्तन कर सुधार किया। गुरु रामदास जी ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें जीवन के मूल्यों का आधार मानवता

[70] पंजाबी लोकधारा विश्वकोश जिलद 3, (साया से सौली तक), सोहिंदर सिंह वणजारा वेदी, (दिल्लीः नेशनल बुक शॉप 2008), पृष्ठः 437.

[71] विद्यावती, गुरु रामदासः जीवन और वाणी, (समानाः संगम पब्लिकेशन, 2005), पृष्ठः44.

हो और हर कार्य को लोक हित कल्याणकारी रूप में ही किया जाए। गुरु रामदास जी की सारी वाणी लोक कल्याण के लिए है उन्होंने बिना जाति-पाति, धार्मिक भेदभाव के संपूर्ण वाणी लोक हित के लिए रची। गुरु जी ने लोकभावना के साथ एकात्मकता स्थापित करने के लिए लोक जीवन के विभिन्न लोक-काव्य रूपों को वाणी के संदेश का माध्यम बनाया। इस तरह हम देखते हैं कि गुरु रामदास जी ने अपनी कल्पना शक्ति, व्यापक अनुभव एवं गहन अनुभूति के बल पर अपनी वाणी में ऐसे लोक- काव्य रूपों का प्रयोग किया जो उस युग की दृष्टि को पेश करने के साथ-साथ भावों की सहज प्रतीति, विचारों की स्पष्टता को मूर्तिमान करने में अधिक सहायक हुए हैं। अधिकतर काव्य रूप सामान्य जीवन से लिये गए है। इसलिए उनमें स्वाभाविकता है। गुरु रामदास जी ने लोक जीवन में सामान्य तथा व्यावहारिक स्तर पर प्रचलित लोक-काव्य रूपों के द्वारा वाणी के मूल भाव को सूक्ष्मता, सहजता तथा रमणीयता से प्रस्तुत किया है। गुरु रामदास जी के भीतर इन लोक-काव्य रूपों के माध्यम से विचारों को गंभीरता से प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता परिलक्षित होती है। गुरु रामदास जी ने लोक की आस्थाओं तथा विश्वास को वाणी के माध्यम से प्रस्तुत कर उन्हें कालजयी बना दिया है इसलिए वह युग बदलने के साथ आज भी अति प्रासंगिक है। आज हम जिस अस्थिरता, स्वार्थ और असमानता के दौर से गुज़र रहें हैं उसमें गुरु रामदास जी का जीवन तथा उनकी वाणी का संदेश हमें नया आलोक प्रदान करके हमारा मार्गदर्शन कर सकता है।

तृतीय अध्याय

3.0 गुरु रामदास जी की वाणीः भावगत स्वरूप

रचनाकार साधारण मनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक भावुक और विचारशील होता है इसलिए वह अपने भावों को अपने तक सीमित नहीं रखना चाहता। वह अपने भावों को अभिव्यक्त कर दूसरों को प्रभावित करता है। जब रचनाकार काव्य के माध्यम से अनुभूति को अभिव्यक्त करता है तो वह काव्य के महत्वपूर्ण पक्षों भाव तथा शिल्प का सहारा लेता है। भावन और सृजन रचना क्रिया की दो विशिष्ट स्थितियों से प्रत्येक रचनाकार को गुज़रता है।वह भावित अनुभूतियों को शिल्प के विविध विधानों के माध्यम से सृजन कर प्रस्तुत करता है। भावनाओं और भावित अनुभूतियों को सृजन के धरातल पर लाते ही अभिव्यक्ति प्रणाली के अनुरूप रचना प्रक्रिया में अंतर आरंभ हो जाता है। रचयिता को अपनी रचना वस्तु के साथ तन्मयता अर्जित करने के लिए भाव के धरातल पर रह कर ही रचना करनी पड़ती है तब भाव रचना के लिए ज़रूरी तत्व बन जाता है। ''जब तक हम किसी विचार को आत्मसात् किए रहते हैं तब तक वह विचार रहता है किन्तु जब विचार हमें आत्मसात् कर लेता है यानि हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व, तन, मन, रक्त, माँस, में घुलमिल जाता है तब भाव बन जाता है।''[72] वास्तविक्ता यह है कि रचनाकार के संम्पूर्ण व्यक्तित्व, मनोविकास का प्रभाव उसकी रचना प्रक्रिया पर पड़ता है क्योंकि भावुकता जीवन का एक ऐसा अंग है जिसके द्वारा हम किसी के दुःख सुख,विचारों को अनुभव कर सकते हैं। दुःख,सुख की विभिन्न परिस्थितियों के प्रभाव के फलस्वरूप उपजे विचार ही भाव को जन्म देते हैं। ''भाव उस विशेष रूप के चित विकार को कहते हैं जिसके अंतर्गत विषय के स्वरूप की धारणा सुखात्मक या दुखात्मक अनुभूति का बोध और प्रवृति के उत्तेजन से विशेष कर्मों की प्रेरणा पूर्वापर

[72] नीरज, दर्द दिया है, (दिल्लीः कशमीरी गेट, आत्माराम एण्ड संस, 2006), पृष्ठः 9.

संबद्ध संघटित हो।"[73] कवि की अनुभूति जिस विशिष्ट क्रम, घटना पात्र, स्थान और समय के माध्यम से प्रकट होगी वैसे ही उनके भाव एक सूत्र में बंधे हुए प्रकट होंगे वह यत्र तत्र बिखरे नहीं होंगे। कवि विशाल व्यापक जगत को दूर-दूर तक फैली प्रकृति को और अपने चारों ओर फैले हुए समाज को खुली आंखों से देखता है। इस प्रकार कवि सम्पर्क में आने वाली विशिष्ट घटना, विशिष्ट वस्तु उसके भाव बोध को उतेजित करती है। विभिन्न परिस्थितियों के प्रभाव के फलस्वरूप भाव ग्रहण कभी भी एक तरह का नहीं हो सकता। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से उपजने वाले भाव तथा उनकी प्रतिक्रिया भी भिन्न होगी।

रचना के माध्यम से वह मन के भावों को सब के सम्मुख प्रकट करता है। कवि की कल्पना भाव से प्रेरणा लेकर ही जन्म लेती है तथा कोई रचना भाव के आधार पर ही आकार ग्रहण करती है। साहित्य में अधिक प्रभाव उत्पन्न करने वाला तत्व भाव है एक तरह से इसको साहित्य का प्राण तत्व भी कहा जा सकता है क्योंकि भाव ही किसी रचना में जान डालते हैं। लेखक रचना के द्वारा अपने भावों का प्रेषण कर पाठकों तक पहुँचाता है। भाव मन में उत्पन्न होने वाले ऐसे विकार नहीं हैं जो कभी उत्पन्न होते हैं और कभी नहीं होते यह तो मानसिक तौर पर हमारे जीवन के अंग संग होकर सदा व्याप्त रहते हैं क्योंकि परिस्थितियों के प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ते हैं और इन प्रभावों के कारण ही मन में विभिन्न भाव पैदा होते हैं। भावों का मानव जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है इन्हीं के कारण ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। मानव जीवन भावों का ही प्रवाह है और लेखन भाव तथा संवेदना की

[73] सुधाकर पांडेय, आचार्य रामचन्द्र शुक्लः प्रतिनिधि निबंध, (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, द्वितीय सं 1972), पृष्ठः 63-64.

कथा है। लेखक अपनी भावानुभूति की अभिव्यक्ति सौन्दर्यपूर्ण विधान से प्रकट कर पाठक तक पहुँचाता है। भावों की इसी सौन्दर्यपूर्ण सम्प्रेषण कला को गुरु रामदास जी की वाणी में देखा जा सकता है। गुरु रामदास जी दयावान, नम्र, सहनशील व्यक्तित्व के मालिक थे उनका यही व्यक्तित्व उन्हें समाज के प्रति अधिक भावुक बनाता है। गुरु रामदास जी की भावुकता का निश्चल रूप वाणी में देखने को मिलता है उन्होंने जिन भावों को केन्द्र बनाकर वाणी का सृजन किया है वह प्रेम, वेदना, प्रभुमिलन इत्यादि के इर्द गिर्द घूमते हैं क्योंकि जो लेखक जितना अधिक भावुक होता है उसकी रचना में उतनी भावुकता देखने को मिलती है जो जितना अंतरंग होगा उसके भाव उतने वैयक्तिक होगे। बहिरंग प्रवृति वाले लेखक की भावना व्यक्तित्व प्रधान न होकर समाज प्रधान होगी। गुरु रामदास जी में दुःख सुख, प्रेम, दया, निर्मलता इन सभी भावों का सम्मिश्रण देखा जा सकता है। इन की वाणी में लोक के भावों की झलक सामूहिक वेग में प्रस्तुत होती है। लोक-काव्य के विभिन्न रूपों में संपूर्ण जाति की भावनाएं, प्रवृतियाँ, रूचियां एकस्वरता के साथ रूपायित होती हैं लोक-काव्य के रूप लोगों की रूचियों तथा भावनाओं को प्रकट करने के साधन हैं।लोक की भावनाओं का प्रकटीकरण समय-समय पर किये जाने वाले रीति रिवाज़ों,तीज त्यौहारों आदि के अवसरों पर लोक काव्य के रूपों के माध्यम से किया जाता रहा है जिसमें लोक द्वारा आह्लाद और हर्ष को लोक गायन की विधियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। गुरु रामदास जी ने वाणी में लोक के प्रत्येक जीवन पक्ष से संबंधी भावों को, लोक की खुशी, उल्लास को सही दिशा देकर ईश्वरीय प्रेम के सच्चे आनंद के साथ एकस्वर कर प्रस्तुत किया है। गुरु जी का अत्यंत भावुक होना उनकी वाणी को अधिक भावयुक्त बना देता है। गुरु रामदास जी

की इन्हीं भावमयी प्रवृतियों तथा भावगत स्वरूप का अवलोकन उनकी वाणी में प्रकट होने वाले विचारों तथा भावों के माध्यम से किया जाएगा-

समाजिक रिश्तेः

रिश्तों का वास्तविक आधार परिवार है जिसके माध्यम से रिश्ते जन्म लेते हैं। परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है क्योंकि समाज का निर्माण विविध परिवारों से मिलकर होता है तथा परिवार का जन्म पति-पत्नी के गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर होता है। ''परिवार बच्चों के पालन-पोषण, संस्कार, आचार-व्यवहार आदि का आधार होता है। इसके द्वारा समाज की सांस्कृतिक विरासत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है।''[74] गुरु रामदास जी की वाणी में समाजिक रिश्तों तथा उनसे उपजने वाले भावों का वर्णन मिलता है परन्तु गुरुवाणी में आध्यात्मिकता को पहल दिए जाने के कारण समाजिक रिश्तों से ऊपर गुरु तथा शिष्य का रिश्ता माना गया है।गुरु अपने शिष्य को दुनियावी कार्य व्यापारों का ज्ञान भी देता है जिस कारण शिष्य अलौकिक क्षेत्र के साथ-साथ लौकिक क्षेत्र में भी सर्वोपरि रहता है। गुरु द्वारा शिष्य को दिये गये उपदेश के कारण ही गुरु-शिष्य का रिशता सर्वोपरि माना गया है।

''गुरु सिखु, सिखु गुरु है एको, गुर उपदेसु चलाए।''[75]

गुरु रामदास जी ने गुरु शिष्य के रिश्ते को समाज द्वारा निर्मित संबंधों से ऊपर माना है। उन्होंने गुरु शिष्य प्रेम को प्रमुख मानकर दोंनो का अस्तित्व एक माना है क्योंकि शिष्य को परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग गुरु द्वारा परिलक्षित किया जाता है।

---

[74] हिन्दी विश्वकोश, सप्तम भाग, धीरेन्द्र वर्मा (सं), (काशीः नागरी प्रचारिणी सभा, प्र सं.1960),पृष्ठः 335.

[75] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी,पोथी दूजी,राग आसा,महला 4,(श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 444.

इस प्रकार गुरु शिष्य का रिश्ता स्थाई माना गया है जो शिष्य को ज्ञान रूपी रोशनी के द्वारा जीवन के सही लक्ष्य से ज्ञात करवाता है।

शिष्य के गुरु के प्रति प्रेम भावना, कृतज्ञता संबंधी भावों का स्पष्ट स्वरूप गुरु रामदास जी की वाणी में परिलक्षित होता है। गुरु रामदास जी ने शिष्य होने के नाते अपने गुरु अमरदास जी के प्रति प्रेम, निष्ठा, आभार के भाव व्यक्त किये हैं:-

"जो हमरी बिधि होति मेरे सतिगुरा सा बिधि तुम हरि जाणहु आपे।।

हम रूलते फिरते कोई बात न पूछता गुर सतिगुर संग कीरे हम थापे।।

धंनु धंनु नानक जन केरा जितु मिलिऐ चुके सभि सोग

संतापे।।४।।५।११।"[76]

गुरु रामदास जी ने बालपन में माता-पिता के गुज़र जाने के बाद बहुत कठिनाईयों भरा जीवन व्यतीत किया पर गुरु अमरदास जी का शिष्य बनने के पश्चात गुरु रामदास जी की सारी कठिनाईयां दूर हो गई। गुरु रामदास जी अपने स्वयं गुरु अमरदास जी के कृतार्थ मानते हैं। गुरु रामदास जी की प्रेम भावना तथा नम्रता के कारण ही गुरु अमरदास जी ने गुरु रामदास जी को गुरुगद्दी का वारिस बनाया। इसलिए गुरु रामदास जी ने समाज व्यापत सभी रिश्तों में से गुरु-शिष्य संबंध को सर्वश्रेष्ठ माना है।

[76] वही,पृष्ठः 167.

विवाह संबंधी रीति-रिवाज़ः

विवाह दो लोगों के बीच समाजिक तथा मान्यता प्राप्त मिलन है।लोक द्वारा विवाह के अवसर पर किये जाने वाले रीति रिवाजों के माध्यम से ही मन के भावों को लोक काव्य के द्वारा गा कर व्यक्त किया जाता है।विवाह के अवसर को लेकर वधु के मन में पैदा होने वाले खुशी के भावों का वर्णन गुरु रामदास जी की वाणी में मिलता है। गुरु जी ने जीवात्मा के भावों को तथा वाणी के मूल भाव को प्रकट करने के लिए विवाह के लौकिक पक्ष को आधार बनाया है। जीवात्मा को वधु के रूप में चित्रित कर प्रभु पति से मिलन का वर्णन किया है। समाज में विवाह के लिए मुहूर्त को अनिवार्य समझा जाता है। "वास्तव में मुहूर्त-विचार का मुख्य उद्देश्य विवाह की परिपक्वता एवं वधू के लिए चिर-सुहाग की कामना होता था।"[77] वैवाहिक खुशी के कारण कन्या के मन में उठने वाले भावों तथा विवाह कार्य को सम्पन्न करने के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों की झलक गुरु रामदास जी की वाणी में मिलती है। गुरु रामदास जी ने लौकिक विवाह के द्वारा आध्यात्मिक विवाह का चित्र प्रस्तुत किया है।

"आइआ लगनु गणाइ हिरदै धन ओमाहीआ बलिराम जीउ।।

पंडित पाधे आणि पती बहि बाचाइआ बलिराम जीउ।।

पती बाचाई मन वजी बधाई जब साजन सुणे घर आए।।

गुणी गिआनी बहि मता पकाइआ फेरे ततु दिवाए।।

[77] मनमोहन सहगल,गुरु ग्रंथ साहिबः एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब, तृतीय सं.2008), पृष्ठः 561.

वरु पाइआ पुरखु अगंमु अगोचरु सद नवतनु बाल सखाई।।''[78]

गुरु रामदास जी ने वाणी में जीवात्मा तथा परमात्मा के मिलाप को प्रदर्शित किया है। गुरु की कृपा से शुभ मूहुर्त के कारण जीवात्मा ने कभी भी न बिछुड़ने वाले पति को पा लिया है। गुरु रामदास जी ने लोक में से विवाह के अवसर का उदाहरण लेकर लोक भावों को प्रस्तुत किया है। गुरु जी ने गुरु रूपी पुरोहित द्वारा पोथी की वाचना करके शुभ मुहूर्त निकालकर आत्मा वधू तथा ब्रह्म वर के विवाह की झांकी प्रस्तुत की है।

ससुराल जाने की खुशीः

विवाह के उपरांत ससुराल जाने की प्रसन्नता वधू को पति के मिलाप तथा वधू के स्थाई घर जाने के कारण होती है।ससुराल ही वधू का स्थाई घर होता है। वधु अपने पति का प्रेम तभी प्राप्त कर पाती है जब वह सत्याचाण, आज्ञापालन जैसे गुणों को धारण करती है। ''स्त्री सच्चे अर्थों में तब पति को प्राप्त करती है जब वह बत्तीस सुलक्षणों से समलंकृत होकर ससुराल आती है।''[79] वधू अपने पति को मिलने तथा ससुराल जाने का स्मरण करके मन ही मन प्रसन्न हो उठती है। गुरु रामदास जी ने वधु की प्रसन्नता को आधार बनाकर स्थाई प्रसन्नता का ज्ञान देने के लिए जीवात्मा तथा परमात्मा के रूपक का सृजन किया है-

''पेवकड़ै हरि जपि सुहेली विचि साहुरड़ै खरी सोंहदी।।

---

[78]शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी,पोथी तीजी,राग सूही, छंत,महला 4,(श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः757.

[79] मनमोहन सहगल,गुरु ग्रंथ साहिबः एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब, तृतीय सं.2008), पृष्ठः 510.

साहुरड़ै विचि खरी सोंहदी जिनि पेवकड़ै नामु समालिआ।।'' [80]

मायके घर को स्त्री के लिए स्थाई नहीं माना गया है। ''ससुराल गमन सब स्त्रियों के लिए न केवल अनिवार्य बताया गया है ब्लकि ससुराल जाने का समाचार सुनकर प्रसन्न होने की प्रेरणा दी है।''[81] गुरु रामदास जी ने वधू को दी जाने वाली इसी प्रेरणा को आधार बनाकर परमात्मा के चरणों में ही जीवात्मा का सही स्थान निर्धारित किया है। गुरु जी मनुष्य को जीवन में हरि नाम का जाप करने का उपदेश देते हैं क्योंकि तभी परमात्मा की दरगाह में जीवात्मा को शोभा प्राप्त होती है। गुरु जी ने लोक प्रचलित रीतियों,काव्य रूपों के अनुभव, कल्पना, भावनाओं को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है जिसमें गुरु जी के आध्यात्मिक भावों का प्रतिनिधित्व रूप झलकता है और साथ ही लोक-काव्य रूपों के द्वारा सामूहिक भावना का सहजमयी चित्र भी प्रस्तुत होता है।

वस्त्राभूषणः

लोक में आभूषण, श्रृंगार विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का विशेष स्थान है। विभिन्न प्रकार के त्यौहारों तथा उत्सवों पर विशेष श्रृंगार के प्रसाधनों के द्वारा लोक अपनी खुशी व्यक्त करता है। सुंदर वस्त्र तथा श्रृंगार समाज में अच्छी प्रतिष्ठा कायम करने में अहमं भूमिका निभाते हैं। गुरु रामदास जी ने आभूषण, सुंदर वस्त्रों का निषेध कर नाम स्मरण तथा प्रभु प्रेम को ही सबसे उत्तम माना है। उन्होंने लोक साज-सज्जा के भावों को आध्यात्मिकता से जोड़कर प्रस्तुत किया है-

---

[80] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी,पोथी पहली, सिरी राग,छंत, महला 4,(श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 78.

[81] मनमोहन सहगल,गुरु ग्रंथ साहिबः एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब, तृतीय सं.2008), पृष्ठः 510.

"कनिक कनिक पहिरे बहु कंगना, कापरू भांति बनावैगो।।

नाम बिना सब फीक फीकाने जनमि मरि फिरि आवैगे।।"[82]

गुरु रामदास जी ने वाणी में लोगों द्वारा पहने जाने वाले आभूषणों का वर्णन किया है।लोग स्वर्ण के विभिन्न कंगन आभूषण इत्यादि पहनते हैं, विशेष प्रकार के वस्त्र धारण करते हैं पर प्रभु नाम के बिना बेरंग रहते है। गुरु जी प्रभु नाम को ही सच्चा और सुंदर आभूषण मानते हैं और उन्होंने लोगों को दुनियावी श्रृंगार की प्रवृति छोड़कर स्थाई प्रभु नाम का श्रृंगार करने की प्रेरणा दी है। लोक में आभूषण, विभिन्न प्रकार के वस्त्र जीवन में रंग भरने के कारण प्रचलित हैं। लोक काव्य में आभूषणों का वर्णन व्यक्ति की आर्थिक खुशहाली का प्रतीक है। लोक में विभिन्न काव्य रूपों के द्वारा स्त्रियों के मनवांछित आभूषणों के प्रति भावना को गायन के द्वारा प्रकट किया जाता है पर गुरु जी ने दुनियावी श्रृंगार को व्यर्थ मानकर प्रभु के प्रेम को स्थाई आभूषण माना है।

लोक के आचार व्यवहारः

गुरु जी के युगीन परिवेश में जनमानस आडम्बरों को महत्व देता था। धर्म तथा आदर्शों का पालन भी लोगों में दिखावे के लिए होता था।लोग संसारिक मर्यादा के लिए झूठ के दिखावे में पड़ रहे थे।ऐसे में गुरु जी का समाज सुधारक दृष्टिकोण जनमानस को आड़म्बरों के प्रति सजग करता है-

"कब कोऊ लोगन कउ पतीआवै, लोक पतीणे ना पति होइ।।

[82] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी,पोथी दूजी,राग आसा ,महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 365.

जन नानक हरि हिरदै सद धिआवहु ता जै जै करे सभकोइ।।''[83]

गुरु रामदास जी मनुष्य को सच्चे मन से प्रभु भक्त बनने के लिए उपदेश देते हैं। भले ही मनुष्य झूठ का दिखावा करके अन्य लोगों को आश्चर्य-चकित करेगा परन्तु इससे भी परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती ब्लकि हर समय प्रभु नाम का स्मरण करते रहने से प्रभु प्राप्त होगा। लोक-काव्य रूपों में समाज की स्थिति का प्रदर्शित रूप जो कि लौकिक आधार पर दुनियावी रूप में खानदान की प्रशंसा,महत्व को दर्शता है उसे लोक-काव्य के माध्यम से गायन के द्वारा प्रकट किया जाता है। गुरु जी ने लौकिक प्रशंसा को आधार बनाकर ईश्वर की प्रशंसा करने की,गुणगान करने की प्रेरणा लोक को दी है।

माता-पिता का आदरः

अपने पूर्वजों का सम्मान करना परम्परित धर्म है। संतान अपने माता-पिता की ऋणी होती है क्योंकि माता-पिता जन्म देकर,उसका पालन-पोषण करके उसे समाजिक कार्यों के योग्य बनाते हैं। इसी कारण अपने माता-पिता का आदर,सम्मान करना संतान का धर्म हो जाता है। गुरु रामदास जी ने अपनी वाणी में लोक के इस परम्परित सामान्य धर्म का वर्णन किया है तथा पुत्र द्वारा पिता का अनादर महापाप माना गया है-

''काहे पूत झगरत हउ संगि बाप

जिनके जणे बडीरे तुम हउ तिन सिउ झगरत पाप।।''[84]

[83] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी,पोथी दूजी, राग आसा, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 365.

गुरु रामदास जी ने अपने पुत्र पिर्थीचंद के माध्यम से प्रत्येक संतान को माता-पिता का सम्मान करने का उपदेश दिया है। गुरु जी अपने पुत्र पिर्थीचंद को गुरगद्दी का वारिस न बनने पर समझाते हैं कि अपने पिता संग झगडा क्यों करते हो जिन्होंने तुम्हें जन्म देकर बड़ा किया है उनसे झगड़ा करना पाप है। गुरु जी ने समाज का सच्चा चित्र प्रस्तुत करते हुए अपने पुत्र के प्रति भावों को प्रकट कर लोक को शिक्षा दी है।

निंदाः

किसी को नीचा दिखाने के लिए, उसके विरुद्ध की गई झूठी बातें संबंधित व्यक्ति की निंदा करना कहलाता है। निंदा करने वाला मनुष्य चुगली, झूठ का सहारा लेकर दूसरों की छवि खराब करता है। ऐसा करके वह अपने कार्य में सफल तो हो जाता है पर निरंतर अनैतिक कार्यों का भागीदार बन जाता है। ''निंदा का अर्थ ऐसी बात कहना जिससे किसी का दुगुर्ण, दोष, तुच्छता इत्यादि प्रकट हो।''[85] गुरु रामदास जी ने अपनी वाणी में इस समाजिक अनैतिकता की भर्त्सना की है उन्होंने चुगली निंदा करने वाले जीव को अस्थिर बताया है-

''जिस अंदरि चुगली चुगलो बजै कीता करतीआ ओस दा सभ मइआ।।

---

[84] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी चौथी, राग सारंग,दुपदे ,महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 1200.

[85] हिन्दी शब्दसागर,पंचम भाग, श्यामसुंदर दास (सं), (काशीः नागरी प्रचारिणी सभा, 1968), पृष्ठः 2601.

नित चुगली करे अणहोंदी पराई मुहु कि न सकै ओस दा काला भइआ।।''[86]

गुरु रामदास जी के अनुसार जो व्यक्ति दूसरों से ईर्ष्या करके ,चुगली निंदा करता है उसके द्वारा किये हुए समस्त अच्छे कार्य भी मूल्यहीन हो जाते हैं। इस प्रकार गुरु रामदास जी ने समाज में अनैतिक कर्म करने वाले लोगों को वाणी के द्वारा उपदेश दिया है। गुरु रामदास जी द्वारा लोक व्याप्त अनैतिक, दुराचारों का वर्णन केवल जीवात्मा को ज्ञान देने के लिए किया है। वाणी के अनुसार जीवात्मा को दुश्चरित्र को छोडकर परमात्मा नाम का स्मरण कर लोक मंगल की कामना करने वाला चरित्र धारण करने की प्रेरणा दी है। लोक-काव्य में शादी के अवसर पर मनोरंजन के लिए गाए जाने वाले छंतों में लड़के तथा उसके परिवार की निंदा की जाती है पर यह केवल मनोरंजन तथा हंसी मज़ाक के लिए होता है। गुरुवाणी में गुरु रामदास जी ने मन में द्वेष रखने वाले व्यक्ति की कड़ी आलोचना की है और वाणी का आश्रय लेकर नैतिकता पूर्ण सुच्चरित्र धारण करने की प्रेरणा गुरु रामदास जी ने दी है।

पाखण्डों का विरोधः

गुरु रामदास जी की वाणी में लोगों द्वारा किये जाने वाले पाखण्ड़ों,मिथ्या कार्यों का वर्णन किया गया है। वाणी में गुरु जी ने विभिन्न पाखण्डों को मानने वाले लोगों को अज्ञानी कहा है जो माथे पर तिलक लगाकर घूमने वाले को ज्ञानी समझकर उसका अनुकरण करते हैं। गुरु जी ने गोइंदवाल साहिब में अज्ञानी तपे को ज्ञान देकर जीवन का मर्म समझाया था-

[86] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी पहली, राग गउड़ी, वार श्लोक महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः308.

"जिना अंदरि कूड़ू वरतै सचु न भावई।।

जे को बोलै सचु कूडा जलि जावई।।

कूड़ियारी रजै कूड़ि जिठ विसटा कागु खावई।।" [87]

गुरु रामदास जी कहते हैं कि जिनके भीतर सत्य का प्रकाश नहीं है वह अज्ञान के अंधकार में जीने के कारण यह नहीं जान पाते कि सत्य का आश्रय ले लेने से पाखण्डों का अंत हो सकता है।पाखण्डों में पड़े रहने के कारण उन लोगों की बुद्धि उस कौए के समान होती है जो चतुर होने के बावजूद भी मल भक्षण ही करता है।इसीलिए गुरु रामदास जी ने वाणी का अनुकरण कर, पाखण्डों को छोड़कर सत्यवादी बन कर जीवन यापन करने का उपदेश दिया है।

प्रेम का स्वरूपः

मनुष्य मन के भावात्मक तथा मानसिक अवस्थाओं के सकारात्मक रूप को प्रेम कहा जाता है।दया,करूणा और स्नेह जैसे गुण प्रेम का प्रतिनिधित्व करते हैं। "वह मनोवृति जिसके अनुसार किसी वस्तु यां व्यक्ति आदि के संबंध में यह इच्छा होती है कि वह सदा हमारे पास रहे।"[88] अर्थात मनवांछित वस्तु या व्यक्ति से लगाव की भावना,जिससे इच्छित वस्तु या व्यक्ति से दूरी का भाव मनुष्य मन में निराशा पैदा कर देता है। गुरु रामदास जी की भावात्मक अनुभूति का मूल आधार ईश्वर प्रेम है। प्रेम से ही अद्वैत अवस्था प्राप्त की जा सकती है जिससे अपने-पराये का अंतर मिट

[87] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी,पोथी दूजी, राग सोरठ की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 646.

[88] हिन्दी शब्दसागर,छठा भाग, श्यामसुंदर दास (सं), (काशी, नागरी प्रचारिणी सभा,1968), पृष्ठः 3244.

जाता है। ''आत्मा रूपी प्रेम का परमात्मा रूपी प्रेम में लीन हो जाना ही प्रेम का शिखर है।'' [89] गुरु रामदास जी ने अपनी वाणी में परमात्मा के प्रति प्रेम भाव प्रकट किये हैं-

''तनु मनु काटि काटि सब अरपी

विचि अगनि आपि जलाई।''[90]

गुरु जी ने परमात्मा को प्राप्त करने के लिए जीवात्मा को अपना तन, मन प्रभु ऊपर अर्पण कर अपने आप को विरह की आग में जलाने का वर्णन किया है। गुरु रामदास जी ने ईश्वर प्रति प्रेम के भावों को स्पष्ट करने के लिए जल-मछली, पपीहा-स्वाति की बूँद आदि की भांति अनेक प्रसंगों का वर्णन कर प्रेम के स्वरूप को प्रभु प्रेम के माध्यम से सही अर्थों में परिलक्षित किया है। जल और मछली के प्रेम भाव को व्यक्त करके उन्होंने प्रभु के प्रति अपने भाव प्रकट किये हैं-

''मीने प्रीति भई जल नाई।।

सतगुरु प्रीति गुरसिख मुखि पाई।।

सांरंगि प्रीति बसै जल धारा।।

हम चात्क दीन सतिगुरु सरणाई।।

हरि हरि नामु बूंद मुख पाई।।''[91]

---

[89] गोबिंद त्रिगुणायत, हिंदी की निर्गुण धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, (इलाहाबादः न्यू ईरा प्रेस,1961), पृष्ठः 587.

[90] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी तीजी, राग सूही, असटपदीआं, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः757.

गुरु जी ने वाणी में जल और मछली के प्रेम का वर्णन करते हुए दोनों के एक दूसरे पर आधारित अस्तित्व को प्रकट किया है जिसमें एक के न होने पर दूसरा बेमूल्य है। ऐसे ही गुरु जी ने गुरु प्रेम से विहीन जीवात्मा को अस्तित्वहीन माना है। गुरु रामदास जी ने लोक को प्रेम के उत्तम रूप् की शिक्षा देने के लिए लोक प्रचलित जल-मछली के प्रसंग को ईश्वरीय प्रेम से जोड़कर प्रस्तुत किया है। लोक-काव्य रूपों में प्रेम का वर्णन केवल दुनियावी पक्ष से ही संबंधित है पर गुरु जी ने मनुष्य के मनुष्य प्रति प्रेम को निरर्थक मानकर ईश्वर प्रेम को सार्थक माना है।

वात्सल्य प्रेमः

माता-पिता द्वारा संतान के प्रति प्रकट किये जाने वाला प्रेम वात्सल्य प्रेम कहलाता है।वात्सल्य शब्द संस्कृत के वत्स से उत्पन्न है जिसका अर्थ पुत्र तथा संतान से लिया जाता है।माता-पिता का संतान के प्रति प्रेम,गुरु का शिष्य के प्रति प्रेम जब परिपुष्ट होता है तो वात्सल्य भाव कहलाता है। यही वात्सल्य भाव जब एक भक्त के द्वारा ईश्वर के प्रति उपजता है तो भक्त अपने आपको ईश्वर का बालक मानकर अपने मन के सभी भावों को ईश्वर के समक्ष प्रकट करता है। ''वात्सल्य भाव रति दो प्रकार की है पहली भगवान को बालक और अपने आपको गुरु जन के रूप में मानना तथा दूसरी में अपने आपको भगवान का बालक स्वीकार करना। संत कवियों ने दूसरी तरह की भक्ति को ही स्वीकार किया है। वह भगवान को बालक न मानकर खुद को

[91]शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी पहली, राग माझ, चउपदे घरु 1, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 164.

उसके बालक बनाने में उत्सुक दिखाई पड़ते है।''[92] गुरु रामदास जी ने भी ईश्वर को अपने माता-पिता के रूप में चित्रित कर इसी प्रकार के भाव प्रकट किये हैं-

''हम बारिक तुम पिता प्रभ मेरे

जन नानक बखसि मिलाए।।'' [93]

''मेरा मात पिता गुरु सतिगुर पूरा।

हम बारिक दीन करहु प्रतिपाला।।''[94]

गुरु रामदास जी ने वात्सल्य भाव का वर्णन इसलिए किया है क्योंकि बचपन में माता-पिता के गुज़र जाने के बाद तथा गुरुगद्दी पर विराजमान होने तक का जिंदगी का पथ कठिनाईओं से भरा था पर गुरु अमरदास जी के वात्सल्य प्रेम मिलने के बाद गुरु रामदास जी ने अपने आपको गुरु अमरदास जी की छत्र-छाया में सुरक्षित महसूस किया। इस तरह वाणी में गुरु अमरदास जी के प्रति प्रकट भाव वात्सल्य प्रेम के ही अंतर्गत आयेंगे क्योंकि गुरु रामदास जी ने सदैव गुरु अमरदास जी को अपना माता-पिता मानकर ही सेवा की।वाणी में परिलक्षित वात्सल्य भाव के माध्यम से गुरु जी ने माता-पिता के संबंध तथा प्रेम के द्वारा ही ईश्वर को अपना माता-पिता तथा स्वयं को उसका बालक मानने का उपदेश दिया है। लोक काव्य में माता-पिता तथा संतान के आपसी प्यार का वर्णन वात्सल्य भाव को चित्रित करता है वात्सल्य भाव

---

[92] रत्न सिंह जग्गी, गुरु नानकः व्यक्तित्व कृतित्व और चिंतन, (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब मार्च 1975), पृष्ठः 581.

[93] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी,पोथी तीजी, राग रामकली, घरु 1, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005),पृष्ठः 881.

[94] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी,पोथी पहली, राग माझ, चउपदे, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 94.

के साथ-साथ यह रिश्ता मर्यादा सम्पन्न भी होता है। पंजाबी लोक-काव्य में पिता को बाबुल के रूप में पेश किया गया है। माँ के प्रेम से संतान अनभिज्ञ नहीं रह सकती। गुरु रामदास जी ने माता-पिता के लौकिक प्रेम के माध्यम से ईश्वर के जीवों के प्रति वात्सल्य भावों का वर्णन किया है।

दास्य भावः

दास्य भाव में भक्त अपने आप को ईश्वर का दास मानता है तथा परमात्मा को भक्त वत्सल, दीन दयालु कहकर संबोधित करता है। दास्य भाव भक्ति का मूल तत्व है। इसमें दास्य भक्ति के माध्यम से भक्त को अपने लघुत्व की अनुभूति होती है। इसी कारण वह खुद को दास कहकर परमात्मा का प्रेम प्राप्त करना चाहता है। "दास से अभिप्राय सेवक, नौकर। वह जिसने अपना जीवन स्वामी की सेवा में लगा दिया है।"[95] गुरु रामदास जी की वाणी में दास्य प्रेम आधारित भक्ति के दर्शन होते हैं। गुरु जी परमात्मा के द्वार से भिखारी के रूप में नाम का दान मांगते हैं-

"सेवक का होय सेवक वरतै करि करि विनय बुलाई।।

नानक की बेनती हरि पहि गुर मिलि गुर सुख पाई।।

जा तुधु होवहि सु तू है होवहि तुध सेवक पैज रखाई।।

भण्डार भरे भक्ति हरि तेरे जिसु भावै तिसु देवाई।।

जिसु तू देहि सोई जनु पाई हारे निरफल सब चतुराई।।

[95] भार्गव आदर्श हिन्दी कोश, पंडित रामचन्द्र पाठक, (वाराणसीः भार्गव बुक डिपो, छठा सं. 1964), पृष्ठः 290.

सिमिर सिमिर सिमिर गुर अपना सोया मन जगाई।।''[96]

गुरु रामदास जी स्वयं को दासों का दास और परमात्मा को सेवकों का सेवक कहकर परमात्मा की असीमता का वर्णन किया है। उन्होंने परमात्मा के दास बनकर ही भक्ति का दान मांगा है तथा मन की निष्काम भावनाओं को त्याग कर परमात्मा के दास बनने के लिए उपदेश दिया है।

सखा भावः

सखा से अभिप्राय वह संगी,साथी जो दुःख सुख में सदा साथ रहे।सखा वह मित्र होता है जो अपने मित्र के सुख-दुःख को समान रूप में अनुभव करे। यही मित्रता का भाव जब भक्त के द्वारा परमात्मा के प्रति महसूस किया जाता है तो वह सखा भाव कहलाता है। ''भगवान के प्रभाव,तत्व, रहस्य और महिमा को समझकर परम विश्वासपूर्वक मित्र भाव से उनकी रूचि के अनुसार बन जाना सख्य भक्ति है।''[97] गुरु रामदास जी सखा भाव प्रकट करते हुए कहते हैं-

''आओ सखी हरि मेल करेहा।। मेरे प्रीतम का मैं देई सनेहा।।

मेरा मित्र सखा सो प्रीतम भाई मै दसि हरि नरहरीए जीउ।।'' [98]

[96] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी तीजी, राग सूही, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 758.

[97] जयदयाल गोयन्दका, नवधा भक्ति, (गोरखपुरः गीता प्रेस,1994), पृष्ठः 45.

[98] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी पहली, राग माझ, चउपदे, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 94.

यहाँ पर गुरु जी ने परमात्मा के बारे में पता बताने वाले को अपना मित्र कहा है। इसके अतिरिक्त वाणी में वर्णित एक और शब्द में उन्होंने परमात्मा को अपने प्राणों का साथी कहा हैः

"मैं हरि हरि खरचु लया बनि पल्लै।।

मेरा प्राण सखाई सदा नालि चलै।।"[99]

गुरु रामदास जी ने हरि परमात्मा के साथ सखा भाव प्रकट कर उस मित्र के मिलाप को ही सुख की प्राप्ति बताया है। सखा भाव के बिना परमात्मा का सामीप्य प्राप्त नहीं हो सकता तथा सखा भाव में एक साथ रहने का संकल्प होता है।गुरु जी ने सखा,मित्र के अत्यंत सरल उदाहरण देकर जीवात्मा को परमात्मा के प्रति सखा भाव अपनाकर,परमात्मा प्राप्ति का मार्ग दिखलाया है।

निरलेपता (निर्लिप्ता) (निर्लेप)

निरलेपता का अर्थ संसारिक मोह माया, राग द्वेष से दूर रहना है। जैसे तालाब में खिला हुआ कमल फूल कीचड़ से निर्लिप्त रहता हुआ अपना अलग अस्तित्व कायम रखता है। ऐसे ही गृहस्थ जीवन में मनुष्य परिवार की समस्याओं के कारण उत्पन्न तनाव की स्थिति में उलझ जाता है पर अपने आपको प्रत्येक स्थिति से विरक्त रखकर ही मनुष्य सफल हो सकता है। निरलेपता से अभिप्राय "राग द्वेष आदि से मुक्त जो किसी विषय में आसक्त न हो, जो कोई संबंध न रखता हो।"[100] परिवार में रहते हुए भी उसको इच्छा रहित होने का ढंग सीखना चाहिए। घर की समस्याओं में मानसिक तथा

[99] वही, पृष्ठः 94

[100]हिंदी शब्दसागर, श्यामसुंदर दास(सं), (काशीः नागरी प्रचारिणी सभा, 1968), पृष्ठः 2682

भावुक तौर पर प्रभावित नहीं होना चाहिए। गुरु रामदास जी ने वाणी में कर्म बंधन को दूर करके समत्व,शुद्ध हृदय वाला आचरण धारण करके ईश्वर का गुण गायन करने को कहा है-

''सतिगुरु सेवन से वडभागी।।

सचे सबदि जिना एक लिव लागी।।

गिरह कुटंब महि सहजि समाधि।।

नानक नाम रते से सचे वैरागी।।''[101]

जब कोई व्यक्ति भौतिक वस्तुओं के कारण उपजने वाले सुखों तथा दुःखों के पार चला जाता है तो भौतिक भोग विलास उसे आकर्षित नहीं कर पाते और न ही सांसरिक दुःख उसे दुःखी कर पाते हैं तो ऐसी स्थिति में वह परमात्मा के साथ एकस्वरता प्राप्त कर लेता है।

गुरु रामदास जी को किसी भी सांसारिक वस्तु से लगाव नहीं था। एक बार गुरु अमरदास जी को किसी ने अमूल्य मोतियों की माला भेंट की वह माला गुरु अमरदास जी ने गुरु रामदास जी को दे दी। गुरु रामदास जी ने वह माला एक लोभी को दे दी जो बावली साहिब के रास्ते में बैठकर गुरु जी के बारे में गलत बोलता रहता था। इस तरह गुरु जी ने किसी भी दुनियावी वस्तु में मन नहीं लगाया पर अपने परिवार के प्रति जो जिम्मेवारी थी उसे बाखूबी निभाया। इस तरह उन्होंने सांसरिक जीवन यापन

[101] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी चौथी, राग सारंग की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 1246.

करते हुए भी निरलेपता वाला ही जीवन व्यतीत किया और दूसरों को भी अपनी इच्छाओं को छोड़ हरि का नाम जपने का ही उपदेश दिया-

"यह भूपति राजे रंग दिन चार सुहावणा।।

यह माया रंग कुंसभ खिन महि लहि जावणा।।

चलदिआ नाल चलै सिरि पाप लै जावणा।।

जा पकड़ चलाइआ कालि तां खार डरावना।।

उह वेला हत्थ न आवै फिरि पछतावना।।"[102]

इस तरह गुरु जी ने अपने भावों को अभिव्यक्त कर मनुष्य को परिवार में गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी इच्छाओं से रहित होने का उपदेश दिया है। गुरु जी कहते हैं कि जीवन यापन करना तथा गृहस्थ जीवन की ज़िम्मेवारी को निभाना मनुष्य का कर्तव्य है पर मूल कर्तव्य ईश्वर नाम का स्मरण करना है जिसके लिए जीवात्मा को मनुष्य देह का वरदान प्राप्त हुआ है। संपूर्ण लोक-काव्य के क्षेत्र में जन्म से लेकर मृत्यु तक किये जाने वाले अनुष्ठान मनुष्य की गृहस्थी का ही वर्णन करते हैं। मनुष्य मन के भावों को अनुष्ठानों के अवसर पर लोक-काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है पर गुरु जी ने गृहस्थ जीवन यापन करते हुए भी मन को अनभिज्ञ रखने की प्रेरणा दी है इसलिए उन्होंने लोक-काव्य रूपों को वाणी के वाहक बनाकर प्रस्तुत किया है।

[102] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी दूजी, राग सोरठि की वार,महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 645.

इस तरह हम कह सकते हैं कि भाव या संवेग किसी व्यक्ति के मन में परिस्थितिवश या स्थायी भावात्मक प्रवृति के रूप में विकसित हो जाता है तो उसे भावना का नाम दे दिया जाता है। भाव हर एक प्राणी में समान रूप से मिलता है। भाव मन में स्थाई रूप में उपजने वाले विकार हैं जो जीवन के प्रत्येक पक्ष के अंग संग होकर व्यक्तित्व का निर्माण करने में सहायक होते हैं। भाव हृदय को स्पर्श करने वाली रसमय क्रिया है जिसके कारण मनुष्य सुख-दुःख को अनुभव करता है सुख-दुःख को महसूस करने की स्वाभाविक प्रवृति के कारण अपने भावों को प्रकट करता है तथा दूसरे के भावों को समझने का चेष्टा करता है। एक लेखक या रचनाकार भी इसी तरह रचना के माध्यम से अपने भावों को पाठक के सम्मुख सम्प्रेषित करता है। गुरु रामदास जी की वाणी में भावों का चित्रण जीवात्मा तथा परमात्मा के अलौकिक प्रेम के रूप में परिलक्षित होता है। उन्होंने उपासक के हृदय में पैदा हुई प्रेम की भावना को, भक्ति के विषय, नम्रता, प्रभु में विश्वास, दास्य, सख्य, वातसल्य इत्यादि भावों को लोक प्रचलित विभिन्न कार्य व्यवहारों से संबंधित भावों के साथ ऐकात्म्य के रूप में चित्रित किया है। गुरु जी ने अपनी वाणी में भावों की मधुरता, ज्ञान का प्रकाश, आशा, विश्वास का वर्णन कर मानवी जीवन को मधुरता इत्यादि गुणों से ओत-प्रोत कर आध्यात्मिक भावों का स्पर्श देकर नवीन रूप दिया है। गुरु जी की वाणी में जितने भी भाव प्रस्तुत हुए हैं उनका आधार लोक प्रचलित धारणाएं हैं। गुरु जी ने लोक द्वारा दिन-त्यौहारों, खुशी गमीं के अवसरों पर प्रकट किये जाने वाले भावों का वाणी के साथ एकस्वरता में सांमजस्य स्थापित कर प्रस्तुत किया है। गुरु जी ने वाणी की रचना लोक को जीवन के सही मर्म से अवगत करवाने के लिए की। इसलिए उन्होंने व्यवहारिक जीवन में विचरण करते हुए लोक को भक्ति करने की प्रेरणा दी है। उनकी

वाणी में परिलक्षित सारे भाव लोक की रूचियों को प्रस्तुत करते हैं। समाज में रहने के कारण लोक की रूचियों, भावों ने गुरु जी को प्रभावित किया पर इस प्रभाव को ज्यों का त्यों ग्रहण न करके गुरु जी ने भावों का मूल आधार भक्ति, प्रभु का गुणगान माना है। जीवात्मा का उद्धार ही वाणी का मुख्य विषय है तथा सभी भावों में यही परिलक्षित होता है। गुरु जी ने अपनी वाणी में लोक भावों की मधुरता, प्रेम के साथ अपने भावों का तालमेल बिठाकर लोक को इन्हीं नैतिक प्रेमपूर्ण भावों के आधार पर जीवन यापन करने का उपदेश दिया है।

चतुर्थ अध्याय

4.0 गुरु रामदास जी वाणी में प्रयुक्त संस्कारगत लोक-काव्य रूप

4.1 पहरे

4.2 घोड़ियाँ

4.3 लावां

संस्कार धार्मिक तथा सामाजिक एकता के प्रभावशाली माध्यम हैं। समाज का और व्यक्ति का विकास करने वाले संस्कार समाज में महत्ता के धारणी हैं। समाज में मनुष्य का वैयक्तिक, समाजिक दृष्टि से उत्थान करने के लिए, जीवन को भौतिक रूप में अच्छे ढंग से उन्नत करने के लिए संस्कारों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन मानव प्रकृति की शक्तियों के समक्ष स्वयं को निर्बल और असुरक्षित महसूस करता था इसलिए उसने अपने जीवन संघर्ष को ज्यादा प्रभावी बनाने के लिए संस्कारों का सृजन किया। ''अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य के जीवन पर अपना कुप्रभाव डालने वाले अदृश्य विघनों से निरापद होने के लिए भी संस्कारों का निर्धारण समाज में किया गया।''[103] इस प्रकार प्राचीन मानव द्वारा प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा हित उपजी पूजा की विधियां संस्कारों का आधार बन गई। मनुष्य ने अपने जीवन को परिष्कृत करने के लिए जीवन के प्रत्येक अवसर पर संस्कारों को माध्यम बनाया। जिसमें उसने विभिन्न प्रकार की विधियों के द्वारा अपने जीवन की परिशुद्धता और पवित्रता कायम रखी।

संस्कार का अर्थ और प्रयोजनः

संस्कार का साधारणतः अर्थ शुद्धि, परिष्कार अथवा स्वच्छता से है। मनुष्य का जीवन संस्कार से ही परिशुद्ध होता है। '' संस्कार पद का अर्थ संस्कृत, उपयुक्त या सम्यक बनाना है। किसी विकृत वस्तु को विशेष क्रियाओं द्वारा उत्तम बना देना ही उसका संस्कार है। मनुष्य जीवन को विशिष्ट धार्मिक क्रियाओं द्वारा परिष्कृत एवं उत्तम बनाकर उसे चरमउत्कर्ष को पहुँचाया जा सकता है। जीवन को उभ्युदय की ओर

[103] रामेश्वर लाल स्वामी, हमारे संस्कार एवं रीति-रिवाज़, (जयपुरः चौपड़ा बुक कार्नर, मालवीय नगर, 2010), पृष्ठः 7.

अग्रसर करने वाली ये धार्मिक प्रक्रिया ही संस्कार है।''[104] जन्म से मनुष्य असंस्कृत होता है किन्तु संस्कारों की सम्पन्नता से वह मणि की तरह प्रकाशवान होता है और उसका जीवन निखर उठता है। संस्कारों का अनुपालन करने से मनुष्य को मनवांछित फल प्राप्त होता है और उसके प्रयोजन की सिद्धि होती है। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए तथा अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए विभिन्न संस्कारों की प्रतिष्ठा की गई। ''व्यक्ति के जीवन की शुद्धि और परिष्करण इसी आधार पर होता रहा। फलस्वरूप व्यक्ति को जीवन के विभिन्न व्यावहारिक रूप प्राप्त होते थे तथा उसका समाजिक और धार्मिक जीवन उन्नत होता था।''[105] जीवन में उत्कर्ष लाने के लिए नैतिक, आध्यात्मिक और धार्मिक प्रवृतियों के निर्माण और उनसे अपने व्यक्तित्व में श्रेष्ठता स्थापित करने का लक्ष्य मनुष्य संस्कारों के माध्यम से ही प्राप्त कर सकता है।

संस्कार का स्वरूपः

भारतीय संस्कृति में प्रत्येक शुभ अवसर को धार्मिक विधि से संपूर्ण करने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन इन्हीं संस्कारों से आवृत रहा है, जो समय-समय पर कार्यन्वित किये जाते रहें है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सम्पूर्ण जीवन विभिन्न सस्कारों से शुद्ध और पवित्र होता रहा है। '' संस्कार व्यक्ति ने शारीरिक, समाजिक बौद्धिक और धार्मिक परिष्कार के लिए की जाने वाली धार्मिक क्रिया है। इन विविध क्रियाओं को निष्ठापूर्वक करने से व्यक्ति समाज का पूर्णतः अंग बन जाता है। इस प्रकार संस्कार मनुष्य का हर प्रकार से परिष्कार करते

[104] वाचस्पति गैरोला, भारतीय संस्कृति और कला,(उत्तर प्रदेशः हिन्दी ग्रंथ अकादमी, प्र सं 1973), पृष्ठः 172.

[105] रामेश्वर लाल स्वामी,हमारे संस्कार एवं रीति-रिवाज़, (जयपुरः चौपड़ा बुक कार्नर,मालवीय नगर, 2010), पृष्ठः 9.

हैं।''[106] शरीर और आत्मा की शुद्धि और पवित्रता संस्कारों के सम्पादन से ही संभव है। मनुष्य के जीवन में अवांछित प्रभावों को खत्म करने के लिए पूजा विधियों के माधयम से संस्कारों का प्रावधान किया गया। संस्कारों का उद्देश्य मनुष्य के जीवन को निरंतर उन्नति के पथ पर अग्रसर करना ही है।

संस्कारों की उपयोगिताः

संस्कार मानव जीवन को परिष्कृत और शुद्ध करने के लिए आवश्यक हैं। मनुष्य की समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं के लिए तथा नियमित रूप में जीवन क्रम को प्रवाहित करने के लिए संस्कार महत्वपूर्ण हैं। ''वातावरण में अति मानुषी प्रभाव व्याप्त है, जिनमें बुरा और भला करने की क्षमता है। यह प्रभाव महत्वपुर्ण अवसरों पर, व्यक्ति के जीवन पर अपना अच्छा, बुरा प्रभाव डालकर हस्तक्षेप कर सकते हैं। इसलिए अमंगलकारी प्रभावों के निराकरण तथा लाभकारी प्रभावों की प्राप्ति के लिए देवों तथा दिव्य शक्तियों से सहायता प्राप्त करने की उत्कट इच्छा ही संस्कारों के मूल में निहित है।''[107] इसलिए जीवन को मंगलमयी बनाने के लिए मनुष्य संस्कारों से उपजी मान्यताओं तथा विचारों को अपनाता है। '' संस्कार जीवन के विभिन्न अवसरों को महत्व और पवित्रता प्रदान करते हैं वे इस बात पर जोर देते हैं कि जीवन के विकास का प्रत्येक चरण केवल शारीरिक क्रिया नहीं है किन्तु इसका सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि, भावना और आत्मिक अभिव्यक्ति से है।''[108] इस तरह यह

---

[106] सुखविंदर बाठ, पंजाब के संस्कारगत लोकगीतों का विश्लेषण, (दिल्लीः शिवहरि प्रकाशन, कबीर नगर, 2002), पृष्ठः13.

[107] सच्चिदानंद शुक्ल, हिंदू धर्म के सोलह संस्कार, (दिल्लीः प्रतिभा प्रतिष्ठान, 2011), पृष्ठः 29.

[108] राजबली पाण्डेय, हिन्दु संस्कार समाजिक तथा धार्मिक अध्ययन, (वाराणसीः सुरभारती प्रकाशन, पंचम सं 1995), पृष्ठः 13.

बात स्पष्ट है कि संस्कारों की व्यावहारिक उपयोगिता और उद्देश्य में मानव जीवन तथा समाज का उत्थान ही पूर्ण रूप से व्याप्त है। इसी कारण इनके मौलिक प्रयोजन को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

प्रत्येक क्षेत्र विशेष में अपने समाज के अनुरूप नियम और धारणाएं होती हैं तथा उनके प्रति निष्ठा एवं विश्वास होना बहुत ज़रूरी है इसके लिए धार्मिक तथा समाजिक प्रेरणा और अनुशासन की आवश्यकता होती है। संस्कार ही इस प्रकार की प्रेरणा और अनुशासन का सफल माध्यम हैं। संस्कारों का अनुशासन गुरु रामदास जी की वाणी में देखने को मिलता है उन्होंने पंजाब की धरती पर रहते हुए वहां के समाज के अनुसार संस्कारों का विवेचन अपनी वाणी में कर लोगों को आध्यात्मिक रूप में अनुशासित किया क्योंकि संस्कार आत्मा की शुद्धि धार्मिक क्रियाओं के माध्यम से करते हैं। जिस कारण अनुष्ठानों का महत्व बना रहता है। गुरु रामदास जी ने वाणी में लोक प्रचलित अनुष्ठानों को आधार बनाकर वाणी के मूल भाव को लोगों तक पहुँचाकर उनको आत्मिक शुद्धता प्रदान की।गुरु जी ने क्षेत्रीय संस्कारों को अपनी वाणी का हिस्सा बनाया उन्होनें जन्म,विवाह के समय प्रचलित जिन संस्कारों का सहारा लेकर अपने विचार परिलक्षित किये हैं उन्हीं का विवेचन गुरु रामदास जी की वाणी में संस्कारगत लोक-काव्य रूपों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाएगा-

पहरे:

दिन रात के आंठवे हिस्से अर्थात तीन घंटे के समय को पहर कहा जाता है। आठ पहर से भाव दिन रात के चौबीस घंटों के समय से है। चार पहर बारह घंटे का समय है। इस लोक-काव्य रूप का प्रचलन लोक में तब था जब वह समय का

विभाजन पहर के माध्यम से करते थे। गुरु रामदास जी ने पहरे लोक-काव्य रूप में वाणी के माध्यम से आध्यात्मिक संदेश दिया है। गुरु रामदास जी की पहरे वाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में सिरी राग के अंतर्गत संकलित है। गुरु रामदास जी द्वारा रचित पहरे वाणी में चार पहरों में संपूर्ण मानव जीवन का वर्णन किया गया है। इससे उन्होंने चार पहरों में मनुष्य के जीवन में किये जाने वाले संस्कारों का वर्णन किया है। गुरु रामदास जी ने समाज को धार्मिक, समाजिक तथा नैतिक अर्थात् हर एक पक्ष से प्रेरित किया है उन्होंने वाणी को समाज के विकास का जरिया बनाकर प्रस्तुत किया है। पहरे वाणी में तीन संस्कारों का उल्लेख मिलता है जिसमें गर्भाधान संस्कार, जन्म संस्कार तथा अंतिम संस्कार का वर्णन मिलता है।

गर्भाधान संस्कारः

संस्कार मानव जीवन में पूर्ण रूप से व्यापत हैं। संस्कार जन्म से पूर्व ही प्रारंभ होकर मत्यु के पश्चात निरंतर चलते रहते हैं तो फिर प्रजनन इसके प्रभाव से अछूता कैसे रह सकता है। "भारतीय संस्कृति में तीन ऋणों के अन्तर्गत पितृ ऋण से मुक्ति तथा कर्मफल व पुर्नजन्म की धारणा के अनुसार आत्मा का इस भौतिक जीवन में आना लगभग तब तक निश्चित माना जाता है जब तक वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेती ऐसे में गर्भस्थ शिशु की मंगलकामना के लिए माँ के गर्भ में उसकी सुरक्षा के लिए तथा उसके पिछले कर्मों के परिमार्जन के लिए गर्भाधान संस्कार की कल्पना की गई है।"[109] इस तरह गृहस्थ जीवन के लिए सन्तान प्रकाश पुंज के समान होती है इसलिए गर्भ धारण करते ही भावी संतान के प्रति माता-पिता सपने सजाने लग जाते हैं पर

[109] सुखविंदर बाठ,पंजाब के संस्कारगत लोकगीतों का विश्लेषण, (दिल्लीः शिवहरि प्रकाशन, कबीर नगर, 2002), पृष्ठः13.

गुरु रामदास जी ने 'पहरे' लोक-काव्य रूप के अंतर्गत गर्भ में पल रहे शिशु की अवस्था का वर्णन किया है और कहा है कि जो हरिनाम का जाप करता है वह जन्म-जन्मांतरों के पश्चात् मनुष्य की देह को धारण करेगा तथा सम्पूर्ण जीवन हरि नाम में ही लगाएगा-

''पहिलै पहरै रैणि के वणजारिआ मित्रा हरि पाइआ उदर मंझारि।।

हरि धिआवै हरि उचरै वणजारिआ मित्रा हरि हरि नामु समारि।।

हरि हरि नामु जपे आराधे विचि अगनी हरि जपि जीविआ।।''[110]

पहले पहरे में शिशु के माता के गर्भ में आने का वर्णन है कि गर्भ में वह हरि नाम का स्मरण करता है कि उसको गर्भ रूपी अग्नि से मुक्ति मिले और बाहर दुनिया में प्रवेश पाकर वह प्रभु का ही गुन गान करेगा। माता-पिता भी जन्म के बाद शिशु के मोह में पड़कर खुशियां मनाते हैं। जैसे बच्चे के जन्म के अवसर पर विभिन्न अनुष्ठानों का पालन किया जाता है वैसे ही जन्म के पहले शिशु के गर्भ में प्रवेश पाने पर अनेक रीतियों का पालन किया जाता है। जिसमें गोदभराई की रसम के समय माँ तथा भावी संतान के प्रति शुभ इच्छाएं व्यक्त की जाती हैं कि बच्चा बड़ा होकर माता-पिता की सेवा करेगा पर गुरु रामदास जी ने पहरे वाणी के माध्यम से इस झूठे मोह को भंग कर मनुष्य को परमात्मा के नाम के सच्चे मोह की ओर प्रेरित किया है।

[110] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी,पोथी पहली, सिरी राग, पहरे महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 76.

जन्म संस्कारः

संसार में व्याप्त सम्पूर्ण जीव जंतु संतान उत्पति पर खुशी मनाते हैं केवल मानव ही नहीं बल्कि पशु-पक्षी भी इस खुशी का इज़हार करते हैं। मानव संतान उत्पति की खुशी विभिन्न संस्कारों के माध्यम से व्यक्त करता है। ''लोक में संतान के जन्म पर हर्ष उल्लास का वर्णन तभी मिलता है जब घर में पुत्र का जन्म होता है। पुत्री के जन्म को शोक रूप में मनाया जाता है। पुत्र जन्म के साथ यह धारणा जुड़ी हुई है कि पुत्र बड़ा होकर माता-पिता के बुढापे की लाठी बनेगा।''[111] इस तरह इसी आशा के साथ वह पुत्र का लालन-पालन बड़े उत्साह से करते हैं।

जन्म समय किये जाने वाले संस्कारः

बच्चे के जन्म लेने के तुरन्त बाद घर को बुरी नज़रों से बचाने के लिए विभिन्न संस्कार किये जाते हैं। ''सबसे पहले बच्चे के पैदा होते ही घर के मुख्य द्वार पर शरींह के पत्ते मौली में पिरो कर बाँध दिये जाते हैं। इसके बाद बच्चे को दूध पिलाने से पहले किसी सूझवान औरत अथवा मर्द से गुड़ती की रस्म अदा करवाई जाती है। इस रसम में शहद उंगली पर लगाकर बच्चे को चटाया जाता है लोक विश्वास है कि जिस तरह के गुण गुड़ती देने वाले के होते हैं वैसे ही बच्चा धारण करता है।''[112] दरवाज़े पर मौली तथा शरींह के पत्ते लटकाने, गुड़ती देना इन संस्कारों के बाद स्तनपान करवाया जाता है इसके साथ स्तन को पवित्र करने का संस्कार किया जाता है। यह शुद्धि की क्रिया को घर की किसी कन्या के द्वारा निभाया जाता है।

[111] सुखविंदर बाठ, पंजाब के संस्कारगत लोकगीतों का विश्लेषण, (दिल्लीः शिवहरि प्रकाशन, कबीर नगर, 2002), पृष्ठः 32.

[112] सुखविंदर बाठ, पंजाब के संस्कारगत लोकगीतों का विश्लेषण, (दिल्लीः शिवहरि प्रकाशन, कबीर नगर, 2002), पृष्ठः 33.

"जिसमें घास की पत्तियों को कच्ची लस्सी में भिगों कर जच्चा के स्तनों को धोया जाता है।"[113] यह संस्कार एक प्रकार से बालक रक्षा के लिए किया जाता है।

इस तरह यह संस्कार जन्म के तत्पश्चात् किये जाते हैं वैसे कुछ समय बीतने पर जब माँ और बच्चों को प्रसव कक्ष से बाहर निकाला जाता है तब उनको स्नान करवाया जाता है। " जिसको छठी की रस्में कहा जाता है और जच्चा के पाँव तले कुछ चाँदी के सिक्के रखे जाते हैं जिसे दाई को दान किया जाता हैं।"[114] इस तरह एक के बाद एक जितने भी संस्कार किये जाते हैं वह माँ तथा बच्चे की शुद्धि के लिए किये जाते हैं। बच्चे के जन्म के तेरहवें दिन माँ और बच्चे दोनों को जल से पवित्र किया जाता है और भाईचारे को भी न्यौता दिया जाता है और उनमें चपाती तथा मीठा प्रसाद बाँटा जाता है। " तेरहवें दिन चौंके च□ाने की रस्म अदा होती है। माँ बच्चे को गोदी में लेकर अपने भाईचारे में बैठती है।"[115] इस अवसर पर खुशी के गीत गाए जाते हैं।

गुरु रामदास जी द्वारा रचित दूसरा पहरा जन्म संस्कार से संबंधित है। इसमें उन्होंने जन्म की खुशी को ब्यान किया है-

"दूजै पहरै रैणि के वणजारिआ मित्रा मनु लागा दूजै भाइ।।

मेरा मेरा करि पालीऐ वणजारिआ मित्रा ले मात पिता गलि लाइ।।

लावै मात पिता सदा गल सेती मनि जाणै खटि खवाए।।

---

[113] वही. पृष्ठः 34.

[114] वही. पृष्ठः 34.

[115] सुखविंदर बाठ, पंजाब के संस्कारगत लोकगीतों का विश्लेषण, (दिल्लीः शिवहरि प्रकाशन, कबीर नगर, 2002), पृष्ठः 36.

जो देवै तिसै न जाणै मूड़ा दिते नो लपटाए।।

कोई गुरमुखि होवै सु करै वीचारू हरि धिआवै मनि लिव लाइ।।

कहु नानक दूजै पहरै प्राणी तिसु कालु न कबहूं खाई।।"[116]

गुरु जी ने वाणी में इसी ओर ध्यान इंगित किया है कि माता-पिता बच्चे के मोह में पड़कर प्रभु नाम को भूलकर बच्चे के भविष्य प्रति चिंतित होते और परमात्मा को छोड़कर बच्चे को अपना सहारा समझने लगते हैं। शिशु भी जितनी देर तक माता के गर्भ में पलता है वह प्रभु नाम का ही स्मरण करता है पर इस संसार में प्रवेश पाते ही वह मोह माया में पड़ जाता है। इस तरह गुरु रामदास जी ने संस्कारों के माध्यम से अपना संदेश सम्प्रेषित किया है कि गुरु जी के उपदेश के अनुसार स्त्री के गर्भवती होने तथा बच्चे के जन्म पर कितनी खुशी मनाई जाती है पर इस खुशी के साथ मनुष्य को यह बात भी ज्ञात होनी चाहिए कि यह सब कुछ परमात्मा का ही दिया हुआ है। लोक में व्याप्त संस्कारों के साथ दैहिक शुद्धि करने के साथ, प्रभु नाम के साथ आत्मा की शुद्धि भी करनी चाहिए। लोक में बच्चे के जन्म संबंधी प्रत्येक संस्कार लोक-काव्य रूप के विभिन्न रूपों से संबंधित हैं। पुत्र के जन्म पर दाई द्वारा गाये जाने वाले लोकगीत, मां द्वारा लोरी सुनाना, यह सभी लोक गीत मिलकर लोक-काव्य के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करते हैं। गुरु रामदास जी ने जन्म संबंधी संस्कारों तथा जन्म की खुशी को प्रकट करते लोक काव्य के स्थान पर परमात्मा के नाम का गुन-गायन करने का संदेश दिया है।

---

[116] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी पहली, सिरी राग,पहरे महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 76.

अंतिम संस्कारः

जीवन का आखिरी संस्कार अंतिम अथवा अन्तयेष्टि संस्कार कहलाता है। जिसके साथ मनुष्य अपने जीवन का अंतिम अध्याय समाप्त करता है। ''मनुष्य के मरने पर जब उसके पार्थिव शरीर की दाह क्रिया की जाती है उसे अन्तेष्टि संस्कार कहा जाता है।''[117] मनुष्य के जन्म से ही उसकी मृत्यु का समय भी निश्चित होता है। जिसने जन्म लिया है उसने मरना भी है। सिक्ख धर्म में मृत्यु के बाद ज्यादा अंध विश्वासों में यकीन नहीं किया जाता है और न ही ज्यादा कर्म काण्ड़ो को निभाया जाता है। ''सिक्ख धर्म में अंतिम संस्कार के बाद सोहले का पाठ तथा अरदास, उसके बाद गुरुद्वारा में जाकर अलाहुणीयां का पाठ तथा अरदास की जाती है।''[118] इस संस्कार को सम्पन्न करने में यह अर्थ निहित है कि मृत प्राणी की आत्मा परलोक में शांति प्राप्त कर प्रभु चरणों से जुड़कर जन्म मरण के बंधनों से मुक्त हो।

अलग-अलग धर्मों में अन्त्येष्टि संस्कार अपने अनुसार किया जाता है। ''सिक्ख धर्म में जिस प्राणी का अंतिम समय नज़दीक हो उनके सिर की ओर बैठकर सुखमनी साहिब का पाठ होता है। अगर प्राणी बाणी पढ़ते समय ही प्राण त्याग दे तो बाणी को बीच में अधूरा न छोड़कर सम्पूर्ण करना होता है।''[119] इसके अपरांत मृत प्राणी को स्नान करवा कर अर्थी पर लिटाने के समय तक पाठ किया जाता है। सिक्ख धर्म में व्यर्थ के पाखण्ड़ों में न पड़कर गुरुवाणी की ओर उन्मुख होने का आग्रह है जिसे प्रत्येक मनुष्य को अपना इहलोक और परलोक संवारने के लिए अपनाना चाहिए।

---

[117] रामेश्वर लाल स्वामी, हमारे संस्कार एवं रीति-रिवाज़, (जयपुरः चौपड़ा बुक कार्नर, मालवीय नगर, 2010), पृष्ठः35.
[118] संत मुखतिआर सिंह नारंग कुछ धर्मों दिआ अंतिम रसमां, (रोपडः गुरमति प्रकाशन केंद्र महल्ला गुरु नगर, कुराली रोड, प्रथम सं. 1999), पुष्ठः 52.
[119] वही, पृष्ठः 52.

इस समय लोगों द्वारा विभिन्न कर्म-काण्डों का पालन किया जाता है। पर सिक्ख धर्म में व्यर्थ के संस्कारों को छोड़कर गुरुवाणी का पाठ किया जाता है। शमशान घाट की ओर जाते अगर गुरुद्वारा साहिब रास्ते में हो तो उस ओर मुख कर अरदास करनी चाहिए। ''रास्ते में ठहरना, मटका नहीं छोड़ना, पानी नहीं गिरना, नमन नहीं करना, सबने पैदल ही जाना है।''[120] प्राणी की मृत्यु से लेकर अंतिम संस्कार तक रोना पीटना वर्जित है। गुरुवाणी में इसका निषेध किया गया है।

घर से चलते वक्त अरदास करना आवश्यक है उसके अपरांत शमशान घाट तक गुरुवाणी का पाठ करते जाना है। ''घर का मुखी या लड़का अग्नि भेंट करता है। सोहिले का पाठ करने के बाद अरदास करके घर को वापिस लौट जाना चाहिए।''[121] इस प्रकार सिक्ख धर्म में अंतिम संस्कार संबंधी किये जाने वाले अनुष्ठानों में से गुरुवाणी का महत्व अधिक है तथा अन्य अंधविश्वासों में पड़ने की मनाही है।

प्राणी की मृत्यु तथा अंतिम संस्कार के उपरांत अखंड पाठ वातावरण को शुद्व रखने तथा घर के सदस्यों संबंधियों को धैर्य बधाने के लिए किया जाने वाला उत्तम संस्कार है। ''घर आकर या किसी नज़दीक के गुरुद्वारा में मृतक प्राणी नमित्त श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी का पाठ रखा जाता है। पाठ की समाप्ति दसवें दिन पूरी होती है।''[122] वाणी का पाठ पाठी सिंह द्वारा सम्पूर्ण किया जाता है, जिसे सम्पूर्ण उपस्थित लोग प्रेम के साथ श्रवण करते हैं।

---

[120] वही, पुष्ठः 53.

[121] संत मुखतिआर सिंह नारंग कुछ धर्मों दिआ अंतिम रसमां, (रोपडः गुरमति प्रकाशन केंद्र महल्ला गुरु नगर, कुराली रोड, प्रथम सं. 1999, पृष्ठः 54.

[122] महिंदर सिंह, सिक्ख संस्कार अते मर्यादावा, ;अमृतसरः धर्म प्रचार कमेटी, चीफ खालसा, प्रथम सं.1983, पृष्ठः 65.

सिक्ख धर्म में दसवीं का संस्कार मृत्यु से 10 दिन के भीतर पूरा किया जाता है। इसके उपरांत और कोई संस्कार नहीं रह जाता। “दुसहिरे के दिन मित्र प्यारे, संबंधी आ जाते हैं। श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी का पाठ करने के उपरांत कीर्तन करके अरदास की जाती है।”[123] दसवीं का संस्कार तथा की जाने वाली अरदास मृत प्राणी की आत्मा की शांति के लिए होती है। अरदास के उपरांत मर्यादा के साथ लंगर बनाकर संगत में बाँटा जाता है। बच्चे, नौजवान, वृद्ध अथवा किसी भी आयु के प्राणी की मृत्य पर अंतिम संस्कार संबंधी अनुष्ठान एकसमान ही हैं।

गुरु रामदास जी ने वाणी पहरे में जिन चार अवस्थाओं का वर्णन किया है उनमें चौथा पहरा जीवन के अंतिम पड़ाव को दर्शता है। जिसमें उम्र रूपी फसल पक कर अपने अंतिम समय के नज़दीक आ जाती है अर्थात परमात्मा द्वारा दी गई आयु भोगने के उपरांत जब आत्मा देह को छोड़कर प्रभु चरणों में विलीन हो जाती है। गुरु रामदास जी ने मानव जीवन के इसी अंतिम पड़ाव का वर्णन वाणी में किया है-

“चउथै पहरै रैणि के वणजारिआ मित्रा हरि चलण वेला आदी।।

करि सेवहु पूरा सतिगुरु वणजारिआ मित्रा सभ चली रैणि विहादी।।

हरि सेवहु खिनु खिनु िल मूलि न करिहु जितु असथिरु

जुगु जुगु होवहु।।

हरि सेत सद माणहु रलीआ जनम मरण दुख खोवहु।।

गुर सतिगुरु सुआमी भेदु न जाणहु जितु मिलि हरि भगति सुखांदी।।

[123] वही, पृष्ठः 65.

कहु नानक प्राणी चउथै पहरै सफलिओ रैणि भगता दी।४।१। ''[124]

गुरु रामदास जी ने मनुष्य को वणजारा कहकर सम्बोधित किया है जो शवासों की पूंजी लेकर परमात्मा के नाम का व्यापार करने आया है पर घर बार के झमेलों में पड़कर अपना असली मंतव्य भूल गया है पर जब अंतिम समय चलने का आता है तब उसे हरि नाम को याद कर अपने अगले पथ को सफल करना चाहिए क्योंकि जो प्राणी जीवन के चौथे पहर में हरि नाम का जाप करेगा उसका ही आवागमन के चक्कर से छुटकारा होगा।

इस तरह गुरु रामदास जी ने अपनी वाणी पहरे में संस्कारों के पालन का ज्यादा वर्णन नहीं किया और मनुष्य को जीवन की प्रत्येक अवस्था में परमात्मा का नाम जपने का ही उपदेश दिया है। पहरों में जीवन की अवस्थाओं का वर्णन उसी प्रकार किया है जिस क्रम में समाज में जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर संस्कारों का निर्वाह किया जाता है। गुरु जी ने इन संस्कारों के प्रति लोक मन की खुशी और दुःख के भावों को लोक-काव्य रूपों के माधयम से प्रस्तुत कर वाणी में समाहित संदेश को प्रचारित किया है। पहला पहर गर्भाधान संस्कार तथा दूसरा जन्म संस्कार से संबंधित तो है पर वाणी में संस्कारों का अधिक वर्णन नहीं है क्योंकि अधिकतर वहम, भर्म में पड़ने की निंदा सिक्ख धर्म में की जाती है तथा व्यर्थ के टोनो टोटकों का पूर्णरूप से निषेध किया गया है। गुरु जी ने परमात्मा के नाम का उपदेश ही सम्पूर्ण मानव जाति को दिया है जिसका अनुकरण कर मनुष्य अपने जीवन के हर पड़ाव तथा हर क्षेत्र को सफल बना सकता है।

---

[124] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी,पोथी पहली, सिरी राग,पहरे महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी,जून 2005),पृष्ठः 76.

विवाह संस्कारः

विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान है जो गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के लिए आवश्यक है क्योंकि व्यक्तित्व के विकास के लिए गृहस्थ आश्रम अनिवार्य माना गया है इसे संपूर्ण समाजिक संगठन का केन्द्र माना गया है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए शारीरिक, मानसिक, समाजिक और आध्यात्मिक पक्षों से संबंधित संस्कारों में से विवाह संस्कार को समाजिक तथा धार्मिक संस्कार माना गया है। " विवाह शब्द का तात्पर्य स्त्री और पुरुष के उस संबंध से है जो रतिक्रीड़ा के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता अपितु उसके पश्चात् भी जब तक उत्पन्न शिशु स्वयं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य नहीं हो जाता विद्यामान रहता है।"[125] विवाह संस्कार सिक्ख धर्म में ऐसे संस्कार के तौर पर प्रमाणित हुआ है जिसका एक संबंध तो धर्म से है तथा दूसरा संबंध समाज से है।व्यक्ति समाज तथा धर्म के अनुसार जीवन यापन करके ही अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकता है। " सिक्ख धर्म में विवाह संस्कार को आनंद कारज कहा जाता है। यहां पर आनंद का अर्थ उस खुशी से है जो स्थाई हो क्षणभंगुर न हो और कारज का अर्थ है कार्य अर्थात् वह कार्य जिसे करने से हमें स्थाई सुख की प्राप्ति हो। "[126] इस तरह स्त्री, पुरुष का मिलाप विवाह संस्कार के माध्यम से होता है। दोनों के मिलाप से पारिवारिक □ांचा बनता है जो समाज को विकसित करने में सहायक होता है। निम्नलिखित अनुसार इसको व्याखयायित किया गया है।

आनंद कारज से संबंधित संस्कारों में सबसे पहले कुड़माई की जाती है दुनिया के सारे धर्मों में विवाह से पहले जो संस्कार किये जाते है वह अलग नाम के हो

[125] सच्चिदानंद शुक्ल, हिंदू धर्म के सोलह संस्कार, (दिल्लीः प्रतिभा प्रतिष्ठान, 2011), पृष्ठः 109.

[126] अशविंदर कौर, लावां समाजिक ते आध्यात्मिक दृष्टि, (अमृतसरः नाद प्रगास प्रकाशन, 2017), पृष्ठः 7.

सकते हैं तथा अनेक प्रकार के विधि-विधानों के माध्यम से सम्पन्न किये जाते हैं पर सिक्ख धर्म में विवाह संस्कार का आरंभ कुड़माई से होता है। ''जाति-पाति, धन पदार्थों के लालच से ऊपर उठकर गुरसिक्ख गुणों से भरपूर लड़की से रिश्ता जोड़ना गुरमति के अनुकूल माना गया है।''[127] विवाह योग्य आयु होने पर ही यह संस्कार निभाया जाता है। सिक्ख धर्म में कुड़माई के समय लड़की के माता-पिता की ओर से एक रूपया, गुड़, कड़ा, कृपान आदि लड़के के लिए लाया जाता है। इसके उपरांत दोनों का नाम लेकर अरदास की जाती है तथा आनंद कारज के लिए तिथि और समय तैय कर लिया जाता है। गुरु रामदास जी द्वारा रचित वाणी लावां का पाठ विवाह संस्कार को परिपक्व अवस्था पर ले जाता है। कुड़माई विवाह संस्कार से पूर्व किया जाने वाला अनुष्ठान है जिसे रीति रिवाजों से निभा कर ही आनंद कारज की रसम की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है।

नियत दिन पर लड़के वाले बारात लेकर लड़की के घर या जिस जगह पर आनंद कारज होना होता है वहाँ पहुँच जाते हैं। आनंद कारज की रसम किसी पंडित द्वारा न होकर अमृतधारी सिक्ख द्वारा निभाई जाती है। ''आनंद कारज की रसम गुरुद्वारा में की जाती है जो उत्तम माना जाता है।''[128] आनंद कारज की संपन्नता के लिए शुरू में अरदास की जाती है जिसमें केवल लड़का-लड़की तथा दोनों के माता-पिता शामिल होते हैं। अरदास के बाद लड़के का पिता लड़के के कंधे पर पल्ला (कपड़ा) डालता है जिसे लड़की के पिता द्वारा लड़की के हाथ में दिया जाता है। आनंद कारज का संस्कार ही विवाह की सम्पूर्णता का मूल आधार है। आनंद कारज संस्कार में

[127] अशविंदर कौर, लावां समाजिक ते आध्यात्मिक दृष्टि, (अमृतसरः नाद प्रगास प्रकाशन, 2017), पृष्ठः 70.
[128] वही,पृष्ठः 70.

घोड़ियाँ लोक-काव्य रूप का विशेष स्थान है। विशेषकर लडके के विवाह के अवसर पर घोड़ियाँ लोक-काव्य का गायन करके आनंद कारज संस्कारों का आरंभ किया जाता है तथा लोक द्वारा अपने मन के भावों को प्रकट किया जाता है।

घोड़ियाँ:

लोक में विवाह संस्कार से संबंधित लोक-काव्य रूप घोड़ियाँ का महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह से कुछ दिन पहले खुशियों भरे वातावरण में अनेक स्थितियों तथा भावनाओं को व्यक्त करने वाले गीत गाए जाते हैं इस संबंध में लड़के के घर में जो गीत गाए जाते हैं उन्हें घोड़ियाँ कहा जाता है। इन गीतों में वर की पोशाक और उसके खानदान की महिमा की जाती है। ''वास्तव में हमारे समाज में तेज़ गति के यातायात के साधन के रूप में घोड़ी ही एकमात्र साधन थी। स्वाभाविक है कि पहले बारात के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता था। जिस घोड़ी पर दूल्हा बैठकर जाता था उसके लिए अनेक प्रकार से शुभ कामनाओं से युक्त धार्मिक रस्में की जाती होंगी। यहीं से लगता है इन रस्मों से जुड़े गीतों को घोड़ियाँ का नाम प्राप्त हुआ।''[129] इस तरह घोड़ियाँ लोक में प्रचलित ऐसा काव्य रूप है जिसमें वर के भावी जीवन के लिए मंगलकामना की जाती है। घोड़ियाँ लोक-काव्य केवल घोड़ी चढ़ने से संबंधित नहीं है यह लोक-काव्य लड़के के विवाह से संबंधित उन सभी रस्म रिवाजों के समय गाए जाने वाले गीतो से है जो उसके जीवन को तथा समाजिक स्थिति को प्रदर्शित करते हैं। ''अब निश्चित रुप से इनका अर्थ विस्तार हो चुका है और इसके लोक गीत एक प्रसिद्ध लोक-काव्य रूप के तौर पर प्रसिद्ध हो गये हैं जो लड़के की सगाई तथा शादी

[129] सुखविंदर बाठ,पंजाब के संस्कारगत लोकगीतों का विश्लेषण, (दिल्लीः शिवहरि प्रकाशन, कबीर नगर, 2002), पृष्ठः 77.

में ही गाये जाते हैं।''[130] गांवों में शादी से कुछ समय पूर्व इन गीतों का गाना आरम्भ कर दिया जाता है। ''इन गीतों में सुंदर लड़की ब्याह कर ले आने का वर्णन भी किया जाता है। इस लोक-काव्य रूप में मर्द को नायक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।''[131] इस तरह इस लोक-काव्य रूप की सृजन प्रक्रिया खुशी या प्रशंसा के मिश्रित भावों से सम्बन्धित होती है। मुख्य तौर पर घोड़ियाँ लोक-काव्य रूप का विषय दूल्हे के भावी जीवन के प्रति की जाने वाली शुभकामनाओं से संबंधित है। जिसमें विवाह संस्कार के समय की जाती रस्मों तथा गांव की संस्कृति की बहुरंगी तस्वीर झलकती है। गुरु रामदास जी ने लोक प्रचलित काव्य रूप घोड़ियाँ का प्रयोग कर वाणी में समाहित अर्थ को लोगों तक पहुंचाया। गुरु जी ने अलौकिक संदेश देने के लिए वर के घोड़ी पर सवार होकर किये जाने वाले वैवाहिक संस्कार को भी रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जिसमें उन्होंने शरीर रूपी घोड़ी द्वारा धारण की हुई आत्मा को परमात्मा के साथ मिलाप वाले मार्ग की ओर प्रेरित किया है। गुरु जी ने लौकिक रूप में बरात के समय लड़के के साथ चलने वाले बारातियों को साध संगत के रूपक में प्रस्तुत किया है। मन को संयम में रखकर ही प्रभु प्राप्ति को निश्चित किया जा सकता है। गुरु रामदास जी ने शरीर रूपी घोड़ी को गुरु ज्ञान के द्वारा अनुशासित करने का उपदेश मानव को दिया है। इसी गुरु ज्ञान का वर्णन घोड़ियाँ वाणी में किया गया है-

''देह तेजणि जी रामि उपाईआ राम।

धंनु माणस जनमु पुंनि पाईआ राम।

---

[130] सुखविंदर बाठ, पंजाब के संस्कारगत लोकगीतों का विश्लेषण, (दिल्लीः शिवहरि प्रकाशन,कबीर नगर,2002), पृष्ठः 77.

[131] अमरजीत सिंह गिल्ल, विआह दीआं रहुरीता ते पंजाबी लोक-गीतःमानव वैज्ञानिक अध्ययन, (अमृतसरः रवि साहित्य प्रकाशन, प्र.सं 2012), पृष्ठः 114.

माणस जनमु वड पुंने पाइआ देह सुकंचन चंगड़ीआ।

गुरमुखि रंगु चलूला पावै हरि हरि हरि नवरंगड़ीआ।

एह देह सु बांकी जितु हरि जापी हरि हरि नामि सुहावीआ।

वड़भागी पाई नामु सखाई जन नानक रामि उपाईआ।१।''[132]

मनुष्य देह अच्छे कर्मों के साथ तथा परमात्मा की कृपा से ही प्राप्त होती है। गुरमुख व्यक्ति ही प्रेम रूपी लाल रंग को प्राप्त कर अपना जीवन परमात्मा के नाम रूपी रंग में रंग लेता है। गुरु रामदास जी ने लोक को शिक्षा देने के लिए, वाणी के मूल से अवगत करवाने के लिए शरीर को घोड़ी कहकर संबोधित किया है जिसे अच्छे कर्म करके प्राप्त किया जाता है। इसी प्रकार वर सर्वगुण सम्पन्न दुल्हन को प्राप्त करता है। वह घोड़ी पर सवार होकर दूर का पंथ तैय कर उस तक पहुँचता है तथा दुल्हन की प्राप्ति के लिए अच्छे गुणों का पालन करता है-

''कड़आलु मुखे गुरि गिआनु दृड़ाइआ राम।

तनि प्रेम हरि चाबुक लाइआ राम।

तनि प्रेम हरि हरि लाइ चाबुक मनु जिणै गुरमुखि जीतिआ।

अघड़ो धड़ावै सबदु पावै अपिठ हरि रसु पीतिआ।

सुणि स्त्रबणा बाणी गुरि बखाणी हरि रंग तुरी चडाइआ।

महामारगु पंथु बिखड़ा जन नानक पारि लंघाइआ।'' [133]

---

[132] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी दूजी, राग वडहंस, घोड़ियाँ, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 575.

उपरोक्त पंक्तियों में संपूर्ण रूपक विवाह के समय का लिया गया है कि कैसे वर घोड़ी को तैयार कर,लगाम डालकर उस पर संवार होता है तथा चाबुक लगाकर उसको दौड़ाता है। गुरु रामदास जी ने विवाह के रूपक के द्वारा साधक को अपना मन ज्ञान रूपी लगाम लगाकर दृढ़ करने को कहा है। जिसे परमात्मा के प्रेम रूपी चाबुक की चोट के द्वारा जीता जा सकता है। मन में जो भी विभिन्न प्रकार के विचार आते हैं उन्हें केवल परमात्मा के नाम रस पर केन्द्रित कर मन को सुंदर विचारों का धारणी बनाया जा सकता है।

''घोडी तेजणि देह रामि उपाइआ राम

जितु हरि प्रभु जापै सा धनुं धन तुखाइआ राम।

जितु हरि प्रभु जापै सा धुनु साबासै धुरि पाइआ किरतु जुडदा।

चड़ि देहड़ि घोड़ी बिमुख लघाए मिलु गुरमुखि परमानंदा।

हरि हरि काजु रचाइआ पूरै मिलि संत जना बाधाई।''[134]

गुरु रामदास जी द्वारा रचित घोड़ियाँ वाणी दो भावों को ब्यान करती है। एक भाव लौकिकता का धारणी है, जिसमें विवाह संस्कार में की जाने वाली रीति का वर्णन है तथा दूसरी ओर जीवात्मा-परमात्मा के मिलन का पथ प्रदर्शित किया गया है। गुरु रामदास जी के अनुसार इस देह को परमात्मा द्वारा जन्म दिया गया है और जिस

---

[133] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी दूजी, राग वडहंस, घोड़ियाँ, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर,शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 575.

[134] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी दूजी, राग वडहंस, घोड़ियाँ, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर,शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 575.

आत्मा ने प्रभु की अराधना की है उसी ने मनुष्य देह को प्राप्त किया है। जैसे दूल्हा अच्छे गुणों का धारणी होगा तो उसे सर्वगुण सम्पन्न दुल्हन प्राप्त होगी।वह दोनों मिलन के उपरांत स्थाई आनंद को प्राप्त कर लेते हैं। आध्यात्मिक अवस्था में गुरुमुख व्यक्ति ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

"कड़ीआलु मुखे गुरि अंकसु पाइआ राम।।

मनु मैगलु गुर सबदि वसि आइआ राम।।

मनु वसगति आइआ परम पदु पाइआ सा धन कंति पिआरी।।

अंतरि प्रेम लगा हरि सेती धरि सोहै हरि प्रभ नारी।

हरि रंग राती सहजे भाती हरि प्रभ हरि हरि पाइआ धिआइआ।"[135]

गुरु रामदास जी ने घोड़ियाँ लोक-काव्य रूप के माध्यम से जीवात्मा को अपने मन में आने वाले व्यर्थ के विचारों पर अंकुश लगाकर गुरु द्वारा दिये ज्ञान की लगाम को धारण करके परमात्मा की ओर उन्मुख होने का उपदेश दिया है। आध्यात्मिक काव्य में आत्मा-परमात्मा के संबंधों को प्रकट करने के लिए ज्यादातर पति-पत्नी का रूपक प्रयुक्त किया जाता है। गुरु जी ने घोड़ियाँ लोक-काव्य रूप का प्रयोग कर परमात्मा संबंधी आध्यात्मिक विचारों तथा जीवात्मा की आत्मिक एकता को एकस्वरता में वाणी के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

लावां:

[135] वही, पृष्ठः 575.

गुरु रामदास जी द्वारा राग सूही में रचित लावां वाणी सिक्ख विवाह संस्कार का अटूट हिस्सा है। सिक्ख धर्म में गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने से पहले लावां का पाठ आवश्यक है। समाजिक जीवन को मर्यादा तथा नैतिकता में बाँधने के लिए विवाह संस्कार ज़रूरी है और विवाह संस्कार लावां के माध्यम से ही संपन्न होता है। मनुष्य के जीवन में गृहस्थ जीवन का यापन उसके त्याग से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है। यह लावां के माध्यम से प्रस्तुत होता है। गुरु रामदास जी ने लावां की रचना धार्मिक दृष्टि से की है जिसमें उन्होंने अलौकिक रूप में जीव स्त्री के परमात्मा के साथ मिलाप की बात की है पर सिक्ख धर्म में लावां वाणी को लौकिक विवाह संस्कार में गृहस्थ जीवन शुरू करने से पहले पढ़ा जाता है। ''मंगलमयी शब्द गाने के उपरांत आनंद विवाह का संस्कार कराने वाला व्यक्ति लड़के, लड़की को गृहस्थ धर्म के नियमों का उपदेश देता है तथा यह बताता है कि आपका आनंद विवाह का संस्कार सतिगुरु तथा संगत की उपस्थिति में होने जा रहा है। इस आनंद को सदैव दृढ़ रखने के लिए तथा जीवन यात्रा को सफल बनाने के लिए जो उपदेश दिया गया है उसको पूर्ण मन से निभाना है।''[136] गुरु रामदास जी द्वारा रचित लावां में चित्रित जीवात्मा को सुहागिन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने जीवन का आदर्श परमात्मा-पति के साथ जीव स्त्री का मेल माना है। इसी मेल को संपन्न करने के लिए लावां वाणी का पाठ ज़रूरी है। मनुष्य एक समाजिक जीव है पर उसके भीतर रुहानी तत्व मौजूद हैं। इस तत्व को परमात्मा ने मनुष्य के नाशवान शरीर तथा मन के अंदर टिकाया हुआ है। मनुष्य का शरीर नाशवान है वह अपने कर्मों के कारण परमात्मा से बिछुड़ा रहता है। '' इस वियोग को मिलाप में बदलने के लिए मनुष्य को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे

[136] महिंदर सिंह,सिक्ख संस्कार अते मर्यादावां, (अमृतसरः धर्म प्रचार कमेटी,1983), पृष्ठः 33.

विकारों से प्रभावित न होकर संयमता से अपने भीतर की आध्यात्मिक शक्ति को पहचानना पड़ता है।''[137] इस आध्यात्मिक शक्ति की पहचान लावां में चित्रित जीव स्त्री का जीवन है। वह स्त्री जो समाज में रहते हुए गृहस्थ जीवन व्यतीत करती है पर उसकी आत्मा को सुहागिन बनने के लिए, परमात्मा पति की प्राप्ति के लिए जो गुण धारण करने पड़ते हैं उसका वर्णन लावां में किया गया है-

'' हरि पहिलड़ी लाव परविरती करम दृडाइआ बलिराम जीउ।

बाणी ब्रहमा वेदु धरमु दुडहु पाप तजाइआ बलिराम जीउ।

धरम दुडहु हरि नाम धिआवहु सिमृति नामु दृडाइआ।

सतिगुरु गुरु पूरा अराधहु सभि किलविख पाप गवाइआ।

सहज आनंद होआ वढ़भागी मनि हरि हरि मीठा लाइआ।

जनु कहै नानक लाव पहिली आरंभु काजु रचाइआ।''[138]

जीव-स्त्री के प्रभु पति के साथ विवाह समय पहली लांव में जीव स्त्री को प्रवृति कर्म का निश्चय करवाया जाता है। '' परविरती का अर्थ है लगन।''[139] प्रवृति पक्ष में मनुष्य का मन उन अनेक कर्मों में लगा रहता है जो उससे सांसरिक कार्य करवाते हैं वह भौतिक पदार्थों का त्याग नहीं करता अर्थात् वह सभी संसारिक पदार्थों के भीतर रहता हुआ ही परमात्मा के साथ जुड़ा रहता है। इन्हीं संसारिक कार्यों के अंर्तगत ही

[137] अशविंदर कौर,लावां समाजिक ते आध्यात्मिक दृष्टि, (अमृतसरः नाद प्रगास प्रकाशन, 2017), पृष्ठः 74.

[138] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी तीजी, राग सूही, लावां,महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 773.

[139] गुरशब्द रत्नाकर महानकोश, इन्साईक्लोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब,1960), पृष्ठः 749.

पुरुष-स्त्री विवाह के बंधन में बंध जाते हैं।वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भौतिक वस्तुओं का प्रयोग केवल आवश्यकता के अनुसार ही करते हैं। हृदय को भौतिक पदार्थों के लोभ,मोह से बचाकर स्वयं को संयमित रखते हैं। मन को संयमित कर,विकारों से प्रभाव रहित रहने का ढंग पहली लांव में वर्णित किया गया है।

"हरि दूजड़ी लाव सतिगुरु पुरखु निलाइआ बलिराम जीउ।

निरभउ भै मनु होर हउमै मैल गवाइआ बलिराम जीउ।

निरमलु भउ पाइआ हरि गुण गाइआ हरि वेखै रामु हदुरे।

हरि आतम रामु पसारिआ सुआमी सरब रहिआ भरपूरे।

अंतरि बाहरि हरि प्रभ एको मिलि हरि जन मंगल गाए।

जन नानक दूजी लांव चलाई अनहद सबद वजाए।"[140]

विवाह की दूसरी लांव तीन विषयों 'निरभउ', 'भै' तथा 'निरमल भउ' से संबंधित है। इन तीनों के अभाव में आत्मिक विवाह संभव नहीं है। लौकिक रूप में विवाह के समय स्त्री और पुरुष को दोनों को एक दूसरे का सहारा मिल जाता है। स्त्री विवाह के बाद पुरुष के साथ अपने आप को सुरक्षित मानती है। उसकी जितनी भी आवश्यकताएं होती हैं वह उसके पति द्वारा पूर्ण की जाती हैं। पति के आश्रय में उसे किसी प्रकार का भय नहीं रह जाता वह निर्भय हो जाती है। स्त्री के मन में प्रेम कायम रहे इसके लिए भय का उपजना ज़रूरी है क्योंकि अगर स्त्री के मन में अपने पति के लिए प्यार होगा तो उससे बिछुड़ने का भय भी होगा। इसीलिए वह अपने पति से जुड़ी रहने के लिए

[140] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी,पोथी तीजी,राग सूही, लावां, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 774.

निर्मलता वाला भाव कायम रखती है। यही धारणा परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त होती है। 'भय' (डर) तथा भउ (प्यार) इन दोनों के साथ ही जीव स्त्री की भक्ति शोभा पाती है यही उसका श्रृंगार है। जीव स्त्री परमात्मा पति को मिलने के लिए भवसागर पार करती है और उसको पार करने का तरीका निर्मलता पूर्ण भाव को बनाए रखना है तभी वह इस आवागमन के बंधन से मुक्त हो सकेगी। निर्मल भाव के पैदा होने से प्रभु पति के प्रति आदर एवं सम्मान पैदा हो जाता है। जीव स्त्री परमात्मा की अनंतता के गीत गाती है यही विवाह की दूसरी लांव का मूल भाव है।

''हरि तीजड़ी लाव मनि चाउ भइआ बैरागीआ बलिराम जीउ।

संत जना हरि मेल हरि पाइआ बडभगीआ बलिराम जीउ।

निरमत हरि पाइआ हरि गुण गाइआ मुखि बोली हरि बाणी।

संत जना बडभागी पाइआ हरि कथीऐ अकथ कहानी।

हिरदै हरि हरि धुनि उपजी हरि जपीऐ मसतकि भागु जीउ।

जन नानक बोले तीजी लावै हरि उपजै मनि बैराग जीउ।३।''[141]

तीजी लांव आनंद को प्रकट करने के साथ शुरु होती है। आनंद प्रभु-पति के साथ मिलाप का है। जीव स्त्री सतसंगति के सहारे ही परमात्मा पति का मिलाप हासिल कर सकती है। गुरु रामदास जी ने तीसरी लांव में उस आनंद तथा खुशी भरे जीवन की ओर संकेत किया है जो हर नवविवाहित स्त्री तथा पुरुष में होता है। गुरु

[141] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी तीजी, राग सूही,लावां, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 774.

रामदास जी वैवाहिक जीवन के आनंद के ऊपर वैराग का प्रतिबंध लगाने का उपदेश देते हैं। ऐसा प्रतिबंध जिसमें व्यर्थ की भटकन न हो संयम तथा धैर्य हो क्योंकि मिलाप की खुशी के अंत में वियोग भी है। इसलिए आनंद, तथा दुनियावी रसों में डूबकर परमात्मा से दूर नहीं होना चाहिए। अगर वैराग्यमयी वृति के अधीन इन रसों का भोग किया जाए तो इनका विकारात्मक प्रभाव खत्म हो जाएगा। मूल अर्थ में मनुष्य को इन रसों का भोग करने के साथ परमात्मा के नाम को नहीं भूलना चाहिए। वैराग की स्थिति में परमात्मा पति से मिलने की इच्छा वैराग्य के कारण असहनीय हो जाती है तो जीव स्त्री के सारे अवगुण दूर हो जाते हैं। वह अपने सुहाग परमात्मा-पति को पा लेती है। परमात्मा-पति की प्राप्ति में साध संगत उस कड़ी की भूमिका निभाती है जो आत्मा-परमात्मा का मेल करवाती है जैसे विवाह के लिए लड़का तथा लड़की परिवार के मध्य बिचोला ही दोनों परिवारों का मेल करवाता है। इसी तरह परमात्मा तथा जीवात्मा के मध्य साध संगत का कार्य है।

"हरि चउथड़ी लाव मनि सहजु भइआ हरि पाइआ बलिराम जीउ।

गुरमुखि मिलिआ सुभाइ हरि मनि तनि मीठा लाइआं बलिराम जीउ।

हरि मीठा लाइआ मेरे प्रभ भाइआ अनदिनु हरि लिव लाई।

मन चिंदिआ फलु पाइआ सुआमी हरि नामि वजी बाधाई।

हरि प्रभ ठाकुर काजु रचाइआ धन हिरदै नामि विगासी।

जन नानक बोलै चउथी लावै हरि पाइआ प्रभु अविनासी।४।''[142]

चौथी अवस्था में संयम के कारण जीव स्त्री के चित की सम्पूर्ण वृतियां प्रभु पति के मिलाप से शांत हो जाती हैं। परमात्मा के नाम का जाप वह हर दिन करती है जिस कारण उसको अकाल पुरख की प्राप्ति हो जाती है। वह अनशवर परमात्मा को पति के रूप में प्राप्त कर प्रसन्न हो जाती है। ''संयम से अभिप्राय मन इंद्रियों को विकारों से रोकना। ''[143] समाजिक आधार पर मनुष्य दुनियावी आवश्यकताओं को पूरा करता हुआ संयमता से मन को विकारों से बचाकर समाजिक कार्यों में संलग्न रहता है। वैवाहिक अवस्था को प्राप्त होने वाली स्त्री भी इसी सहजता का पालन कर परमात्मा पति को प्राप्त करके जन्म मरण के बंधनों से मुक्त हो जाती है तथा परमात्मा का मिलाप हासिल कर सौभाग्यशाली कहलाती है। गुरु रामदास जी द्वारा लावां वाणी में वर्णित अवस्था जीवात्मा को श्रेष्ठ गुणों से युक्त होकर प्रभु प्राप्ति के मार्ग की ओर परिलक्षित करती है। दूसरी ओर लौकिक रूप में विवाह संस्कार के संपन्न होने तथा योग्य वर की प्राप्ति के कारण स्त्री की खुशी का वर्णन किया है। जीवात्मा का परमात्मा से मिलाप तथा खुशी का वर्णन लावां वाणी में जीवन की चार अवस्थाओं के वर्णन माध्यम से प्रकट किया है। गुरु जी ने आध्यात्मिक, अलौकिक भावों के अमूर्त रूप को मूर्त रूप देने के लिए लौकिक विवाह का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप में किया है।

प्राचीन जीवन आज की अपेक्षा नितान्त साधारण तथा सरल था। समाजिक विश्वास तथा भावनाएं खण्ड़ों में विभक्त न होकर एक दूसरे में मिश्रित थे।समाजिक

[142] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी तीजी, राग सूही, लावां,महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 774.

[143] गुरशब्द रत्नाकर महानकोश, इन्साईक्लोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब, चतुर्थ सं 1981), पृष्ठः 242.

विश्वासों से उत्पन्न संस्कार जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त तत्व है क्योंकि धर्म सर्वहित को लेकर चलता है और इसके माध्यम से किये जाने वाले अनुष्ठान मानव जीवन के सभी पक्षों की शुद्धि करते हैं। मानव जीवन की शुद्धि के प्रयोजन हित संस्कार समस्त नैतिक तथा भौतिक साधना का माध्यम बने जो व्यक्ति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। गुरु रामदास जी ने समाजिक विश्वास तथा भावनाओं से ओत-प्रोत, व्यक्तित्व का नैतिक रूप में विकास करने वाले लोक-काव्य रूपों को माध्यम बनाकर अपने आत्मिक भाव व्यक्त किये। गुरु रामदास जी की वाणी में पहरे, घोड़ीयाँ तथा लावां ऐसे ही संस्कारगत लोक-काव्य रूप हैं जो लोकमन के साथ पूर्ण रूप से संबंधित हैं। पहरे लोक-काव्य रूप है में गुरु रामदास जी गर्भाधान संस्कार, जन्म संस्कार, मृत्यु संस्कार का वर्णन विशेष रूप में नहीं किया बल्कि उन्होंने तो जीवन के चार पड़ावों का वर्णन किया है जिसमें माता के गर्भ से लेकर मानव के जन्म तथा मृत्यु के बारे में विशेष रूप में बताया गया है तथा यहाँ पर मोह-माया में न पड़कर हर समय हरि नाम का जाप करने उपदेश पहरे वाणी के माध्यम से दिया है। पहरे वाणी का मूल भाव जीवात्मा को जीवन की चार अवस्थाओं के प्रति अवगत करवाकर परमात्मा की ओर उन्मुख करना है। घोड़ियाँ तथा लावां संस्कार विवाह से संबंधित है। विवाह संस्कार जीवन का महत्वपूर्ण अंग हैं जिसके जरिये व्यक्ति गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है लावां की क्रिया गृहस्थ जीवन में प्रवेश के लिए ही है तथा घोड़ियाँ की रस्म का संबंध विवाह में किये जाने वाले अनुष्ठानों से है। जिसमें लोक गीतों के विभिन्न प्रकार हैं जो लड़के के घर शादी के समय गाए जाते हैं। गुरु रामदास जी ने लावां वाणी की में जीवात्मा तथा परमात्मा के विवाह और मिलन का वर्णन किया है। उन्होंने जीवात्मा को परमात्मा के नाम का अनुसरण कर प्रभु की प्राप्ति का मार्ग

दिखलाया है। लावां वाणी के बिना गृहस्थ जीवन में प्रवेश संभव नहीं है। उनकी वाणी गृहस्थ जीवन यापन करते हुए भी माया से निर्लेप रहने की शिक्षा देती है क्योंकि मानव के विकास के लिए गृहस्थ धर्म में प्रवृत होना आवश्यक है पर भौतिक पदार्थों के मोह से मुक्त रहने की शिक्षा गुरु रामदास जी ने लावां वाणी के द्वारा सरलता से प्रकट की है। दूसरी ओर विवाह में गाये जाने वाले लोक गीतों घोड़ीयों को अनुशासित कर, वाणी के माध्यम से आत्मिकता का पुट देकर प्रेरणादायक बनाया है। इस प्रकार गुरु जी ने वाणी की रचना ज्यादातर लोक-मुख होकर, लोक-काव्य के विभिन्न रूपों को प्रयोग करके ही की है। इस प्रकार गुरु रामदास जी ने लोक-काव्य रूपों में अपनी भावनाओं का वर्णन इतनी भावुकता तथा सूक्षमता के साथ किया है कि लोक मन तथा परमात्मा में एकस्वरता स्थापित हो गई प्रतीत होती है। लोक-काव्य के संस्कारगत अनुष्ठानों, विधियों का जन्म किसी कवि की कल्पना से नहीं हुआ बल्कि वह तो जन जीवन की आत्मिक वृतियों की तृप्ति के लिए हुआ। गुरु जी ने लोक-काव्य रूपों का प्रयोग करने के साथ-साथ लोक-काव्य के अंग संग होकर जीवन यापन किया इसी कारण उनकी वाणी में काव्य रूपों एकस्वरता तथा लोक जीवन की अभिव्यक्ति की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। गुरु रामदास जी ने इन लोक-काव्य रूपों के माध्यम से जिस इलाही संदेश को संचारित किया है उसमें गुरु रामदास जी का योगदान अतुलनीय हैं।

पंचम अध्याय

5.0 गुरु रामदास जी की वाणी में यात्रागत लोक-काव्य रूप

5.1 करहला

5.2 वणजारा

संसार निरंतर गतिशील रहता है। गति की यह प्रवृति तभी संभव हो पाती है जब संसार में व्याप्त प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन होता है। प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन ही गतिशीलता का आधार बनता है। वस्तुओं की भांति मन से संबंधित अवस्थाओं की अनुभूति भी गतिशील तथा संचरणशील होती है क्योंकि संसार में परवर्तित परिस्थितियों का प्रभाव एक सा न होकर भिन्न भिन्न होता है।इनके प्रभाव के फलस्वरूप ही अनुभूतियों का आवागमन मनुष्य के मन में होता रहता है। संसार की संचरणशीलता विभिन्न परिस्थितियों से उत्पन्न भावों तथा उनसे बने पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर ही प्रतिष्ठित होती है। इस तरह सम्बन्धों से उत्पन्न संवेदनाएं कभी नष्ट नहीं होती ब्लकि एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तथा मन में भावों के माध्यम से संचरित होती रही हैं। इस तरह भावनाओं से उत्पन्न अन्तर्बोध जीवन में यात्रा करता हुआ शुरू से लेकर अंत तक संचरित होता रहता है। मानव जीवन का विकास इन्हीं अनुभूतियों से उपजे अन्तर्बोध की यात्राओं का परिणाम है जिन्हें वह जीवन के विभिन्न पड़ावों से ग्रहण करता है। मन में भावनाओं की यात्रा की भांति ही मानव ने जीवन में विकसित होने के लिए भी विभिन्न यात्राएं की हैं। प्रारम्भ से ही मानव कभी भोज्य पदार्थों के लिए, कभी जीवन को सुरक्षित करने के लिए,कभी व्यापार के लिए यात्राएं करता रहा है। हिन्दी शब्दसागर के अनुसार, " यात्रा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की क्रिया, यात्रा करने वालों का समूह।"[144] अर्थात यात्रा से अभिप्राय एक जगी से दूसरी जगह जाना है। एक जगह से दूसरी जगह जाने की दूरी, ऊब, छटपटाहट से छुटकारा पाने के लिए तथा अपने मनोरंजन के लिए यात्री लोग गीत गुनगुनाते हैं ताकि जिस लक्ष्य या मंजिल की ओर बढ़ रहे हैं उसके प्रति सजग रहें। "यात्रा गीत

[144] हिन्दी शब्दसागर, श्यामसुंदर दास (सं) , (काशीः नागरी प्रचारिणी सभा, 1969), पृष्ठः 4067.

लोक परंपरा अनुसार सफर करते, रास्ते की मुश्किलों, परेशानियों को प्रतीक रूप में प्रयोग कर मनुष्य को अपनी मंजिल के लिए सुचेत करते हैं।''[145] गुरु जी ने इन्हीं यात्रागत गीतों की परंपरा को अपनाकर अपने दार्शनिक भावों को लोक के साथ एकस्वर कर प्रस्तुत किया। गुरु जी ने दार्शनिक वृति वाले होने के बावजूद भी लोक-काव्य रूपों को वाणी सृजन का माध्यम बनाया क्योंकि धर्म की नींव लोक में होती है और धर्म लोकमुख होने के कारण न बोली का त्याग करता है और न ही लोक संस्कृति का।इसलिए गुरु रामदास जी ने धार्मिक उपदेश देने के लिए लोक प्रचलित काव्य रूपों को आधार बनाकर वाणी के द्वारा इन लोक-काव्य रूपों को लिखित रूप में प्रस्तुत किया। गुरु जी की वाणी में यात्रा आधारित करहला, वणजारा लोक-काव्य रूपों का वर्णन विशेष रूप में देखनें को मिलता है। इन लोक-काव्य रूपों का प्रयोग गुरु जी ने समाज की परिस्थितियों को केन्द्र में रखकर किया क्योंकि गुरु रामदास जी के समय अमृतसर शहर बसना शुरु हुआ था। नया नगर होने के कारण अलग-अलग देशों के व्यापारी और सौदागर व्यापार करने के लिए आते थे। गुरु जी ने इन व्यापारियों द्वारा किये जाने वाले व्यापार को आधार बनाकर वाणी के संदेश को संबोधन शैली में सम्प्रेषित किया क्योंकि लोक लौकिक व्यापार के माध्यम से वाणी के आध्यात्मिक संदेश को बाखूबी समझ सकते थे।

गुरु जी का यह संदेश केवल सौदागरों या व्यापारियों के लिए ही न होकर प्रत्येक मनुष्य के लिए था जो संपूर्ण जीवन व्यर्थ के कार्य व्यापारों में व्यतीत कर देता है। इसी के अंतर्गत गुरु रामदास जी की वाणी में रूप 'करहला' तथा 'वणजारा' लोक-काव्य रूपों का वर्णन किया गया है। ''इस तरह यात्रा यां औद्योगिक रचना-रूप स्थिति विशेष

[145] महिन्द्र कौर गिल्ल, बाणी विवेचन, (दिल्लीः आर्सी पब्लिशरज़, चांदनी चौंक, 1995), पृष्ठः 92.

की उपज है लोगों का परदेसों में जाना, रास्ते की परेशानियों का सामना करना तथा अपनी मंजिल पर पहुँच कर लक्ष्य को प्राप्त करना।''[146] इस तरह यात्रा द्वारा जीविका निर्वाह के लिए किये गये व्यापार के दौरान परिस्थितियों से उत्पन्न लोक मन के भावों ने जिन लोक-काव्य रूपों को जन्म दिया वह विशेष रूप में करहला तथा वणजारा हैं। यात्रा करने वाले व्यापारियों द्वारा रास्ते की परेशानियों तथा स्थितियों का वर्णन करहला तथा वणजारा लोक-काव्य रूपों में गायन के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। गुरु रामदास जी ने करहला और वणजारा यात्रा आधारित लोक-काव्य रूपों का प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग करके जीवात्मा को व्यापारी बताकर, जीवात्मा की मुक्ति में विकारों को बाधा माना है और जीवात्मा का लक्ष्य भवसागर को पार करना बताया है। गुरु जी ने करहला तथा वणजारा के द्वारा जीवात्मा की प्रतीकात्मक भटकन का वर्णन कर, प्रभु नाम स्मरण के संदेश को वाणी के द्वारा प्रस्तुत किया है। इसीलिए इन लोक-काव्य रूपों को यात्रागत शीर्षक देकर इनका विस्तार सहित वर्णन किया गया है।

करहलाः

करहला यात्रा गीतों से संबंधित लोक-काव्य रूप है। करहला में किसी सम्पूर्ण जाति का वर्णन न होकर ऊंट का वर्णन है जिस पर सौदागर सफर करते तथा व्यापार करते थे। ''करहला एक रूपक भी है तथा लय संकेतक भी।''[147] रूपक एक अलंकार है जो कवि अपनी बात या विचार को किसी प्रचलित धारणा के माध्यम से कहकर स्पष्ट करता है तब वह रूपक अलंकार का प्रयोग करता है अथवा अपने मन के भावों को प्रचलित रंग में रंग कर प्रस्तुत करता है। लय आधारित भाषा उच्चारण में गतिशीलता

[146] महिन्द्र कौर गिल्ल, बाणी विवेचन, (दिल्लीः आर्सी पब्लिशरज़, चांदनी चौंक,1995), पृष्ठः 93.

[147] महिन्द्र कौर गिल्ल, बाणी सार, (दिल्लीः नवयुग पब्लिशरज, चांदनी चौंक, 1989), पृष्ठः147.

से संबंधित संकल्प है। गीतों में या गेय रूप में लय का प्रयोग स्वरों को ओजपूर्ण रूप देकर उच्चारण करना या बिना बल के उच्चारण करना है। ''काव्य या संगीत में आवाज़ के उतार-चढ़ाव को लय कहते हैं। लय की निश्चित गति, प्रवाह तथा विराम के पारस्परिक क्रम-सिद्धांत से होती है।''[148] इस तरह करहला एक रूपक है क्योंकि करहला के माध्यम से गुरु रामदास जी ने अपने विचार प्रकट किये हैं तथा यह एक ऐसी लय की ओर संकेत भी करता है जो ऊंट (करहला) सवार सौदागरों द्वारा गाई जाती थी। ''व्यापारी लोग ऊंट लादकर, परदेसों में रोज़गार की खातिर नित्य ही यात्रा ऊपर जाते रहते थे। दूसरे शब्दों में नित्य की भटकन ही इन ऊंट वालों की किस्मत थी। ऊंटों वाले परदेसी तो होते ही थे पर अपने सफर दौरान यह एक खास स्वर वाला गीत भी गाते रहते थे।''[149] इस तरह ऊंट सवारों द्वारा गाये जाने वाले गीत करहला लोक-काव्य के रूप में स्थापित हो गये जैसे ऊंटों वाले परदेसी थे और भटकते रहते थे वैसे ही जीवात्मा भी जन्म-मरण के बंधनों में फंसकर भटकती रहती है। गुरु रामदास जी ने वाणी में करहला को रूपक के माध्यम में प्रयोग कर उपदेश दिया है-

''करहले मन परदेसीआ किउ मिलिऐ हरि माइ।

गुरु भागि पूरै पाइआ गलि मिलिआ पिआरा आइ।

मन करहला सतिगुरु पुरखु धिआई। । रहाउ

मन करहला बीचारीआ हरि राम नाम धिआइ।

---

[148] साहित्य कोश परिभाषिक शब्दावली, राजिंदर सिंह लांबां, (पटियालाःपब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी विश्वविद्यालय), पृष्ठः 506.

[149] महिन्द्र कौर गिल्ल, आदि ग्रंथ लोक-रूप, (दिल्लीः नवयुग पब्लिशरज़, 2002), पृष्ठः 39-40.

जिथै लेखा मंगीऐ हरि आपे लए छडाइ।''[150]

गुरु जी मनुष्य मन को करहला कहकर संबोधित कर रहे हैं जैसे परदेसी व्यक्ति कभी भी अपना देश छोड़कर परदेस में सदैव टिक कर नहीं रह पाता उसे अंत में अपने देश वापिस आना ही पड़ता है वैसे ही मनुष्य मन जो नित्य व्यर्थ के कार्यों में उलझा रहता है पर उसको शांति तभी मिलती है जब वह प्रभु को प्राप्त करके जन्म मरण के बंधन से छूट जाता है। लौकिक व्यापार करने वाले सौदागरों द्वारा पैसों के लिए की गई बेईमानी करके किया जाने वाला व्यापार कभी भी फलेगा नहीं ब्लकि वह तो सदैव कम ही होता जाता है। ऐसे ही अगर जीवात्मा प्रभु का नाम स्मरण नहीं करेगी तो उसे बचाने वाला कोई नहीं होगा और जिसने हरि नाम को हृदय में बसाया होगा उसे परमात्मा जन्म-मरण के बंधनों से मुक्ति दिलवा देंगे।

''मन करहला तूं चंचला चतुराई छडि विकरालि।

हरि-हरि नामु समालि तूं हरि मुक्ति करे अंतकालि।६।

मन करहला बडभागीआ तू गिआनु रतनु समालि।

गुर गिआनु खड़गु हथि धारिआ जमु मारिअड़ा जगकालि।७।

अंतरि निधानु मन करहले भ्रमि भबहि बाहरि भालि।'' [151]

संबोधन शैली का प्रयोग कर गुरु जी कहते हैं कि ऊंट की तरह भटकते रहने वाले मन तू धैर्यवान नहीं है ब्लकि भटकता रहता है। हरि का नाम स्मरण ही तुम्हें

[150] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी,पोथी पहली, राग गउडी पूरबी, महला 4, करहले, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 234.

[151] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी,पोथी पहली, राग गउडी पूरबी, महला 4, करहले, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 235.

मुक्त करवाकर अंतकाल में तेरी सहायता करेगा जैसे परदेसी व्यक्ति मन में हर समय ज्यादा लाभ प्राप्त करने के लिए मन में चालाकी तथा चतुरता के भाव रखते हैं पर जब कोई चतुराई काम नहीं आती और व्यापार में घाटा पड़ता है तो उस नुकसान से बचाने वाला कोई नहीं होता। ऐसे में मन से चंचल वृति को निकालकर गुरु ज्ञान रूपी संयम को धारण करके ही यम के प्रकोप से बचा जा सकता है।केवल परमात्मा ही जीवात्मा को लौकिक धरातल के साथ-साथ अलौकिक पथ पर भी प्रकाशवान कर सकता है।

''मन करहला वीचारिआ वीचारि देखु समालि।

बन फिरि थके बनवासीआ पिरु गुरमति रिदै निहालि।

मन करहला गुर गोविंदु समालि।१। रहाउ

मन करहला वीचारीआ मनमुख फाथिआ महा जालि।

गुरमुखि प्राणी मुकतु है हरि-हरि नामु समालि।२।''[152]

जैसे सौदागर देख-परख कर सौदा करता है ताकि उसको कहीं नुकसान न हो जाए क्योंकि व्यापार में अच्छा लाभ प्राप्त करने के दृष्टिकोण से ही व्यापारी इतनी लंबी यात्रा,रास्ते में आने वाली बाधाओं को सहन करता है। इन व्यर्थ के जंजालो में मोह-माया के कारण उलझा रहता है। गुरु रामदास जी ने इसी दुनियावी सौदे के द्वारा मनुष्य को परमात्मा के नाम का असली सौदा करने का उपदेश दिया है गुरु जी के अनुसार जीवन की यात्रा में आराम तभी मिलेगा जब मोह-माया के बंधनों को तोड़कर

[152] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी,पोथी पहली,राग गउडी पूरबी, महला 4, करहले, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 235.

गुरु की शरण ली जाएगी।इस प्रकार हरि नाम को हृदय में बसाकर मनमुख न बनकर, गुरमुख बनकर भव सागर को पार किया जा सकता है।

वण्जाराः

वणजारा जाति का सम्बन्ध लुबाणा बिरादरी से है। यह मुख्य तौर पर नमक का व्यापार करने वाले व्यापारी थे। ''पंजाब के अलग-अलग क्षेत्रों में इनको अलग-अलग नाम से जाना जाता है जैसे लुबाना, लोबाणा, लीबाणां आदि। यह बिरादरी प्राचीन काल से भारत में रह रही है। इनकी उत्पत्ति राजपूतों से हुई।''[153] राजपूत राजस्थान क्षेत्र से संबंध रखते थे और वणजारा जाति को राजस्थान की ही उपज माना जाता है। ''राजस्थान में कुछ लोग ऐसे हैं जो टिक कर घरों में नहीं बैठते बल्कि चलते फिरते व्यापारी कारीगरों के रूप में एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण वणजारे हैं।''[154] वणजारे राजस्थान के सांभर, पचभद्रा, डींडवाना तथा भरतपुर इलाकों से नमक लाकर भारत की मंडियों में बेचते थे इसलिए यह ज्यादा महत्वपूर्ण थे। लुबाणा बिरादरी का नाम भी नमक (लूण) से उत्पन्न हुआ है। '' लुबाणा शब्द संस्कृत भाषा के शब्द लवाणिक से बना है जिसका अर्थ है नमक का व्यापारी।''[155] इस प्रकार लुबाणा नमक का व्यापार करने वाली प्रसिद्ध बिरादरी थी। लुबाणा बिरादरी को पंजाब में सिक्ख इतिहास के माध्यम से जाना जा सकता है क्योंकि इनका झुकाव सिक्ख धर्म की ओर था और आगे चलकर इन्होंने सिक्ख धर्म को अपनाया। '' जब गुरु नानक देव जी ने 1539 ई. में गुरु अंगद देव जी को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

---

[153]एच.ए.रोज़, ए गलासरी ऑफ दि ट्राईबस एण्ड कास्टस ऑफ दि पंजाब एण्ड नारथ-वैस्ट फरंटीअर प्रोविंयस, जिल्द 3, (पटियालाः भाषा विभाग,पंजाब,1970), पृष्ठः 2.

[154] धर्मपाल, राजस्थान, (दिल्लीः नवयुग पब्लिशरज, चांदनी चौंक, 1974), पृष्ठः 35.

[155] द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, शब्द अर्थ कौस्तुभ, (इलाहाबादः राम नारायण लाल पब्लिशरज, 1957), पृष्ठः 962.

तब लुबाणा संगत सौंधे शाह के नेतृत्व में गुरु अंगद देव जी के सम्मान के लिए खडूर साहिब पहुँची और अपने साथ बैलगाड़ियों पर चावल, आटा, घी आदि लेकर आए।''[156] इस तरह इनको पंजाब में प्रसिद्धी सिक्ख धर्म के कारण मिली। वणजारा जाति का इतिहास लुबाणा बिरादरी से जुड़ता है क्योंकि लुबाणा का नाम नमक (लूण) का व्यापार करने से पड़ा तथा नमक का ज्यादातर व्यापार राजस्थान से ही भारत के अन्य बाज़ारों में वणजारा जाति के द्वारा किया जाता था। जिनकी प्रवृति एक जगह स्थिर होकर रहने की नहीं थी। यही वणजारा लोग विभिन्न देशों की यात्रा करते थे और इनके द्वारा यात्रा दौरान गाए जाने वाले गीत विशेष लोक-काव्य के रूप में स्थापित हो गए। इसी लोक-काव्य रूप को गुरु रामदास जी ने आधार बनाकर मनुष्य को असली व्यापार करने का उपदेश दिया है तथा वणजारा वाणी के माध्यम से मनुष्य जीवन की यात्रा तथा जीवन यात्रा के दौरान किये जाने वाले कार्य व्यापारों को जोड़ा है-

''जिन कउ पूरबि लिखिआ से आइ मिले गुर पासि।

सेवक भाइ वणजारिआ मित्रा गुरु हरि हरि नामु पर गासि।

धनु धनु वणजु वापारीआ जिन वखरू लदिअड़ा हरि रासि।

गुरमुखा दरि मुख उजले से आइ मिले हरि पासि।

जन नानक गुरु तिन पाइआ जिना आपि तुठा गुणतासि।'' [157]

[156] भाई वीर सिंह, अष्ट गुरु चमत्कार भाग-1, (अमृतसरः वैस्ट इंडिया प्रैस, 1976), पृष्ठः 18.

[157] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी पहली, सिरी राग,महला 4, वणजारा, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 82.

लौकिक धरातल पर व्यापार करने वाला वही व्यापारी सफल है जो रास्ते की तमाम रूकावटों को पार करता हुआ अपनी मंजिल पर पहुँच पाता है। व्यापार में लाभ सबसे ज्यादा वही व्यापारी हासिल करेगा जिसके पास विलक्षण वस्तुएं हैं, वही अधिक ग्राहकों को आकर्षित कर पाएगा। इसी प्रकार गुरु रामदास जी ने परमात्मा की प्राप्ति का अधिकारी उसी को माना है जिसने अपने जीवन में प्रभु नाम का व्यापार किया है। गुरु रामदास जी ने दुनियावी व्यापार के माध्यम से अलौकिक व्यापार करने की प्रेरणा दी है।

''हरि हरि उतमु नामु है जिनि सिरिआ सभु कोई जीउ।

हरि जीअ सभे प्रतिपालदा घटि घटि रमईआ सोइ।

सो हरि सदा धिआईयो तिसु बिनु अवरु न कोइ।

जो मोहि माइआ चितु लाहदे से छोडि चले दुखु रोइ।

जन नानक नामु धिआइआ हरि अंति सखाई होइ।

मैं हरि बिनु अवरु न कोइ।

हरि गुर सरणाई पाईयो वणजारिआ मित्रा वडभागि परापति होई।1।रहाउ।''[158]

गुरु जी ने वणजारा जाति द्वारा जीविका हेतू किये जाने वाले व्यापार को वाणी का संदेश सम्प्रेषित करने का आधार बनाया है तथा इस व्यापार को दुनियावी संदर्भ के माध्यम से उभारकर हरि के उत्तम नाम का उपदेश दिया। जिसने सभी जीवों को

[158]शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी पहली, सिरी राग, महला 4, वणजारा, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 81.

उत्पन्न किया है और वही सभी का पालन करता है। हरि का नाम स्मरण करने वाले कभी भी दुःखी नहीं होते। जैसे ऐहिक वणज में लाभ तभी प्राप्त होता है जब सौदागर, ग्राहक को सही वस्तु के द्वारा संतुष्ट कर पाता है ठीक उसी प्रकार गुरु जी ने हरि नाम का वणज करके परमात्मा की शरण प्राप्त करने वाले मनुष्य को ही सफल माना है। इस तरह गुरु रामदास जी ने लोक-काव्य रूप वणजारा में व्यापार करने वाली जाति का वर्णन कर गुरुवाणी के संदेश को प्रतीकात्मक रूप में जन जन तक संचारित किया है।

"संत जना विणु मईआ हरि किनै न पाइआ नाउ।

विचि हउमै करम कमावदें जिउ वेसुआ पुतु निनाउ।

पिता जाति ता होईयो गुरु तुठा करे पसाउ।

वडभागी गुरु पाइआ हरि अहिनिसि लगा भाउ।

जन नानकि ब्रहमु पछाणिआ हरि कीरति करम कमाउ।

मनि हरि हरि लगा चाउ।

गुरि पूरैं नाम द्रडाइआ हरि मिलिआ हरिप्रभ नाउ।१।रहाउ।"[159]

गुरु जी कहते हैं कि संगत की शरण में जाए बिना कोई भी मनुष्य हरि के नाम को प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि जो लोग संतों की संगत का □ोंग रचकर कुकर्म करते हैं वह केवल अहंकार, आडम्बर के अंतर्गत अपना बडप्पन दिखाने के लिए ही

[159] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी पहली, सिरी राग,महला 4, वणजारा, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 82.

करते हैं। ऐसे लोगों को प्रभु की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे वेश्या के पुत्र को अपने पिता का नाम नहीं पता होता वैसे ही धर्म के नाम पर पाखण्ड करने वाला मनमुख गुरु नाम से विहीन ही रहता है। गुरु रामदास जी कहते हैं कि जिसने गुरु का नाम सच्चे मन से लिया है वही गुरु की कृपा के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करके अपना जीवन सफल कर सकेगा।

जैसे लौकिक व्यापार करने वाला व्यापारी अधिक लाभ के लिए झूठ बोलता है, धोखा करता है तथा मन में हर वक्त बेईमानी के भाव लिए घूमता है पर इस तरह के व्यापार से कमा कर बनाई गई संपत्ति कभी भी बढ़ती नहीं बल्कि घटती है। इसी तरह मन में निंदा, ईष्या, भेद-भाव जैसे विचार रखकर प्रभु नाम की संपत्ति को हासिल नहीं किया जा सकता। इस प्रकार वणजारा लोक-काव्य रूप का प्रयोग कर गुरु रामदास जी ने अस्पष्ट भावों को स्पष्ट कर तथा अमूर्त को मूर्त रूप देकर विशेष भावों को वाणी के माध्यम से रूपायित करके जीवात्मा को सही लक्षय की ओर प्रेरित किया है।

गुरु रामदास जी ने करहला और वणजारा लोक-काव्य रूपों का प्रयोग कर लौकिक धरातल के विषयों में ही आध्यात्मिकता का पुट दे दिया है। वणजारा एक सम्पूर्ण जाति की प्रस्तुति करता लोक-काव्य रूप है जो सदैव इधर-उधर घूमती रहती है। यह जाति जीवन यापन के लिए एक शहर से दूसरे शहर व्यापार करती है। गुरु रामदास जी ने वणजारा जाति की व्यापार वाली प्रवृति तथा धुमक्कड वृति को केन्द्र में रखकर वणज को आधार बनाकर मनुष्य को हरि के उत्तम नाम की कमाई को असली वणज मानने का उपदेश दिया है। दूसरी ओर करहला लोक-काव्य रूप में वणजारा की भांति किसी सम्पूर्ण जाति का वर्णन न कर केवल करहला (ऊंट) की भटकन वाली वृति के माध्यम से उपदेश दिया है। वणजारा में व्यक्ति के लौकिक कर्मों

का वर्णन कर उसे प्रभु नाम के व्यापार का पवित्र कर्म करने को कहा है तथा करहला में मनुष्य मन को केन्द्र में रखकर रेगिस्तान में भटकने वाले ऊंट की भांति मनुष्य मन की भटकन को विश्लेषित किया है। यह लोक-काव्य रूप विशेष रूप् में यात्रा करने वाले व्यापारियों द्वारा गाए जाने वाले गीतों के आधार पर स्थापित हुआ। पथ की कठिनाईयों, प्रदेश की लंबी यात्रा के दौरान मित्रों की तथा पारिवारिक सदस्यों की याद में गाए जाने वाले गीत करहला लोक-काव्य रूप के नाम से प्रतिष्ठित हो गए। गुरु जी ने मित्र जनों की याद में गाए जाने वाले लोक-काव्य को प्रभु प्रियतम के नाम स्मरण, भक्ति से एकस्वर कर वाणी के माध्यम से प्रस्तुत किया। विभिन्न परदेसों की यात्रा में ऊंट अपने मालिक के कारण ही भटकता है। इस लिए अगर सवार की मंजिल सही होगी तो ऊंट की भटकन खत्म हो जाएगी। इस तरह गुरु रामदास जी ने ऊंट रूपी मन का सवार मनुष्य को माना है। जिस दिन देह अपने भौतिक सुखों के लिए भटकना छोड़ देगी उसी समय परमात्मा के नज़दीक हो जाएगी। इस प्रकार गुरु जी ने जीवात्मा को अपना मन गुरु चरणों में अर्पन करने को कहा है। करहला तथा वणजारा लोक-काव्य रूपों का प्रयोग, वाणी के रूप, रस तथा लोकप्रियता को और भी प्रतिष्ठित करता है। गुरु जी की वाणी जीवात्मा को अपना ध्यान परमात्मा के प्रेम तथा भक्ति में क्रेंदित करने के लिए प्रेरित करती है और इस संदेश को सम्प्रेषित करने के लिए करहला, वणजारा जैसे लोक-काव्य रूपों का प्रयोग उन्होंने सफल ढंग में किया है। इन लोक प्रचलित काव्य रूपों का प्रयोग जहाँ एक ओर वाणी का आध्यात्मिक संदेश सम्प्रेषित करता है वहाँ दूसरी उस युग की परिस्थितियों से भी अवगत करवाता है। जैसे अमृतसर शहर का स्थापित होना तथा रोज़गार के लिए लोगों का भिन्न-भिन्न व्यापारों में कार्यरत होना। इन नगर संबंधी सभी परिस्थितियों से गुरु जी ज्ञात भी थे

तथा वह लोगों नित्य प्रति कार्य व्यवहारों के माध्यम से ही वाणी के साथ भी जोड़ना चाहते थे इसीलिए उन्होंने इन लोक-काव्य रूपों को माध्यम बनाया। उनकी वाणी सभी के लिए है जो लोक मंगल की धारणा को अपनाती है और इसी का संदेश उन्होंने वाणी में आम लोगों को भी दिया है। सहनशीलता तथा लोकहित, हरि नाम का स्मरण आदि विषयों को विशेष रूप में उद्घाटित किया गया है। इस तरह हम कह सकते हैं कि पाठक तथा श्रोता की मानसिकता के साथ सांमजस्य स्थापित करने के लिए गुरु जी ने लोक-गायन के विविध रूपों में से करहला, वणजारा को वाणी में स्थान दिया और लोक का परलोक से संबंध जोड़ा है। गुरु जी लोक-नायक थे इसलिए वाणी रचना में वह लोक-काव्य परंपरा से पीछे नहीं रहे बल्कि उसके साथ जुड़े रहे हैं क्योंकि लोक-काव्य में सुख दुःखात्मक अनुभूतियां भरी रहती हैं। गुरु जी ने मनुष्य को लोक मंगल जैसे भावों तथा सांसरिक कष्टों से अवगत करवाकर हरि भक्ति में लीन रहने का उपदेश दिया है। गुरु जी करहला, वणजारा जैसे लोक-काव्य रूपों का चयन करने से लेकर उनका प्रयोग तथा उनमें अपने विचारों को सार्थक रूप में अग्रसारित करने में पूर्ण सिद्ध हुए हैं।

छठा अध्याय

6.0 गुरु रामदास जी के काव्य रूप वारां और सोलहे का अध्ययन

मनुष्य एक समाजिक प्राणी है। समाजिक प्राणी होने के साथ वह प्रकृति का एक अभिन्न अंग भी है। प्रकृति से अलग होकर मानव का जीवन यापन संभव नहीं है। जीवन तथा समाज को विकास की ओर अग्रसर करने के लिए मानव को प्रकृति के साथ चलना पडत़ा है। प्रकृति में विभिन्न जीव, पेड़ पौधों इत्यादि ने जीवन के लिए संघर्ष करते हैं पर मानव ने जीवन को व्यवस्थित रूप में स्थापित करने के लिए सबसे ज्यादा संघर्ष किया है क्योंकि खान-पान की व्यवस्था रहने के लिए घर की व्यवस्था आदि की प्राप्ति के लिए उसको प्रकृति की आपदाओं के साथ-साथ जंगली जानवरों का भी सामना करना पड़ा है। ''वीरता का संकल्प जीवन की ही उपज है क्योंकि मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों से नित्य संघर्ष करता रहा है।''[160] इसी संघर्ष करने की प्रवृति ने मानव के भीतर वीरता, संघर्ष, साहस के गुण पैदा किये। इन्हीं गुणों के कारण मनुष्य विभिन्न संकटों से अपनी रक्षा कर पाने में सक्षम हो पाया। जब मानव अपने जीवन के लिए संघर्ष करता है तो वह वीर मानव के रूप में विचरण करता है। ''वीरता एक व्यक्तिगत विषय है। जब एक व्यक्ति जनता या धर्म के कार्य के लिए युद्ध करता है तो नेता जिसको नायक कहा जाता है उसकी प्रशंसा की जाती है।''[161] अर्थात जीवन की आदिम अवस्था में मनुष्य के संघर्ष का रूप सामूहिक था क्योंकि वह कबीले में रहता था और अकेला रहकर सारी मुसीबतों के साथ निपटना उसकी व्यक्तिगत क्षमता में नहीं था। ''वैदिक युग में आर्यों के अनु, द्रहया, यदु, तुरवस और पुरु कबीले बहुत प्रसिद्ध थे। क्षेत्रीय लोगों को हराने के उपरांत सत्ता के लिए इन कबीलों में आपस में युद्ध शुरु हो गये। इन आपसी युद्धों के पीछे श्रेष्ठता की भावना कार्य करती

[160] प्रीतम सिंह, पंजाबी साहित्य विच वीर काव्य दा विकास, (पटियालाःभाषा विभाग, पंजाब, 1988), पृष्ठः 2.
[161] वही, पृष्ठः 2.

थी।''[162] इस प्रकार कबीले में या सामूहिक रूप में एकत्रित हुए लोगों में जो व्यक्ति जीत प्राप्त कर लेता था वह श्रेष्ठ कहलाने लगता था। प्राकृतिक आपदाओं से लेकर समाजिक मुश्किलों को साहस के साथ पार करने की जिम्मेवारी तथा भावना ने वीरता को जन्म दिया।

वीरता की भावना मानव में उत्साह पैदा करती है जैसे आदिम मानव द्वारा जीवन की सुख सुविधाओं के लिए किये गए संघर्ष को बहादुरी के साथ निभाया गया तो उसके भीतर वीरता का जन्म हुआ। वीरता का प्रयोग किसी ने अन्याय को खत्म करने के लिए किया और किसी ने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए किया। जब राजाओं द्वारा वीरता का प्रदर्शन युद्ध जीतने के लिए किया गया तब से 'लोक वारां' का उद्भव हुआ। ''वार एक ऐसा लोक-काव्य रूप है जो आम तौर पर युद्ध से संबंधित होता है। इसमें नायक की बहादुरी का वर्णन करके श्रोताओं को उत्साहित किया जाता है।''[163] वारां का उद्भव राजाओं तथा बड़े-बड़े जागीरदारों की प्रशंसा से हुआ क्योंकि आम जनता इन राजाओं के द्वारा दी जाने वाली नयामतों (धन-दौलत) से ही गुज़ारा करती थी। इस तरह जिस पर भी राजा की दया होती वह विभिन्न प्रकार के तोहफों का मालिक बन जाता। इसलिए हर एक साधारण जाति का व्यक्ति राजा के युद्ध के किस्सों का वर्णन राजा को बहादुर दिखाने के लिए करता था इनमें ज्यादातर वारां के गायक राज-दरबार में रहने वाले कवि या गायक होते थे और वह अपने गायन द्वारा राजा का मनोरंजन करते थे। ''राजे को ज्यादा खुश करने के लिए वारां के कथानक इस □ग से

[162] प्रिंसीपल भगत सिंह वेदी, पंजाबी दा वीर काव्यःएक अध्ययन, (चंडीगढ़ः लोकगीत प्रकाशन, 2016), पृष्ठः 2.

[163] सुखजिंदर कौर, गुरु रामदास दीआं वारां विच विचारधारक रूपांतरण, (चंडीगढ़ः लोकगीत प्रकाशन, 2017), पृष्ठः 6.

प्रस्तुत किये जाते थे कि उनमें राजा की बहादुरी की भरपूर चर्चा होती।''[164] जहाँ वारां गायन का उद्देश्य एक ओर कवि या गायक की निज़ी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए किया जाता था वहाँ दूसरी ओर वार गायन के माध्यम से लोगों में वीर रसी भावनाओं का संचार करके उन्हें जंग के मैदान में योद्धा की भांति लड़ने के लिए उत्साहित भी करना था।

वार लोक-काव्य रूप लोक गीतों के रूप में भट्टों तथा मिरासियों की सामूहिक रचना रही है क्योंकि भट्ट मिरासी आम लोगों को राजा तथा योद्धाओं की प्रशंसा वार गायन के द्वारा सुनाते थे। ''इस वीर काव्य की विधि नायक प्रधान थी उसके चित्रण को विस्तृत करने की थी। उसका नायक प्रधान होना जंग के मैदान में ही सिद्ध होता था इसलिए कवि उस क्षेत्र का ही चित्रण ज्यादा करता था।''[165] राज दरबार के कवियों द्वारा प्रचलित वीर रसी काव्य ने लोक में गहरा स्थान प्राप्त कर लिया। राजा के किस्सों को बार-बार दुहराने के कारण वीर काव्य लोक में प्रचलित वारां के रूप में लोक काव्य का अंग बन गया।लोक मन भी अपने उत्साहजनक भावों को वारां के माध्यम से प्रस्तुत करने लगा। ''वार शब्द को घटना के बार-बार गाने, दरवाज़े जैसे स्पष्ट स्थान पर गाना,प्रशंसा करना, सहायता के लिए पुकार करना आदि के अर्थों में भी दिया जाता है।''[166] इस तरह हम कह सकते हैं कि वार काव्य रूप मूल रूप में उत्साहजनक भावों को रूपांतरित करता ऐसा काव्य रूप है जिसमें किसी विशेष दिन की, किसी विशेष घटना का वर्णन होता है जिसमें नायक की बहादुरी का गायन किया जाता है।

---

[164] सुखविंदर सिंह, लोक वारां अते आध्यात्मिक वारां, (जालंधरः बलवंत प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2003) पृष्ठः 22

[165] हरचरन कौर (सं), मध्यकालीन पंजाबी साहित्यः पुनः विचार (जालंधरः बलवंत प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2003) पृष्ठः 22.

[166] अमृतपाल कौर, काव्य स्वरूपःसिद्धांत और स्थिति, (पटियालाः पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, 2014), पृष्ठः 106.

लोक वारां का स्वरूपः

लोक में प्रचलित वारां विशेष काल, विशेष दृष्टि की उपज हैं जो कि राजाओं की प्रशंसा उनके यशेगान से संबंधित थी और यही विशेषता वारां के कथानक को भी निर्धारित करती है। वारां का कथानक युद्ध संबंधी घटनाओं पर ही आधारित है। ''वारां का रूपकार मुख्य रूप में किसी युद्ध के कथानक के इर्द-गिर्द काव्यमयी वृतांत को संगठित करता है।''[167] राजा की प्रशंसा में गायन की जाने वाली वारां का संबंध संजीव युद्धों के वर्णन के बारे में है जिसमें वर्णित कथानक का युद्ध लौकिक प्रकृति का ही धारणी है जिसका नायक राजा या कोई पराक्रमी योद्धा है। लोक वारां से ही आध्यात्मिक वारां का उद्भव हुआ। लोक-वारां के स्वरूप का निर्धारण निम्नलिखित तत्वों के आधार पर किया जा सकता है-

मंगलाचरणः वार का रचयिता मंगलाचरण का प्रयोग आवश्यक रूप में करता है। मंगलाचरण से वीर काव्य की शुरुआत करना अनिवार्य प्रथा माना गया है। ''मंगलाचरण काव्य रचना में आने वाले विघनों को दूर करने के लिए प्रयोग किया जाता रहा है।''[168] वार की रचना करने वाला सबसे पहले अपने इष्ट की अराधना करता है। रचनाकार द्वारा मंगलाचरण के माध्यम से अप्रकट शक्ति के प्रति आस्था पूर्ण भावों को प्रकट किया जाता है ताकि उसके द्वारा आरम्भ किया कार्य बिना किसी रूकावट के सम्पूर्ण हो।

---

[167] सुखविंदर सिंह, लोक वारां अते अध्यिात्मिक वारां दी दृष्टि और स्वरूप, (जालंधरः बलवंत प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2003) पृष्ठः 32.

[168] प्रिंसीपल भगत सिंह वेदी, पंजाबी दा वीर काव्यःएक अध्ययन, (चंडीगढ़ः लोकगीत प्रकाशन, 2016), पृष्ठः 45.

नायक एवं प्रतिनायकः वार में दो पक्षों के बीच के संघर्ष को दर्शाया जाता है। ''यह संघर्ष नायक-प्रतिनायक,नेकी और बुराई के बीच होता है।''[169] वार का उद्देश्य वीर रस का वर्णन कर श्रोताओं में वीरतापूर्ण भावनाओं को जागृत करना है। वार में नायक तथा प्रतिनायक के संघर्ष का प्रतिपादन किया जाता है।

संघर्षः संघर्ष वार का प्रमुख तत्व है।इसमें संघर्ष के लिए एक पक्ष के समक्ष दूसरा पक्ष होना आवश्यक है। ''यह काव्य-रूप दूसरे पक्ष के बिना चल पाना कठिन ही नहीं,असंभव है। दो पक्षों को एक दूसरे के समक्ष खड़ा करने में संघर्ष की प्रबलता का विशेष योगदान है।''[170] संघर्ष का वर्णन वीर-रस में होता है जो कि वार का महत्वपूर्ण गुण तथा रस है। इसलिए संघर्ष के अभाव में वार की रचना संभव नहीं है।

पउड़ीः वार की रचना पउड़ी में की जाती है जैसे एक योद्धा युद्ध के चक्रव्यूह को भेदता हुआ निरंतर जीत की ओर अग्रसर होता जाता है वैसे पउड़ी में वार रचना युद्ध कथा को प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक है। ''पउड़ी वार के लिए कलात्मक संगठन का आवश्यक तत्व माना गया है। योद्धा की बहादुरी का यश पंजाबी कवियों ने ज़्यादातर इस छंद में ही लिखा है।''[171] पउड़ी में एक पग के बाद दूसरे पग में निरंतर योद्धा के युद्ध का वर्णन किया जाता है।

दृश्य वर्णनः वार का दृश्य वर्णन ऐसा होना चाहिए जिसे सुनकर बहादुर हृदयों को उत्साह तथा कायरों को भय प्रतीत हो। दृश्य वर्णन से पाठकों तथा श्रोताओं की आँखों के समक्ष युद्ध का नज़ारा प्रस्तुत हो जाए।शूरवीर की शेर जैसी दहाड़,लहू के साथ सनी

[169] प्रीतइंदर सिंह, वारां गुरु रामदासः पुनःमूल्यांकन, (चंडीगढ़ः लोकगीत प्रकाशन, 2011), पृष्ठः 17

[170] महिन्द्र कौर गिल्ल, वारां गुरु अर्जुन देवःजीवन ते वाणी, (दिल्लीः नेशनल बुक शॉप, 1975), पृष्ठः 90.

[171] गुरदीप सिंह, गुरमति सभ्याचार ते भाई गुरदास, (अमृतसरः रवि साहित्य प्रकाशन, 1991), पृष्ठः 42.

तलवारें, नगारे की गूंज, वीरों की जीत वाले दृश्यों का वर्णन ही वार रचना को सफल बनाते हैं।

वीर रसः रस की दृष्टि से वीर रस का महत्वपूर्ण स्थान है। ''वीर रस के लिए उत्साह को स्थाई भाव माना गया है। युद्ध भूमि में अगर मरो या मारो वाला वीरता का भाव नहीं है तो योद्धाओं में उत्साह पैदा नहीं होगा।''[172] इसलिए वार का वर्णन वीर रस में होता है क्योंकि वीर रस ही उत्साहवर्द्धक माना जाता है। ''इस रस का आस्वाद्यन रणभूमि में जीत प्राप्त करने वाले वीर-योद्धा ही कर सकते हैं या फिर वह पाठक जिनकी वीर रस काव्य में रूचि हो।''[173] इस प्रकार वार में से पैदा होने वाला रस पाठक तथा श्रोता के मन में ऐसी भावनाओं का संचार करता है कि वह भी वीरता का अनुभव करता है।

गुरु रामदास जी ने लोक-वारां के स्वरूप को आध्यात्मिक वारां के रूप में बदल दिया उन्होंने आध्यात्मिक भावों का शांत रस में वर्णन कर गुरुमुख तथा मनमुख के संघर्ष को प्रस्तुत किया है जिसका विश्लेषित वर्णन आध्यात्मिक वारां के अंतर्गत किया जाएगा।

आध्यात्मिक वारां:

आध्यात्मिक वारां के आगमन से लोक-काव्य रूप वारां के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है जिसने राजा की प्रशंसा के लिए गायी जाने वाली वार के पूर्व अर्थ को बदल दिया। आध्यात्मिक वारां में तथा लोक-वारां में समानता गायन

[172] प्रिंसीपल भगत सिंह वेदी, पंजाबी दा वीर काव्यः एक अध्ययन, (चंडीगढ़ः लोकगीत प्रकाशन, 2016), पृष्ठः11.
[173] वही, पृष्ठः 13.

विधि तथा लय की है। गुरु कवियों द्वारा वाणी के आध्यात्मिक संदेश को लोगों तक सम्प्रेषित किया गया। गुरु साहिबानों की दृष्टि लोक-हितपूर्ण थी इसी लिए उन्होंने लोक-वारां के प्रचलित रूप को प्रस्तुतिकरण का आधार बनाया। वारां का प्रचलन मध्यकाल में राज दरबारों में था तथा आम जनता राजा तथा जागीरदारों के प्रबंध के अधीन कार्यरत थी। जो कि जागीरदारों,सामंतों द्वारा भेदभाव का शिकार हो रही थी।गुरु साहिबानों द्वारा वार लोक-काव्य को लोगों के उत्थान के लिए प्रयुक्त किया गया। ''वार लोक-काव्य के लोक मन पर गहरे प्रभाव को मुख्य मानकर गुरु साहिबान ने आध्यात्मिक विषय को वार में □ालने की धारणा अपनाई।''[174] इस तरह लोक-काव्य रूप वारां के माध्यम से गुरुवाणी एक नवीन समाज की स्थापना का संकल्प प्रस्तुत करती है जो मानव को भेद-भाव से मुक्त तथा समानता वाले नये समाज की स्थापना करने के लिए प्रेरित करती है।

गुरु रामदास जी द्वारा लिखित वारां लोक-काव्य का आधार लेकर लिखी गयी हैं जिनका विषय परमात्मा की महिमा, यश के ही इर्द-गिर्द घूमता है। गुरु जी ने लोक-वारां को आध्यात्मिकता का स्वर देकर जनता को परमात्मा के नाम की ओर अग्रसर होने तथा उचित विचारों का पालन करने का संदेश दिया है। गुरु रामदास जी द्वारा लिखित वारां का क्षेत्र सीमित तथा संकुचित न होकर विशाल है जो जीवात्मा के परमात्मा तक पहुँचने के भीतरी संघर्ष का वर्णन करता है। ''जैसे वीर रसी वारां में नायक होता है सहनायक होते हैं, प्रतिनायक होता है तथा शुरवीरों का संघर्ष होता है, बिलकुल वैसे ही आध्यात्मिक वारां में होता हैं यहाँ पर मनुष्य ही नायक है जो अपने

[174] गुरदीप सिंह, गुरमति सभ्याचार ते भाई गुरदास, (अमृतसरः रवि साहित्य प्रकाशन, 1991), पृष्ठः 47-48.

मन की बुराईओं से संघर्ष करता है।''[175] गुरु रामदास जी द्वारा रचित वारां में मनमुख और गुरमुख,जीवात्मा और परमात्मा आदि विषयों का विस्तृत वर्णन तो मिलता ही है पर साथ में मनमुख व्यक्ति को गुरमुख बनने की प्रेरणा भी मिलती है। गुरु जी ने आध्यात्मिक वारां में अलौकिक अनुभवों की चर्चा करते हुए समाजिक गिरावट, पाखंडों, कर्म-काण्डों का विरोध कर नैतिक मूल्यों को प्रकट किया है। इन्हीं का अध्ययन गुरु जी द्वारा लिखित वारां के माध्यम से किया जाएगा-

सिरी राग की वारः

श्री गुरु ग्रंथ साहब के रागात्मक संपादन अधीन सिरी राग सबसे पहले आता है। ''गुरमत संगीत पद्धति में सबसे प्रमुख स्थान सिरी राग को दिया जाता है। सिरी राग बहुत पुरातन, मधुर तथा कठिन राग है।''[176] सिरी राग एक प्राचीन राग है इसे गाने का समय शाम का है। सिरी राग की वार में गुरु रामदास जी ने परमात्मा की प्रशंसा की है। परमात्मा के गुणों का व्याखान करते हुए उन्होंने बताया है कि जीवात्मा दुनियावी मोह-माया में फंसकर परमात्मा को भूल जाती है। गुरु जी ने परमात्मा की प्राप्ति के लिए उसके नाम स्मरण में ही लीन होने का उपदेश दिया है क्योंकि सम्पूर्ण ब्रह्मांड परमात्मा के ही अधीन चलता है-

''तुधु आपे धरती साजीए चंदु सुरजु दुइ दीवे।

दस चारि हट तुधु साजिआ वापारु करीवे।

---

[175] निरवैर सिंह अर्शी, वाणी गुरु रामदास आलोचना अते अध्ययन, (आनंदपुर साहिबः आनंदपुरी पब्लिशिंग हाऊस), पृष्ठः 36.

[176] सुखजिंदर कौर,गुरु रामदास दीआं वारां विच विचारधारक रूपांतरण, (चंडीगढ़ः लोकगीत प्रकाशन, 2017), पृष्ठः 40.

इकना नो हरि लाभु देइ जो गुरमुखि थीवे।

तिन जमकालु न विआपई जिन सचु अमृतु पीवे।

ओइ आपि छुटे परवार सिठ तिन पिछै सभु जगतु छुटीवे।''[177]

'सिरी राग में लिखित इस वार में गुरु रामदास जी ने परमात्मा को धरती, चंद्रमा तथा सूर्य का सृजन करने वाला कहा है जो सभी जीवों को जीवन देकर कर्मों में प्रवृत भी करता है। गुरु रामदास जी ने उपदेश दिया है कि जिन्होंने परमात्मा का नाम लिया है वह परिवार समेत ही इस भवसागर को पार कर गए हैं।

''हरि अंदर बाहरि इकु तूं तूं जाणहि भेतु।

जो कीचै सो हरि जाणदा मेरे मन हरि चेत।''[178]

गुरु रामदास जी ने जहाँ मनुष्य को गुरुवाणी द्वारा प्रकाशित पथ पर चलने की बात कर लौकिक धरातल का रूप स्पष्ट किया है वहाँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संचालक निरंकार परमात्मा को बताकर अलौकिक धरातल का भी पक्ष उजागर किया है। ''सिरी राग की वार में गुरु रामदास जी ने शांत रस के माध्यम से लोगों में आत्मिक भाव पैदा करके नयी समाजिक सोच का संचार किया।''[179] इस तरह आध्यात्मिक वारां के कथानक तथा संरचना में शांत रस की प्रधानता गुरुमुख व्यक्ति को नायक तथा

[177] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी पहली,सिरी राग की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 83.

[178] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी पहली, सिरी राग की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 83.

[179] सुखजिंदर कौर, गुरु रामदास दीआं वारां विच विचारधारक रूपांतरण, (चंडीगढ़ः लोकगीत प्रकाशन, 2017), पृष्ठः 39.

मनमुख व्यक्ति को प्रतिनायक के रूप में चित्रित करने के साथ-साथ मन के विकारों को भी प्रकट किया है।

वडहंस की वारः

गुरु रामदास जी द्वारा रचित वडहंस की वार का केन्द्रीय विषय गुरु महिमा है। ''वडहंस की वार को ललां बहलीमा की धुन पर ही गायन का आदेश है।''[180] ललां बहलीमा की वार वीर रस से भरी हुई है। ''ललां बहलीमा कांगडा के राजपूत सरदार थे, जिनकी लडाई पानी का कर न देने के कारण हुई थी।''[181] ललां और बहलीमा कागड़ा इलाके के दो जागीर दार थे। ललां का इलाका बंजर था और बहलीमा का खुशहाल था। बारिश कम होने की वजह से ललां ने बहलीमा से नदी का पानी मांगा और साथ में यह वचन दिया कि फसल की पैदावार का छठा हिस्सा बहलीमा को देगा पर फसल तैयार होने के बाद ललां अपने वचन से पीछे हट गया इसी वजह से दोनो में युद्ध होता है और विजय बहलीमा की होती है-

''काल ललां दे देश दा खोहआ बहिलीमा।

हिस्सा छठा मनाईके जल नहरों दीमा।

फिरादूण हुए ललां ने रण मंडया धीमा।

भेड दुहू दिस मचया सट पाई अज़ीमा।

सिर धड़ डिगे खेत विच ज्यों वाहण दीमा।

---

[180] ब्रह्मजगदीश सिंह, बाणी गुरु रामदास जीःपाठ अते विश्लेषण, (अमृतसरः वारिस शाह फाउडेशन, प्र.सं 2009), पृष्ठः 24.

[181] कृपाल सिंह (सं), पंजाबी साहित्य दी उत्पत्ति ते विकास, (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब, 1971), पृष्ठः 60.

मार ललां बहिलीमा ने रण में धर सीमा।''[182]

इस लोक वार के आधार पर ही वाणी में लिखित वडहंस की वार गायन का गुरु रामदास जी ने हुक्म दिया है। वारां लोक में प्रचलित थी तथा इन लोक काव्य रूपों का आध्यात्मिक वारां के निर्माण में महत्वपूर्ण हिस्सा था। गुरु रामदास जी द्वारा रचित इस वार की सरंचना में कुछ बदलाव किये गए हैं क्योंकि गुरु जी द्वारा लिखित वार का विषय सम्पूर्ण परमात्मा केद्रिंत है तथा शांत रस में है परन्तु रूप के तथा धुन के पक्ष से यह लोक वारां का अनुकरण ही है।

''तू आपे ही आपि आपि है आपि कारणु कीआ।

तू आपे आपि निरंकारु है को अवरू न बीआ।

तू करण कारण समरथु है तू करहि सु थीआ।

तू अणमंगिआ दानु देवणा सभनाहा जीआ।

सभि आलहु सतिगुरु वाहु वाहु जिनि दानु हरि नामु मुखि दीआ।।''[183]

गुरु रामदास जी ने मुख्य तौर पर यह स्पष्ट किया है कि परमात्मा हर जीव में बसता है। जिसे गुरु द्वारा दी गई रोशनी के बाद ही देखा जा सकता है। जहाँ एक ओर लोक वार ललां बहलीमा दो व्यक्तियों के आपसी युद्ध का दृश्य प्रस्तुत करती है वहाँ गुरु जी द्वारा लिखित वार सुचेत रूप में लोक पक्ष की बात करती है जो लोक के

[182] गुरु शब्द रत्नाकर महानकोश, इन्साईक्लोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब, 1969), पृष्ठः 669.

[183] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, वडहंस की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 585.

जीवन का उत्थान चाहती है और इसीलिए उसे परमात्मा के नाम की ओर प्रेरित करती है।

"जिनि जग जीवनु उपदेसिआ तिसु गुर कउ हउ सदा घुमाइआ।

तिसु गुर कउ हउ खंनीऐ जिनि मधु सुदनु हरिनाम सुणाइआ।

तिसु गुर कउ हउ वरणै जिनि हउमैं बिखु सभु रोग गवाइआ।

तिसु सतिगुर कउ वड पुंनु है जिनि अवगण कटि गुणी समझाइआ।

सो सतिगुरु तिन कउ भेटिआ जिन कै मुखि मसतकि भाग लिखि

पाइआ।'७।"[184]

गुरु रामदास जी द्वारा रचित वडहंस की वार का विषय लोक वार ललां बहलीमा से भिन्न है क्योंकि उन दोनों के बीच युद्ध समाजिक श्रेष्ठता को लेकर है जो कि एक लौकिक पक्ष है पर दूसरी ओर गुरु रामदास जी द्वारा लिखित वार मोह माया को व्यर्थ बताकर,परमात्मा की प्रतिष्ठता को व्याख्यायित करती है। गुरु जी द्वारा लिखित वार तथा लौकिक ललां बहलीमा की वार में समानता एक ध्वनि पर गायन की है तांकि लोगों को लोक प्रचलित ध्वनि के माध्यम से वाणी की शिक्षा दी जाए।

सारंग की वारः

सारंग की वार 36 पउड़ीओ तथा 74 शलोकों में लिखित है। गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित सभी वारां में से सारंग की वार सबसे लंबी है। "सारंग की वार को 'राइ

[184] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, वडहंस की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 585.

महमे हसने' की धुनि पर गायन का आदेश है।''[185] महमा और हसना दोनों भट्टी राजपूत थे जो मालवा क्षेत्र के कांगड तथा धौला के राजे थे। ''महमा ने हसने को अपना शाही कर अदा करने के लिए प्रधान की उपाधि से निवाज़ा। हसने ने सरकारी कर अपने नाम पर ही अदा करके महमे को शाही दरबार में गैरहाज़िर करवा दिया। कर न देने के अपराध में महमे को कैद करवा दिया।''[186] महमे ने अपनी काबलीयत से बादशाह को खुश कर हसने को मिलने की आज्ञा ली। महमे और हसने के बीच घमासान युद्ध हुआ जिसमें हसने की हार हुई-

''महमा हसना राजपूत राइ भारे भट्टी।

हसने बेईमानगी नाल महमे घट्टी।

भेड दोहां दा मचया सर वगे सफट्टी।

महमे पाई फते रन गल हसने घट्टी

बन्न हसने नूं छड़या जस महमे खट्टी।''[187]

वार में दो विरोधियों का संघर्ष ज़रूरी है क्योंकि इसके बिना लड़ी जा रही जंग का कोई लक्षय नहीं रह जाता पर लोक काव्य रूप वारां में प्रचलित संघर्ष को गुरु रामदास जी द्वारा लिखित वारां में ढूंढना व्यर्थ है क्योंकि उनके द्वारा लिखित वारां का

---

[185] ब्रह्मजगदीश सिंह, बाणी गुरु रामदास जीः पाठ अते विश्लेषण, (अमृतसरः वारिस शाह फाउडेशन, प्र.सं 2009), पृष्ठः27.

[186] सुखविंदर सिंह, लोक वारां अते अध्यिात्मिक वारां दी दृष्टि और स्वरूप, (जालंधरः बलवंत प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2003) पृष्ठः 31

[187] गुरु शब्द रत्नाकर महानकोश, इन्साईक्लोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियाला, भाषा विभाग, पंजाब, 1969), पृष्ठः 669.

मंतव्य एक अलग दृष्टिकोण गुरमुख तथा मनमुख व्यक्ति के बीच के संघर्ष संबंधी कथानक से जुडा हुआ है।

''मनमुखि दूजा भरमु है दूजै लोभाइआ।

कूडु कपटु कमावदे कूड़ो आलाइआ।

पुत्र कलत्रु मोहु हेतु है सभु दुखु सबाइआ।

जम दरि बधे मारीअहि भरमहि भरमाइआ।

मनमुखि जनमु गवाइआ नानक हरि भाइआ।''[188]

मनमुख व्यक्ति पापी है उसके मन में अनेक प्रकार के वैर विरोध वाले भाव, बुराईआ, मोह माया में रत अनेक विकार मन में विद्यामान हैं इसलिए मन के युद्ध में उसकी हार यकीनी है और गुरुमुख की विजय पक्की है। इस तरह ध्वनि एक है पर युद्ध सच तथा झूठ की ताकतों का है जिसमें सच ही जीतता है।

कानड़े की वारः

इस वार की रचना 15 पउड़ीओं में तथा 30 श्लोकों में की गई है। इस वार के सम्पूर्ण श्लोक गुरु रामदास जी द्वारा लिखित हैं। इस वार का विषय भी गुरु भक्ति तथा नाम भक्ति की महिमा है। इस वार को मूसे की वार की ध्वनि पर गायन के संकेत हैं। यह वार लोक प्रचलित मूसे की कथा पर आधारित है। ''जिस ध्वनि ऊपर गुरु रामदास जी की कानड़े की वार चलती है। मूसे की मंगेतर का किसी और के साथ विवाह हो

[188] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी चौथी, सारंग की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः1208.

जाने पर मूसा उसके पति के साथ जंग करके उसको छीन कर ले आता है पर फिर उस औरत की सत्य तथा धर्म की याचना से प्रभावित होकर उसको पति के साथ भेज देता है।''[189] मूसा बहुत बहादुर जागीरदार था। अपनी मंगेतर का किसी और राजे के साथ विवाह मूसे से सहन नहीं होता और वह उस राजा पर हमला कर देता है और अपनी मंगेतर को वापिस ले आता है पर जब अपनी मंगेतर के मन की इच्छा पूछता है तो वह कहती है कि मैं उसके साथ ही रहना चाहती हूँ जिसके साथ मेरा विवाह हो गया है। मूसा उसका यह उतर सुनकर बहुत खुश होता है और बहुत इज्ज़त के साथ उसको वापिस भेज देता है। मूसे की इसी बहादुरी तथा उदारता का वर्णन मूसे की वार में किया गया है-

''त्रै सै सठ मरातबा इक गुरए डगे।

चड़या मूसा पातशाह सब सुणया जगे।

दंद चिटे बड हाथीयां कहु कित वरगे।

रुत पछाती बगलिआ घट काली बगे।

एही कीती मूसिआ किन करी न अगे।''[190]

श्री गुरु ग्रंथ साहब में संकलित कानड़े की वार गुरु रामदास जी द्वारा रचित वार की पउड़ीआ मूसे की वार की पउड़ीओं से मिलती जुलती है इसलिए कानड़े की वार को मूसे की वार की ध्वनि पर गायन के संकेत मिलते हैं।

---

[189] कृपाल सिंह(सं), पंजाबी साहित्य दी उत्पत्ति ते विकास, (पटियाला: भाषा विभाग, पंजाब, 1971), पृष्ठः 61.

[190] गुरु शब्द रत्नाकर महानकोश, इन्साईक्लोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब, 1969), पृष्ठः670.

"हरि हरि नामु धिआइ मन हरि दरगहि पावहि मानु।

जो इछहि सो फलु पाहसी गुर सबदी लगै धिआनु।

किलविख पाप सभि कटीअहि हउमै चुकै गुमानु।

गुरमुखि कमलु विगासिआ सभु आतम ब्रहम पछानु।"[191]

कानड़े की वार में प्रभु के हर स्थान पर मौजूद होने का वर्णन किया गया है। गुरु रामदास जी गुरुमुख तथा मनमुख व्यक्ति को दुनियावी जीव कहा हैं जो कि अपने अनुसार जीवन यापन करते हैं पर कर्म दोनों के अलग होने के कारण एक व्यकित गुरुमुख तथा दूसरा मनमुख कहलाता है। गुरु रामदास जी मनमुख व्यक्ति को प्रभु के गुणों का गायन करके भवसागर को पार करने का उपदेश देते हैं। इस तरह हम कह सकते हैं कि गुरु जी द्वारा रचित कानड़े की वार लौकिक मनमुख तथा अलौकिक गुरुमुख गुणों को धारण करने वाले व्यक्ति से संबंधित दृष्टिकोणों को प्रकट करती है। गुरु रामदास जी की वाणी से ब्रह्म तथा समाज के दर्शन होते हैं। आध्यात्मिक वारां के माध्यम से लौकिक तथा अलौकिक का ज्ञान होता है क्योंकि लौकिक तथा अलौकिक के आधार पर ही सम्पूर्ण संसार का सृजन आधारित है तथा इसी पर सम्पूर्ण संसार आधारित है। जहाँ एक ओर लोक-काव्य रूप वारां का अनुकरण गुरु जी की लौकिक रूचि को प्रकट करता है वहाँ दूसरी ओर उन्हीं लौकिक जीवों को वाणी वारां के द्वारा शिक्षा भी देता है। मानव सुखद जीवन की लालसा के कारण व्यर्थ के जंजालों में फंसकर परमात्मा को भूल जाता है। गुरु रामदास जी ने लोक प्रचलित वारां की ध्वनि

[191] श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी चौथी, सारंग की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 1208.

में आध्यात्मिक वारां का पुट देकर जीवात्मा को परमात्मा के नाम स्मरण की ओर प्रेरित किया है। इसीलिए गुरु रामदास जी ने शूरवीरता तथा भक्ति दोनों को समान रूप में लेकर चलने वाले लोक प्रचलित काव्य रूप वारां का चयन कर अलौकिक ब्राह्माण्ड से प्रेरणा लेकर लौकिक जीवन में मुक्ति का मार्ग प्रदर्शित किया है।

सोलहे

लोक-काव्य रूप वारां की भांति गुरु रामदास जी की वाणी में मारू राग के अंतर्गत सोलहा की रचना भी लोक-काव्य के रूप को प्रस्तुत करती है। मारू सोलहे लोक-काव्य में प्रचलित सोहिला से संबंधित हैं। मारू राग में रचित सोलहा, सोहिला का ही एक रूप है या यह दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों के कोशगत अर्थ बिल्कुल भिन्न हैं। ''सोलहा एक प्रसिद्ध अंक प्रधान रूढ़ि है जिससे कई प्रकार की भावनाएं तथा मान्यताएं जुड़ी हुई हैं। यह रूढ़ि पूर्णता का प्रतीक है और इसकी शुरूआत चंद्रमा की सोलह कलाओ से हुई। ईश्वर तथा दैवी शक्ति की भी सोलह कलाएं मानी गई है। सोलह उपचार माने गए हैं जिनके बिना पूजा सम्पूर्ण नहीं मानी जाती।''[192] इस प्रकार सोलहा अंक को प्रस्तुत करता है पर सोहिला मंगलमयी अवसर पर गाए जाने वाले खुशी के गीत हैं जिनके द्वारा किसी व्यक्ति की महिमा की जाती है। ''सोहिला शब्द सुहेला-सु (श्रेष्ठ) हेला (खेहल) के संयोग से बना है और यह पद उन मंगल गीतों के लिए रूढ़ हो गया जिनमें किसी व्यक्ति की शोभा हो।''[193] इस प्रकार सोहिला लोक में विभिन्न खुशी के अवसरों पर गाए जाने वाले मंगलगीत हैं जैसे बच्चे के जन्म के अवसर पर सोलह द्वीप जलाकर बच्चे की आरती उतारते समय

[192] पंजाबी लोकधारा विश्वकोश जिलद 3, (साया से सौली तक), सोहिंदर सिंह वणजारा वेदी, (दिल्लीः नेशनल बुक शॉप, 2008), पृष्ठः 443.

[193] वही, पृष्ठः 437.

उसके भविष्य की शुभकामना संबंधी गाये जाने वाले गीत सोहिला कहलाते हैं तथा विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले वर-वधु के खानदान की महिमा तथा विवाहोंपरांत मंगलमयी भविष्य की कामना संबंधित गीत सोहिला की श्रेणी में आते हैं। सोहिला का लोक में विशेष स्थान है क्योंकि खुशी के अवसरों पर गाया जाने वाला लोक काव्य ज्यादातर वंश, परिवार, खानदान के बड़े रूतबे आदि को प्रकट करता है।

गुरु रामदास जी द्वारा रचित सोलहा जो कि मारू राग के अंतर्गत रचित है वह सोलह पद होने के कारण अंक प्रधान भी है तथा उनमें प्रभु की प्रशंसा की भावना होने के कारण वह सोहिला भी है। "इस तरह सोलहा जो अंकपर्क है और सोहिला जो यश की भावना पर आधारित गीत हैं यह दोनों एक रीत का अंग बन कर एक दूसरें में विलीन हो गए हैं।"[194] गुरुवाणी में जीवन को सफल बनाने तथा मनुष्य को चेतन करने के लिए बहुत कुछ रचा गया है। गुरु रामदास जी ने परमात्मा के स्वरूप, सृष्टि की रचना, शब्द की महत्ता जीवन का सच आदि विषयों को मारू सोलहे में संकलित किया है। प्रभु की प्रशंसा तथा गुरुमुख व्यक्ति के गुणों का वर्णन सबसे ज्यादा हुआ है।

"सचा आपि सवारणहारा। अवर न सूझसि बीजी कारा।

गुरमुखि सचु वसै घट अंतरि सहजे सचि समाई हे ।१।

सभना सचु वसै मन माही। गुर परसादी सहजि समाही।

"गुरु गुरु करत सदा सुखु पाइआ गुर चरणी चितु लाई हे।२।"[195]

---

[194] सोहिंदर सिंह वणजारा बेदी, पंजाबी साहित्य इतिहास दी लोक रूढ़ियां, (नयी दिल्लीः लोक प्रकाशन, 1982), पृष्ठः 40.

[195] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी चौथी, मारू सोल्हे, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 1069.

इसमें गुरु जी ने प्रभु को सत्य कहा है तथा सभी के कार्य सिद्ध करने वाला उसी परमात्मा को माना है गुरु जी मनुष्य को व्यर्थ के जंजालों से निकल कर परमात्मा के नाम स्मरण का उपदेश देते हैं परमात्मा की प्रशंसा के साथ उन्होंने प्रभु प्रेम को हासिल करने के बारे में भी वर्णन किया है-

"बिन सतिगुर जो दूजै लागे। आवहि जाहि भ्रमि मरहि अभागे।

नानक तिन की फिरि गति होवे जि गुरमुखि रहहि सरणाई हे।

गुरमुख प्रीति सदा है साची। सतिगुर ते मागउ नामु अजाची।

होहु दइआलु कृपा करि हरि जीउ रखि लेवहु गुर सरणाई हे।"[196]

मारू सोलहे में गुरु और साधु जनों की संगत के माध्यम से हरि की प्राप्ति का पथ प्रदर्शित किया गया है। सतिगुर से बेमुख होकर दर-दर की ठोंकरे खानी पड़ती है। गुरु रामदास जी मनुष्य को संबोधित करते हुए कहते हैं कि गुरु की शरण में जाकर ही जीवन की ठोंकरे खत्म होंगी तभी परमात्मा तुम्हारे सभी गुनाहों को माफ करके अपना बना लेगा। गुरु जी ने मारू राग मे रचित सोलहों के माध्यम से परमात्मा के यश का गायन करने के साथ-साथ नम्रता तथा सहनशीलता वाले स्वभाव को भी उभारा है-

"किस ही जोरु अहंकार बोलण का। किसी ही जोरु दीबान माहआ का।

मैं हरि बिन टेक धर अवर न काई तू करते राखु मैं निभाणी हे।

निमाणे माण करहि तुधु भावै। होर केती झखि झखि आवै जावै।

[196] वही, पृष्ठः 1069.

जिन का पखु करहि तू सुआमी तिन की ऊपरी गल तुधु आणी हे।''[197]

यहाँ पर अगर किसी निर्बल की बात की गई है तो उसकी रक्षा करने वाला भी प्रभु को ही कहा गया है। इस तरह चाहे किसी की रक्षा का सवाल हो या परमात्मा की सर्वगुण सम्पन्नता का प्रशंसा के सोहिले तो परमात्मा के लिए ही गाए गए है।

''हरि अगम अगोचरू सदा अविनासी। सरबे रवि रहिआ घट वासी।

तिसु बिनु अवरु न कोई दाता हरि तिसहि सरेवहु प्राणी हे।

जा कउ राखै हरि राखणहारा। ता कउ कोइ न साकसि मारा।

सो ऐसा हरि सेवहु संतहु जा की ऊतम बाणी हे।''[198]

गुरु रामदास जी की वाणी राग बद्ध भी है तथा लोक काव्य रूपों से सजी हुई भी है। मारू सोलहे लोक-काव्य के पक्ष से सोलहे तथा सोहिला से संबंधित हैं और राग पक्ष से मारू राग से संबंधित हैं। गुरु जी ने इन सोलह पदों के समुच्य में ईश्वर की प्रशंसा के सोहिले गाए हैं।वह ईश्वर अनशवर है तथा हर एक कण में वास करने वाला है उसके बिना दान देने वाला और कोई नहीं है तथा ऐसे प्रभु की सिफत-सलाह ही उन्होंने मारू सोलहे में की है।

इस तरह गुरु रामदास जी की वाणी में सम्प्रेषण शक्ति अधिक है और महत्वपूर्ण भी है क्योंकि उन्होंने अलौकिक उपदेश देने के लिए उसमें लोक तत्वों तथा लोक प्रचलित काव्य रूपों का समावेश किया। लोक-काव्य रूपों की सरलता, सुगमता के

[197] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी चौथी, मारू सोल्हे, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः1071.

[198] वही,पृष्ठः1069.

कारण ही वह अधिक ग्राहय होता है और गुरु जी ने वाणी को जन-जन ग्राहय बनाने के लिए भक्ति का उन्मेष जगाने के लिए लोक प्रिय काव्य रूपों का सहारा लिया। इसलिए उन्होंने मनुष्य मन के युद्ध को उभारने के लिए लोक वारां का आश्रय लिया। उन्होंने आध्यात्मिक वारां का विषय लोक वारां की तरह एक की हार तथा दूसरे की जीत के साथ युद्ध का अंत होने से संबंधित नहीं रखा है ब्लकि मनमुख व्यक्ति के हारने तथा गुरुमुख के जीतने का वर्णन कर साथ ही मनमुख को भी गुरुमुख बनने की प्रेरणा दी है और इसके लिए पथ भी प्रदर्शित किया है। इसी गुरुमुख, मनमुख की जीत हार का वर्णन तथा परमात्मा की प्राप्ति के बारे में विस्तार से लिखा गया है। यह भी माना जा सकता है कि एक ही विचार को बार-बार दुहराया गया है इसका कारण सभी वारां का विषय तथा विचार एक होना है ।इनमें सुचेत रूप से लोक पक्ष की बात की गई है। इन आध्यात्मिक वारों के माध्यम से समाजिक संकट,मनुष्य की सही स्थिति, समाज के यथार्थ की झलक प्रस्तुत होती है।गुरु रामदास जी द्वारा रचित वारां में परमात्मा नायक भी है तथा लोक के विश्वास की नींव भी है। परमातमा के लौकिक धरातल पर विश्वास को ही आध्यात्मिक वारां का विषय बनाया गया है।गुरु जी ने मारू राग में रचित सोलहा में प्रभु का गुण-गायन तथा यश का प्रतिपादन इसी विचार तथा विषय को प्रतिष्ठित करने के लिए किया है। जहाँ एक ओर गुरु रामदास जी ने सोलहे के माध्यम से ईश्वर के विशाल अस्तित्व की अलौकिक सत्ता का वर्णन किया है। वहाँ दूसरी ओर लोक वारां का आश्रय लेकर समाज में फैली विसंगतियों, मनुष्य मन के विकारों को लौकिक धरातल पर प्रकट किया है। गुरु जी ने मनमुख व्यक्ति के विकारों का कारण समाजिक □ांचे को माना है तथा इसे बदलने के लिए जो उपदेश उन्होंने वाणी के माध्यम से दिया है उसे प्रभावपूर्ण तथा लोकप्रिय बनाने के लिए

लोक-भावों के साथ एकस्वर किया। गुरु जी द्वारा रचित वारां आध्यात्मिक रूप से वाणी से संबंधित होने के साथ-साथ समाजिक धरातल से भी जुडी हुई हैं। इसका संदेश देने के लिए ही उन्होंने लोक-काव्य रूपों जैसे विशाल साहित्य के माध्यम को अपनाकर वाणी का ईलाही बनाने के साथ-साथ कलात्मक तथा प्रेरणात्मक भी बनाया। गुरु जी ने अपने निजी भावों को मूर्त रूप देने के लिए जिन लोक काव्य रूपों का आश्रय लिया है उसमें वह पूर्ण सफल हुए हैं।

सप्तम अध्याय

7.0 गुरु रामदास जी की वाणी का शिल्प

अभिव्यक्ति मानव की मूल आवश्यकता है तथा उसमें मानव की मानसिक झंकृतियों का भाव निहित रहता है जिसे प्रकट करने के लिए वह व्याकुत रहता है। मानव अपने मन के भावों को प्रकट करके ही दूसरों को अपने अनुभव और विचारों में सहभागी बनाता है।इसी प्रकार साहित्यकार के मन में उद्भूत संवेदना, विचार, भाव मूर्त होकर ही कलाकृति का रूप धारण करते हैं। मन के विचारों तथा भावों को अभिव्यक्ति करने की व्याकुलता ने ही रंग, रेखा, शब्दों को जन्म दिया। भावनाओं और विचारों को प्रकाशित करने के लिए रचनाकार व्याकुल रहता है इसलिए वह अनुभवों के संगठित रूप को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। "साहित्यकार साहित्य में कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए जिन विधियों एवं प्रक्रियाओं को साधन स्वरूप स्वीकारता है वही विधियां, तरीके, पद्धतियाँ शिल्प विधान कहलाती है।"[199] शिल्प के अभाव में कोई भी रचनाकार अपनी अनुभूतियों को कलात्मक एवं सफल अभिव्यक्ति नहीं दे सकता। इस तरह रचनाकार रचना प्रक्रिया के अंतर्गत भावनाओं को नया रूप देने के लिए अभिव्यक्ति शिल्प का सहारा लेता है। शिल्प अभिव्यक्ति की रूपरेखा रचनाकार के मस्तिष्क में स्पष्ट हो होती है और वह उसे इच्छानुसार □ालकर प्रस्तुत करता है। "जब भाव और अनुभूति की प्रेरणा मनुष्य के मन और मस्तिष्क में घनीभूत होती है तब वह उसकी अभिव्यक्ति में संलग्न होता है। अभिव्यक्ति के लिए वह कभी वाणी का और कभी विशिष्ट रूप का सहारा लेता है लेकिन वह अपने भाव प्रकाशन में अधिक से अधिक रोचकता, आर्कषण और प्रभावात्मकता के लिए अनेक रूप विधानों की योजना करता है।"[200] कलाकार के भावों की बाह्य अभिव्यक्ति शिल्प के माध्यम से

[199] लक्ष्मीनारायण लाल, हिंदी कहानियों में शिल्प विधि का विकास, (प्रयागः साहित्य भवन लिमिटेड, प्र.सं 1953), पृष्ठः1.

[200] लक्ष्मीनारायण लाल, हिंदी कहानियों में शिल्प विधि का विकास, (प्रयागः साहित्य भवन लिमिटेड, प्र.सं

ही होती है। कलाकार भावों को शब्द, रंग, अर्थ, स्वर आदि के द्वारा प्रभावात्मक रूप देकर शिल्प के संगठित क्रम के माध्यम से संप्रेषणीय बनाता है।

शिल्प की अवधारणाः

शिल्प अनुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम है। भाव और रूप के कारण रचना शिल्प के माध्यम से अस्तित्व ग्रहण करती है। शिल्प के द्वारा अनुभूति को रचना के माध्यम से कहानी, कविता, नाटक के विशेष रूप में अभिव्यक्त किया जाता है क्योंकि अनुभूति अमूर्त होती है तथा विभिन्न रचना रूपों के द्वारा प्रकट होकर शिल्प के निश्चित क्रम के कारण ही उसे नया रूप मिलता है। "शिल्प से तात्पर्य रचना के अभिव्यकित कौशल से है।"[201] अभिव्यक्ति कुशलता ही अनुभूति को अमूर्त से मूर्त, निराकार से साकार बनाने का महत्वपूर्ण साधन है। "शिल्प का संबंध उस परिणति से है जो कृति को सभी रचना विधायक तत्वों के सहयोग से कृतिकार की प्रतिभा द्वारा प्राप्त होता है।"[202] इस प्रकार अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए किया गया प्रयास शिल्प को जन्म देता है। रचनाकार अपने भावों को अधिक प्रभावी, आकर्षित और रोचकता पूर्ण बनाने के लिए अभिव्यक्ति के नये नये संयोग स्थापित करता है। साहित्यकार की भावना, विचार, प्रक्रिया में जिस प्रकार परिष्कार होता है उसी प्रकार अभिव्यक्ति का ढंग भी परिवर्तित होता है और साथ ही शिल्प के स्वरूप में भी परिवर्तन आता है। साहित्यकार मन के भावों को साहित्य की केवल एक विधा के द्वारा प्रकट नहीं करता ब्लकि वह भावों और विचारों में परिवर्तन आने के कारण अभिव्यक्ति

1953), पृष्ठः 1.

[201] मानविकी पारिभाषिक कोशः साहित्य खंड, नगेन्द्र (सं), (दिल्लीः राजकमल प्रकाशन), पृष्ठः 61.

[202] त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग ग्रंथ, (कानपुरः अभय प्रकाशन, 1990), पृष्ठः 240.

की विधा को भी परिवर्तित कर लेता है। रचनाकार की अभिव्यक्ति में कुशलता ही भावों को शिल्प के माध्यम से सही रूप देने में सक्षम होती है। शिल्प के सहारे कृतिकार अपने अंतर्जगत को रूपाकार कर प्रत्यक्ष करता है। शिल्प के अभाव में कवि की आंतरिक संवेदना बाह्य रूप ग्रहण करने में असमर्थ होती है। "शिल्प कथाकार के अनुभवों को प्रक्षेपित करने का उपयुक्तम आधार है। शिल्प ही केवल वह साधन है जिसके द्वारा वह अपने विषय एवं अभिप्रेत को प्रस्तुत करने का माध्यम बनाता है।"[203] इस तरह शिल्प अनुभूति की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का वह विशिष्ट प्रकटीकरण है जिसकी परिधि में रचनाकार के भाव अभिव्यक्ति के विशेष रूप, रंग में प्रकट होते हैं। कृतिकार की अभिव्यक्ति सामान्य प्रकटीकरण के क्षेत्र से हटकर विशिष्ट शैली, शिल्प के द्वारा रूप धारण करके वक्ता के भावों के आदान प्रदान के साथ उसमें निहित उद्देश्य को भी सम्प्रेषित करती है। वस्तुतः शिल्प रचनात्मक प्रक्रिया या सृजना विधि का ही दूसरा नाम है। काव्य कृति के रूप में अभिव्यक्त होने वाले विभिन्न भावों, विचारों को एक नियोजित रूप में, विशिष्ट क्रम में प्रस्तुत करने की विधि का ही नाम शिल्प है।

काव्य शिल्पः

काव्यशास्त्रियों ने राग, बुद्धि, कल्पना और शैली को काव्य निर्मित करने वाले तत्व स्वीकार किया है। राग की अतिशयता मानव को संवेदनशील बनाती है वह जीवन जगत् के विविध पात्रों, वस्तुओं, स्थितियों दृश्यों आदि में निहित सूक्ष्म सत्यों

[203] प्रदीप शर्मा, हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान, (दिल्लीः राजकमल प्रकाशन,1970), पृष्ठः 20.

का साक्षात्कार करता है। फलस्वरूप उसमें अनेकानेक संवेग विचार आदि जन्म लेते हैं। इन प्रबल संवेगों, तीव्र भावानुभूतियों एवं विचारों को व्यवस्थित करने का कार्य बुद्धि करती है। बुद्धि से प्रेरित होकर चिंतन मनन करता हुआ कवि अपने राग तत्व को संगठित और सारणीबद्ध करता है। भावों और विचारों की अभिव्यक्ति में चारुता तभी आती है जब उसमें कल्पना का स्पर्श विद्यमान रहता है। भाव तथा विचार राग, बुद्धि कल्पना के माध्यम से सुसज्क्ति होने के उपरांत शैली के द्वारा रूप प्राप्त करते हैं। "काव्य-विधान काव्य का विज्ञान है। कविता करने की विधि से लेकर कविता संबंधी गुण दोषों का ज्ञान कवि के भीतर आ जाता है और उस ज्ञान का आत्मप्रकाश, अभिव्यंजन काव्य शिल्प है।"[204] इस प्रकार शिल्प का संबंध वस्तुतः साहित्य सृजन के द्वारा भावों को प्रकट करने से है। लेखक के मन में समाज तथा अपने परिवेश के प्रति विभिन्न अनुभव समाहित होते हैं। इनको प्रकट करने के लिए उसके मन में भाव उद्वेलित होते हैं। जब कृतिकार समाहित अनुभवों को जिस विशेष क्रम, प्रक्रिया, पद्धति के द्वारा प्रस्तुत करता है तो वह विशेष क्रम, पद्धति ही शिल्प कहलाती है। गुरु रामदास जी की वाणी में शिल्प के संघटित रूपों की उदात्तता के साथ गुरु जी के भावों की उदात्तता को सुयोग्यता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस तरह अभिव्यक्ति कौशल के अधीन गुरु रामदास जी की वाणी में वर्णित भावों का शिल्प के विभिन्न तत्वों के आधार पर अवलोकन प्रस्तुत है-

[204] मोहन अवस्थी, आधुनिक हिंदी-काव्य-शिल्प, (प्रयागः हिंदी परिषद प्रकाशन, प्र. सं. 1962), पृष्ठः5.

भाषाः

अभिव्यक्ति की प्राणशक्ति का नाम भाषा है। मनुष्य विचारशील एवं संवेदनशील प्राणी है। वह समाज के बीच रहते हुए एक साथ दो कार्य करता है अनुभवों का भावन तथा उन भावों की अभिव्यक्ति। जब अनुभूतियाँ एकत्र हो जाती हैं तब वह उनकी अभिव्यक्ति के लिए माध्यम तलाशता है यह माध्यम भाषा के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। "भाषा सृजनात्मक तथा कलात्मक संवेदनाओं का वह विशिष्ट प्रकटीकरण है जिसकी परिधि में भाव प्रकाशन की समस्त सीमाएँ आ जाती हैं।"[205] भाषा के वाहन पर सवार होकर एक व्यक्ति की भावनाएं दूसरे व्यक्ति तक शीघ्र पहुँच जाती हैं। "भाषा शब्द संस्कृत की भाष् धातु से बना है जिसका अर्थ है बोलना या कहना अर्थात भाषा वह साधन है जिसे बोला जाए। जिसके माध्यम से हम भावों या विचारों को व्यक्त करते हैं। जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय या सहयोग करते हैं।"[206] भाषा मानव द्वारा किये जाने वाले सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को अभिव्यक्त कर दूसरों तक सम्प्रेषित करता है। "जिस साधन से हम अपने विचार या भाव दूसरों तक पहुँचा सकें वह भाषा है।"[207] यदि भाषा न हो तो मनुष्य कमज़ोर मूक और निष्क्रिय व्यक्ति बन कर रह जाये। अगर भाषा की अभिव्यक्ति प्रभावशाली होगी तो तभी उसके द्वारा अभिव्यक्त होने वाले भाव भी सुंदर और प्रभावशाली होंगे।

---

[205] राजा बुद्धिराजा,देव के काव्य में अभिव्यक्ति-विधान,(दिल्ली: तेज प्रकाशन, अंसारी रोड, 1975), पृष्ठः 185.

[206] उमेशचन्द्र शुक्ल (डॉ.), हिन्दी व्याकरणः रस-छंद-अलंकार सहित, (नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, प्र.सं 2000), पृष्ठः 7.

[207] भोलानाथ तिवारी (डॉ.), भाषा विज्ञान, (इलाहाबादः किताब महल होलसेल डिविजन प्रा. लि., 1994), पृष्ठः2.

गुरु रामदास जी की वाणी में भाषा का प्रयोग तदयुगीन समाज के अनुकूल हुआ है। उनकी भाषा किसी वर्ग विशेष से प्रतिबद्ध नहीं थी। सहज दृष्टि से उन्होंने सहज भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने अपनी क्षेत्रीय भाषा के साथ-साथ अन्य भाषाओं को अपनाकर सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम बन कर आत्मीयता के भाव प्रकट किये हैं। उन्होंने मिश्रित पद रचना की उपेक्षा संवाद एवं सम्बोधन की सरल भाषा का प्रयोग किया है। "गुरु अंगद ,गुरु अमरदास , गुरु रामदास, गुरु अर्जुन तथा भाई गुरदास आदि सब की मातृ-भाषा चाहे माझी थी पर फिर भी इनकी पूरी वाणी में लहंदी की अनेक विशेषताएं मौजूद हैं।"[208] गुरु रामदास जी की इलाही रचना में लंहदी के भी अंश मिलते हैं।

"तू करता सचिआर मैंडा साई।

जो तऊ भावै सोई थीसी॥"[209]

"मूं पिरीआ सऊ नेहु क्यों सजण मिलिह प्यारआ।

हऊ □ेंदी तिन सजण सचि सवारआ।

सतिगुर मैंडा मितु है जे मिलै त इह मन वारिआ।

देंदा मूं पिर दसि हरि सजण सिरजनहारिआ॥"[210]

---

[208] हरकीरत सिंह, गुरु नानक देव जी की भाषा, खोज पत्रिका, (पटियालाः नवंबर, 1968), पृष्ठः 243.

[209] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग आसा, महला 4, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 365.

[210] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग आसा, महला 4, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 365.

गुरु रामदास जी की रचना में शुद्ध पंजाबी का प्रयोग अधिकतर मिलता है। आप की भाषा तदयुगीन लाहौर और अमृतसर की माझी कही जा सकती है। शुद्ध पंजाबी का सुरुचि पूर्ण प्रयोग आप की वाणी की महत्वपूर्ण विशेषता है।

"गुर सतिगूर का जो सिक्ख अखाए

सु भलके उठ हरि नाम ध्यावै॥

उदमु करे भलके परभाती इसनान करे अमृतसर नावै॥"[211]

गुरु रामदास जी ने ज्यादातर शुद्ध पंजाबी में ही रचना की है लेकिन फिर भी लहंदी तथा शुद्ध पंजाबी के अतिरिक्त वह हिंदी तथा ब्रजभाषा आदि के प्रभाव से नहीं बच सके। हिंदी का प्रयोग राग देवगंधारी में देखा जा सकता है।

"अब हम चली ठाकुर पहि हार॥

जब हम सरणि प्रभु की आई राख प्रभु भावै मारि॥

लोकन की चतुराई उपमा ते बैसंतरि जारि॥

कोई भला कहो भावै बुरा कहौ हम तनु दीऔ है □रि॥"[212]

राग देवगंधारी में ब्रज-भाषा का प्रभाव भी देखा जा सकता हैः

"मेरो सुंदर कहहु मिलै कितु गली॥

---

[211] वही, राग देवगंधारी, महला 4, पृष्ठः 305-306.

[212] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग देवगंधारी, महला 4, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 527-528.

हरि कै संत बजावहु मार्ग हम पीछै लागि चली॥

प्रिय के बचन सुखानै हीअरै इह चाल बनी है भली॥

लटुरी मधुरी ठाकुर भाई उह सुंदरि हरि □लि मिलि॥"[213]

गुरु रामदास जी की वाणी में लहंदी, शुद्ध पंजाबी भाषा और ब्रज भाषा का सरल तथा सहज रूप देखने को मिलता है। गुरु जी की सम्पूर्ण वाणी में भाषा का प्रतिबद्ध एवं सम्बोधित रूप मिलता है। उन्होंने अपने भावों को भाषा की सम्बोधन शैली के द्वारा सहजता तथा उदात्तता से मण्डित कर प्रस्तुत किया है।

तत्समः

जो शब्द ध्वनियों की सरलता के कारण आज तक अपने मूल एवं शुद्ध रूप में ही प्रयोग हो रहे हैं और सीधे रूप में किसी भाषा में शामिल हो जाते हैं। जिन्हें उनके शुद्ध रूप के साथ स्वीकार कर लिया जाता है। वह तत्सम शब्द कहलाते हैं।"भाषा में व्यवहृत होने वाला संस्कृत का वह शब्द जो अपने शुद्ध रूप में हो। संस्कृत का वह शब्द जिसका व्यवहार भाषा में उसके शुद्ध रूप में हो।"[214] गुरु रामदास जी की वाणी में तत्सम शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है जो पंजाबी भाषा में शुद्ध रूप में प्रयुक्त हुए हैं।उनका वर्णन इस प्रकार है-

अनाथ- (पृष्ठः 89), अनेक- (पृष्ठः 758), अंजुली-(पृष्ठः 171), अंडज-(पृष्ठः 835), सुगंध (पृष्ठः 834), संदेसरा-(पृष्ठः 302), हस-(पृष्ठः 173), कामिनी-(पृष्ठः 141), कुटंब-(पृष्ठः 310), आगम-(पृष्ठः 304), आरंभ-(पृष्ठः 773), चंदन-(पृष्ठः 834), दीन-(पृष्ठः 94), दिनसु-(पृष्ठः 41), काख-

[213] वही, राग आसा, महला 4, पृष्ठः 527.

[214] हिन्दी शब्दसागर, चतुर्थ भाग, श्यामसुंदर दास (सं), (काशीः नागरी प्रचारिणी सभा, 1974), पृष्ठः 2003.

(पृष्ठः 696), संकर-(पृष्ठः 553), अज्ञान-(पृष्ठः 573), अगोचर-(पृष्ठः 87), सुपारी-(पृष्ठः 726), नगरी -(पृष्ठः 851), प्रचंड-(पृष्ठः 774), नरपति-(पृष्ठः 731)

तद्भवः

संस्कृत भाषा के वह शब्द जिनका रूप परिवर्तित होकर विकृत हो गया है उन्हें तद्भव शब्द कहा जाता है।"संस्कृत से हिंदी में परिवर्तित अशुद्ध शब्दों को तद्भव कहा जाता है।''[215] गुरु जी की वाणी में तद्भव शब्दों का सफल एवं उत्कृष्ट रूप मिलता है-

उस्तुति-(पृष्ठः 89), उपाव-(पृष्ठः 561), अकरमा-(पृष्ठः 799), अकाथा-(पृष्ठः 696), अपक्ति'(पृष्ठः 304), सभतु-(पृष्ठः 41), समाहा-(पृष्ठः 606), साख-(पृष्ठः 997), साई-(पृष्ठः 365), आसा-(पृष्ठः 165), सरसुती-(पृष्ठः 1263), कटाख-(पृष्ठः 977), कपडु-(पृष्ठः 167), तिमर-(पृष्ठः 573), भसम-(पृष्ठः 835), जोती-(पृष्ठः1314)

अरबी शब्दावलीः

अरबी विश्व की प्राचीन भाषा मानी जाती है।अरबी भाषा मुसलमानों की भाषा है। "मुसलमानों की धार्मिक पुस्तक कुरान की भाषा अरबी है। मध्ययुग में संसार के विभिन्न भागों में अरब व्यापारियों का आना जाना था। इसी तरह अरबी भाषा की महत्ता बढ़ गई थी।''[216] गुरु रामदास जी ने गुरुवाणी में अरबी शब्दावली का प्रयोग किया है उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द सरल, सहज तथा लोक ज्ञान के अनुकूल ही हैं जो कि इस प्रकार है-

[215] उमेश चन्द्र शुक्ल (डॉ), हिन्दी व्याकरणः रस-छंद-अलंकार सहित, (नयी दिल्लीः वाणी प्रकाशन, प्र.सं 2000), पृष्ठः 70.

[216] पंजाबी विश्वकोश, जिल्द दूजी, दलीप सिंह (सं), (पटियालाः भाषा विभाग, पंजाब, 1986), पृष्ठः 69.

उमराव-(पृष्ठः 304), हाज़र-(पृष्ठः 304), कागद-(पृष्ठः 304), खसमाहु-(पृष्ठः 304), गुलाम-(पृष्ठः 304), गोला-(पृष्ठः 304), दीबाणु-(पृष्ठः 304), मसकीन-(पृष्ठः 304), नफरु-(पृष्ठः 304), खसमु-(पृष्ठः 304), रिजकु-(पृष्ठः 304)

फारसी शब्दावलीः

पारस देश के लोगों द्वारा फारसी बोली जाती है। "पारस देश की भाषा फारसी सात प्रकार की है-फारसी, पहलवी, दरी, हरवी, जाबुली, सकज़ी तथा सगदी।''[217] गुरु रामदास जी द्वारा फारसी शब्दावली का प्रयोग बहुत निपुणता के साथ किया गया है-

अरदासि (अरज़ दाशत)- (पृष्ठः 87), अंदेसा (अंदेशा)- (पृष्ठः 550), सवरा (शौहर)-(पृष्ठः 581), साबासि (शादबारा)- (पृष्ठः 42), तलकी (तलखी)- (पृष्ठः 591), बंदगी-(पृष्ठः 726), वरफ (बर्फ)- (पृष्ठः 758), गलतान-(पृष्ठः 977), सिकदार (सिकरदार)- (पृष्ठः 851), सूद-(पृष्ठः 166)

सिंधी शब्दावलीः

सिंध पाकिस्तान के दक्षिण, पूर्व में स्थित क्षेत्र है। इसका नाम सिंध सागर पर आधारित है। "सिंध उत्तर, पश्चिम की ओर दो क्षेत्रों पंजाब तथा बलोचिसतान और दक्षिण, पूर्व की ओर से भारत देश के बीच है।सिंध क्षेत्र की बोली सिंधी है जो प्राकृत में से निकली है।''[218] गुरु रामदास जी की वाणी में सिंधी शब्दावली का सुलझा हुआ रूप देखने को मिलता है-

---

[217] गुरशब्द रत्नाकर महानकोश, इन्साईक्लोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, काहन सिंह नाभा, (पटियालाः भाषा विभाग पंजाब, चतुर्थ सं 1981), पृष्ठः 815.

[218] पंजाबी विश्वकोश,जिल्द पांचवी, दलीप सिंह (सं) (पटियालाः भाषा विभाग,पंजाब, 1986), पृष्ठः 167-168.

अमल (नशा)- (पृष्ठः 976), सकारथ (सकयाथो)- (पृष्ठः 1247), करहला (करहो)- (पृष्ठः 234), कंधी (नदी का किनारा)- (पृष्ठः 996), गाल (बातचीत)- (पृष्ठः 977) चवणु (कथन)- (पृष्ठः 773), चंमु (चमड़ा)-(पृष्ठः 317), मैडा (मेरा)- (पृष्ठः 365), लधा (लभिआ)- (पृष्ठः 449)

गुरु रामदास जी को शब्दों का जादूगर कहा जा सकता है। गुरु जी का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि उन्होंने एक शब्द को विभिन्न रूपों में प्रयोग किया है। उदाहरण के तौर पर 'जप' शब्द को लिया जा सकता है।

"गुरमुखि नामु 'जपहु' हरि लाहा"[219]

"मन हरि हरि 'जपनु' करे"[220]

"मेरे मन नामु 'जपत' तरिआ" [221]

"मनि 'जपीए' हरि जपमाला"[222]

"तिनि हरि 'जपिउ' जपानी"[223]

"मन 'जापहु' राम गुपाल"[224]

[219] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी दूजी, राग जैतसरी, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 699.

[220] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी पहली, सिरी राग, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005),पृष्ठः 82.

[221] वही, पोथी तीजी, मारू राग, महला 4, पृष्ठः 995.

[222] वही, पोथी तीजी, राग माली गउड़ा, महला 4, पृष्ठः 985.

[223] वही, पोथी दूजी, राग धनासरी, महला 4,पृष्ठः 667.

[224] वही, पोथी चौथी, राग कानड़ा, महला 4,पृष्ठः 1296.

भाषा तथा शब्दावली के सम्पूर्ण विश्लेषण के उपरांत हम यह कह सकते हैं कि गुरु रामदास जी ने उचित रूप में अपने भावों तथा लोक धुन के अनुरूप देशी तथा विदेशी शब्दों को अपनी रचना में स्थान दिया। उन्होंने समय के अनुरूप शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा तथा तराशा भी है इन्हीं गुणों के ही कारण उनकी वाणी कलात्मक, प्रेरणादायक गुणों से भरपूर है। पंजाबी भाषा को गुरु रामदास जी ने अपनी वाणी के ज़रिए एक अद्वितीय तोहफा दिया है जिसमें सहजता,सरलता के गुण पाए जाते हैं।

अलंकारः

काव्य-शिल्प के अंतर्गत अलंकारों का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि शिल्प का संबंध रचना सौन्दर्य से है। जिस प्रकार अंग प्रसाधन के लिए विविध आभूषणों का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार भावों की सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए, वाणी को विभूषित करने के लिए अनेक अलंकार होते हैं। "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नहीं हैं वह भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। वह वाणी के आचार-विचार, रीति-नीति हैं, पृथक स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।"[225] अलंकार का उतना प्रयोग ही शोभायमान होता है जो रचना पर ज्यादा बोझ न डाले बल्कि जो रचयिता के मन की बात को हमारे समक्ष एक तस्वीर के रूप में पेश करे। अलंकारों के तीन भेद हैं

1.शब्द अलंकार 2. अर्थ अलंकार 3.शब्दार्थ अलंकार

[225] सुमित्रानंदन पंत, पल्लव की भूमिका, पल्लव, (दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 1966), पृष्ठः22.

शब्द अलंकारः

जिस उक्ति में चमत्कार का आधार केवल शब्द हो वहाँ शब्दालंकार होता है। जिन शब्दों द्वारा चमत्कार उत्पन्न होता है वही अलंकार के मूल कारण समझे जाते हैं। "जिन अलंकारों के भीतर कोई शब्द विशेष ही चमत्कार का कारण होता है वह शब्द अलंकार कहलाते हैं।"[226] शब्द अलंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, विप्सा इत्यादि अलंकार आते हैं। गुरु रामदास जी की वाणी में अनुप्रास तथा विप्सा अलंकारों की मात्रा ज्यादा है। अनुप्रास के आगे पांच भेद हैं। जिनका प्रयोग गुरु रामदास जी की वाणी में मिलता है-

छेक अनुप्रासः जिस अलंकार के पदों में वर्णों का प्रयोग एक बार होता है, "जहाँ एक या अनेक वर्णों की आवृति केवल एक बार होती है, वहाँ छेकानुप्रास होता है।"[227] इसका रूप निम्नलिखित प्रत्यक्ष देखा जा सकता है-

"गुण गावां गुण विपरा गुण बोली मेरी माएं।"[228]

"आपे मारे आपे छोडै आपे बखसे करै दया।"[229]

"नानक हरि जन हरि एके होये हरि जपि हरि सेती रलिआ।"[230]

---

[226] ओम प्रकाश (डॉ), अलंकार विधान, (चंडीगढ़ः पंजाब स्टेट यूनिवर्सिटी, टेक्सट बुक बोर्ड, प्र. सं 1979), पृष्ठः 47.

[227] ओम प्रकाश (डॉ), अलंकार विधान, (चंडीगढ़ः पंजाब स्टेट यूनिवर्सिटी, टेक्सट बुक बोर्ड, प्र. सं 1979), पृष्ठः 50.

[228] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग आसा, महला 4, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 553.

[229] वही, पोथी दूजी, राग आसा, महला 4, पृष्ठः 553.

[230] वही, पोथी दूजी, राग आसा, महला 4, पृष्ठः 562.

गुरु रामदास जी की वाणी में हरि आपे, गुण शब्दों की आवृति छेकानुप्रास अलंकार का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती है।

वृति अनुप्रासः जहाँ एक व्यंजन का प्रयोग कई बार हो "जहाँ पर एक ही वर्ण की आवृति दो या दो से अधिक बार हो रंग वहाँ वृति अनुप्रास होता है।''[231] गुरु रामदास जी की वाणी में इसका उदाहरण स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है–

"हरि कै रंगि रता मनु गावै

रसि रसाल रसि शब्द खईयां।''[232]

"सभि गावहु गुण गोविंद हरे गोविंद, हरे गोविंद हरे गुण गावत गुणी समउला।''[233]

"तुम पवित्र पावन पुरख प्रभ स्वामी।'' [234]

कानड़े की वार में 'गुण गोबिंद', हरे गोबिंद' आदि शब्दों का बार बार प्रयोग वृति अनुप्रास की झलक प्रस्तुत करने के साथ साथ गोविंद हरि अर्थात परमात्मा के नाम स्मरण के प्रति गुरु रामदास जी की अगाध आस्था को भी ब्यान करता है।

विप्सा अलंकारः जहाँ पर घृणा, खुशी, गमी के भावों को प्रभावशाली रूप में व्यक्त करने के लिए किसी शब्द को बार-बार प्रयोग किया जाता है। "जब कवि किसी कविता में

---

[231] ओम प्रकाश (डॉ), अलंकार विधान, (चंडीगढ़ः पंजाब स्टेट यूनिवर्सिटी, टेक्सट बुक बोर्ड, प्र. सं 1979), पृष्ठः 51.

[232] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी तीजी,राग बिलावल, महला 4, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 835.

[233] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी चौथी, राग कानड़ा, कानड़े की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः1315.

[234] वही, पोथी दूजी, राग देवगंधारी, महला 4, पृष्ठः528.

किसी भाव को तीव्र रूप में प्रस्तुत करने के लिए किसी शब्द या शब्द समूह का बार-बार प्रयोग करे वहाँ विप्सा अलंकार होता है।''[235] गुरु रामदास जी की रचना में विप्सा अलंकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

"जिन क्यों प्रीति नाही हरि सेती ते साकत मूड़ कर काणे॥

तिन क्यों जनम मरण अति भारी विचि विसटा मरि मरि पाचे॥''[236]

राग गउड़ी पूरबी के उपरोक्त शब्द में परमात्मा प्रेम से विहीन मनुष्य को कमजोर माना गया है जो कि जन्म मरण के दुःख पूर्ण जाल में फंसा रहता है और विकारों में उलझ कर दुःखी होता है। इस प्रकार दुख के भावों को प्रकट करने के लिए गुरु जी ने विप्सा अलंकार का प्रयोग प्रभावशाली रूप में किया है।

अर्थालंकारः

अर्थालंकार काव्य के अर्थों पर निर्भर करता है।"जिन अलंकारों का आधार अर्थ होता है उनको अर्थ अलंकार कहा जाता है। अर्थ अलंकार में अगर एक शब्द बदलकर उस के स्थान पर उसी अर्थ वाला दूसरा शब्द प्रयोग कर लिया जाए तो भी अर्थ अलंकार ही रहता है।''[237] गुरु रामदास जी ने अपने भावों की अभिव्यक्ति वाणी के माध्यम से की है तथा गुरु जी की वाणी में वर्णित उपमा तथा रूपक अलंकार आरोपित न होकर उनके काव्य शिल्प का अभिन्न अंग बनकर प्रस्तुत होते हैं।

---

[235] गुरदेव सिंह, काव्य-अलंकार, (पटियालाः पवित्र प्रमाणिक प्रकाशन, 1995), पृष्ठः27.

[236] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी पहली, राग गउडी पूरबी, महला 4, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः169.

[237] गुरदेव सिंह, काव्य-अलंकार, (पटियालाः पवित्र प्रमाणिक प्रकाशन, 1995), पृष्ठः16.

उपमा अलंकारः

इसका प्रयोग विषय के रूप और अकार को स्पष्ट करने के लिए होता है। जहाँ एक वस्तु की दूसरी वस्तु के साथ किसी गुण, धर्म अथवा स्वरूप के कारण समानता दिखायी जाती है। "जब कभी उपमेय और उपमान की तुलना या समानता को प्रस्तुत करें तो तब उपमा अलंकार का जन्म होता है।"[238] गुरु रामदास जी की वाणी में उपमा अलंकार के उदाहरण इस प्रकार हैं-

"जैसे हंसु सरवर बिनु रहि न सकै

तैसे हरि जन क्यों रहै सेवा बिनु॥"[239]

"ज्यों मछली बिनु नीरै बिनसै

त्यों नामै बिनु मर जाई॥"[240]

"जनु नानक नाम लये ता जीवै

ज्यों चातक जलि पीये तृपतासी॥"[241]

वाणी में हंस सरोवर का वर्णन भक्त तथा सेवा में समानता को प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार मछली और जल का वर्णन भी प्रभु नाम की महत्ता को प्रतिपादित करता है।

---

[238] वही, पृष्ठः29.

[239] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग आसा, महला 4, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 369.

[240] वही,पोथी दूजी, राग सोरठि, महला 4, पृष्ठः 607.

[241] वही, पोथी चौथी, राग सारंग, महला 4 पृष्ठः 1202.

मालोपमा अलंकारः

यह अलंकार वहां होता है जहाँ एक उपमेय को कई उपमानों के साथ पेश किया जाता है। "जब कवि द्वारा एक ही उपमेय के बहुत सारे उपमान प्रयुक्त किए जाए तो मालोपमा अलंकार की सृजना हो जाती है।"[242] गुरु रामदास जी ने वाणी में मालोपमा अलंकार को सुंदरता से प्रयुक्त किया है-

"तूं गुरु पिता तूं है गुरु माता

तू गुरु बंधप मेरा सखा सखाय।"[243]

"तू ठाकुर तू साहिबो तू है मेरा मीरा।

तुधु भावै तेरी बंदगी तू गुणी गहीरा।"[244]

गुरु रामदास जी द्वारा गुरु को माता, पिता, सखा, बंधू माना गया है।वह परमात्मा को ठाकुर तथा साहिब मानते हैं। गुरु जी द्वारा परमात्मा के लिए प्रकट किये गए निश्चित भावों में मालोपमा अलंकार की झलक देखने को मिलती है।

रूपक अलंकारः

रूपक अलंकार का मूल आधार एकात्मकता है।"जब काव्य में उपमेय तथा उपमान एक दूसरे से अभेद हो,दोनों में एकस्वरता हो तो रूपक अलंकार होता है।"[245]

---

[242] गुरदेव सिंह, काव्य-अलंकार, (पटियालाः पवित्र प्रमाणिक प्रकाशन, 1995), पृष्ठः31.

[243] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी चौथी, राग सारंग, महला 4, (श्री अमृतसरः सक्तर,शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 1202.

[244] वही, पोथी दूजी, राग तिलंग, महला 4, पृष्ठः 726.

[245] गुरदेव सिंह,काव्य अलंकार, (पटियाला,पवित्र प्रमाणिक प्रकाशन, 1981), पृष्ठः 31.

गुरु रामदास जी की काव्य कला का सूक्ष्म रूप भी स्थूल अस्तित्व का धारणी है इसलिए उनके भाव सरलता से अपना अर्थ प्रकट करते दिखाई देते हैं-

"तूं दरीआउ सभ तुझ ही माहि।"[246]

"कलयुग राम नामु बोहिथा गुरुमुख पारि लंघाई।"[247]

"सतिगुर सागर गुण नाम का"[248]

"सतिगुर अमृत बिरख है अमृत रसि फलया।"[249]

"सचु साहु हमारा तूं धणी सभ जगत वणजरा राम राजे।"[250]

इस प्रकार गुरु रामदास जी ने परमात्मा की विशालता का वर्णन करने के लिए दरिया, सागर, अमृत, वृक्ष आदि रूपकों का प्रयोग किया गया है। वणजारा शब्द जगत में आई जिज्ञासु जीवात्मा का रूपक है।

दृष्टांत अलंकारः

इस अलंकार में किसी बात तथा विचार को दृष्टांत के माध्यम से स्पष्ट किया जाता है। "दृष्टांत शब्द का प्रचलित अर्थ है किसी बात का प्रमाण अर्थात् निश्चित प्रमाण। इस अलंकार में पहले बात कह कर फिर दूसरी बात उसके उदाहरण के रूप में

[246] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी,पोथी दूजी, राग आसा,(श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 365.

[247] वही, पोथी दूजी, राग आसा, छंत, महला 4, पृष्ठः 443.

[248] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी तीजी, राग सूही, असटपदीआ, महला 4 (श्री अमृतसरः सकत्तर,शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005),पृष्ठः 758.

[249] वही, पोथी चौथी, राग सारंग, सारंग की वार, महला 4, पृष्ठः 1245.

[250] वही, पोथी दूजी, राग आसा, छंत महला 4,पृष्ठः 449.

कही जाती है।''[251] गुरु रामदास जी की वाणी में दृष्टांत अलंकार की निश्चिल झलक देखने को मिलती है-

"ज्यों चातिक जल बिन बिललावै

बिनु जल प्यास न जाई।''[252]

"ज्यों जल दुध भिन्न भिन्न काऊ चुनि हंसुल।

त्यों देही ते चुणि काऊ साधू हउमै ताति।''[253]

गुरु जी ने हंस के द्वारा पानी तथा दूध को अलग अलग करने का दृष्टांत देकर मनुष्य को साधुजनों की संगति करने को कहा है क्योंकि साधुजनों की संगति में मनुष्य मन से अहमं का निवारण संभव है। गुरु जी ने जीवात्मा की परमात्मा प्रति तड़प को पपीहा तथा जल के दृष्टांत के माध्यम से प्रकट किया है।

शब्दार्थ अलंकारः

जब काव्य पदों में शब्द तथा अर्थ अलंकार एक साथ प्रकट होते है तो उसे शब्दार्थ अलंकार कहा जाता है। शब्दार्थ अलंकार के तीन भेदों में गुरु रामदास जी की रचना प्राप्त होती है। जो कि निम्नलिखित है-

[251]ओम प्रकाश शर्मा (डॉ), अलंकार विधान, (चंडीगढ़ः पंजाब स्टेट यूनिवर्सिटी टेक्स्ट बुक बोर्ड, प्र.सं 1979), पृष्ठः 97.

[252] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी दूजी, राग सोरठि महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर,शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 607.

[253] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी चौथी, राग मलार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर,शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 1264.

संसृष्टि अलंकारः

जब दो या दो से अधिक अलंकार आपस में पूर्ण रूप में मिश्रित होने के बावजूद भी अपना अलग अलग अस्तित्व रखते हों तो वह विभिन्न अर्थों से मिश्रित अलंकार संसृष्टि अलंकार कहलाएगा। "जब दो या दो से अधिक अलंकार मिले होने के बावजूद भी उनका अलग अस्तित्व देखा जा सके तो संसृष्टि अलंकार होता है।"[254] यहाँ पर शब्द तथा अर्थ अलंकार एक साथ आ रहे हैं:

"गुर गोविंद गोविंद गुरु है नानक भेद न भाई।"[255]

"हरि हरि बूंद भए हरि स्वामी हम चातक बिलल बिललाती।"[256]

गुरु रामदास जी ने गुरु को परमात्मा तथा परमात्मा को गुरु कहा है। यहाँ पर शब्द तथा अर्थ अलंकार एक साथ आ रहे हैं गुरु जी ने परमात्मा और गुरु में कोई भेद नहीं माना है।

संकर अलंकारः

जब दो या दो से अधिक अलंकार आपस में इस प्रकार घुलमिल गए हों कि दोनों के स्वत्रंत अस्तित्व का आभास न हो वहाँ संकर अलंकार होता है।

"जिन हरि हरि हरि रसु नामु न पाया ते भागहीन जमपासि।"[257]

"आपे पारस आपि धातु है आपि कीतोनु कंचन

---

[254] गुरदेव सिंह,काव्य अलंकार, (पटियाला,पवित्र प्रमाणिक प्रकाशन, 1981), पृष्ठः 53.

[255] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग आसा, छंत, महला 4, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005) , पृष्ठः 442.

[256] वही, पोथी दूजी, राग धनासरी, महला 4, पृष्ठः 668.

[257] वही, पोथी दूजी, राग गूजरी, चउपदे, महला 4, पृष्ठः 492.

आपे ठाकुर सेवक आपे आपि ही पाप खंडनु''[258]

गुरु जी ने परमात्मा को ही पारस कहा है जो स्वयं कंचन मणियों को चुन लेता है। गुरु जी ने परमात्मा को ठाकुर और सेवक भी माना है जो पापों को भी माफ कर देता है। इस प्रकार उन्होंने परमात्मा को सर्वव्यापक कर्म करने वाला माना है। उनके द्वारा परमात्मा संबंधी प्रस्तुत भावों में संभावना तथा विप्सा अलंकार एक साथ आने पर संकर अलंकार ज्ञात होता है।

अलंकारों के सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट है कि गुरु रामदास जी ने अपनी वाणी में अलंकारों का उचित प्रयोग करके, अपने भावों का कलात्मक रूप को वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। कहीं पर भी गुरु जी द्वारा प्रयुक्त अलंकार विषय के मूल सौन्दर्य को आच्छादित करते प्रतीत नहीं होते। क्योंकि गुरु जी ने जनमानस तथा अपने भावों के अनुरूप ही अलंकारों का प्रयोग किया है।

बिम्बः

काव्य भावों की अभिव्यक्ति का साधन है। काव्य में भावों को प्रभावात्मक रूप में प्रकट करने के लिए विभिन्न प्रयोग किये जाते हैं। जिनमें बिम्ब का महत्वपूर्ण स्थान है। वह भावों, विचारों को कलात्मक ंग से संवारता है। "काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।''[259] बिम्ब का अर्थ है भावचित्र। भावचित्र से अभिप्राय ऐसे चित्र से है जो हमारे मन में उस समय उत्पन्न होता है जब किसी सन्दर्भ के सहारे हमारे मन में संवेदना के भाव गहरे हो जाते हैं और उसी संवेदना का चित्र बिम्ब कहलाता है। "बिम्ब

[258] वही, पोथी दूजी, राग बिहागड़ा, महला 4,पृष्ठः 552.

[259] नगेन्द्र, काव्य-बिम्ब, (दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र.सं 1967), पृष्ठः 9.

वह शब्दचित्र हैं जो कल्पना के द्वारा इंद्रियों की अनुभूतियों के आधार पर निर्मित होता है।''[260] स्वरूप माध्यम तथा अभिव्यक्ति के आधार पर बिम्बों का वर्गीकरण किया जा सकता है। यह पाँच प्रकार के हैं-

दृश्य बिम्ब:

दृश्य या चाक्षुष बिम्ब आकारों पर आधारित होते हैं। दृश्य बिम्ब का आधार रूप होता है। काव्य में जब संवेदना,भाव शब्द चित्रों के माध्यम से प्रकट होते हैं तो वह दृश्य बिम्ब कहलाते हैं।"प्रत्येक ज्ञानेन्द्रि का अनुभव एक प्रकार का बिम्ब उत्पन्न करता है।पर दृश्य का योगदान सबसे अधिक रहता है। बिम्ब का विधान मूर्त ही होता है क्योंकि इंद्रियों के अनुभव में दृश्य अनुभव ही अधिक मूर्त होता है।''[261] इस प्रकार काव्य सृजन के समय कवि अपने भाव व्यक्त करने के लिए, पाठकों को अपने भावों का अनुभावन करवाने के लिए जिन भावमय चित्रों का प्रयोग करता है वह दृश्य बिम्ब कहलाते हैं।

स्पृश्य बिम्ब:

इसमें स्पृश्यी संवेदनाओं के समन्वय से बिम्ब का निर्माण होता है।"इनका इंद्रिय बोध सबसे अधिक प्रत्यक्ष तथा स्थूल होता है।''[262] स्पृश्य बिम्बों का मूल आधार स्पर्श आधारित भाव हैं।

श्रव्य बिम्ब:

---

[260] केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, (दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1971), पृष्ठः 23.

[261] नगेन्द्र, काव्य-बिम्ब, (दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र.सं 1967), पृष्ठः 6.

[262] दलीप सिंह दीप, काव्य बिम्ब, (चंड़ीग□ः पंजाब स्टेट यूनिवर्सिटी, टेकस्ट बुक बोर्ड, प्र. सं. 1976), पृष्ठः 65.

श्रव्य बिम्बों का ज्ञान श्रवण इंद्रियों द्वारा होता है। श्रव्य बिम्ब ध्वनि,लय से उत्पन्न होते हैं।"श्रव्य बिंबों में ध्वनि या नाद सुनाई पड़ता है जो श्रव्य बिंबों के रूप में हमारी श्रवण इंद्रियों को संवेदना प्रदान करता है।"[263] संगीत की विभिन्न ध्वनियां श्रव्य बिम्बों के क्षेत्र में आती हैं।

गंध बिम्ब:

यह गंध आधारित बिम्बों का बोध घ्राणेन्द्रिय के माध्यम से होता है "गंध बिम्बों का संबंध घ्राणेन्द्रिय नासिका से होता है।"[264] संवेदना तथा भावों की तीव्रता, गहनता की दृष्टि से गंध का महत्व अधिक होता है।

आस्वाद्य बिम्ब:

यह बिम्ब ज्यादा सुलभ होते हैं क्योंकि किसी भी वस्तु के आसवाद्य की अभिव्यक्ति और व्याख्या में आस्वाद्य बिम्बों जैसे खट्टे,मीठे आदि के वर्णन की तुलना में खट्टे, मीठे का बोध ही बिम्ब को स्थूलता प्रदान करता है।"आस्वाद्य बिम्बों का बोध बिम्बों से स्थूल होता है क्योंकि इसका संबंध जिह्वा से होता है।"[265] गुरु रामदास जी की वाणी में तकरीबन सभी तरह के बिम्बों का वर्णन मिलता है उन्होंने एक श्रेष्ठ रचयिता की भांति इनका प्रयोग किया है। जो कि इस प्रकार है

[263] बलदेव सिंह बदन पंजाबी सूफी काव्य का बिंब विधान,(दिल्ली: नेशनल बुक शॉप, प्र.सं. 1996), पृष्ठः 68.
[264] वही, पृष्ठः161.
[265] वही, पृष्ठः 160.

दृष्टि आधारितः

जैसे आम जीवन में नेत्रों का व्यापार ही प्रधान होता है वैसे बिम्बों में दृश्य बिम्ब महत्वपूर्ण हैं। गुरु रामदास जी की वाणी में इस तरह के बिम्ब देखने को मिलते हैं-

"हउ रहि न सका बिनु देखे प्रीतमा

मैं नीर वहे वहि चले जीउ।"[266]

"सभु तनु मनु हरिआ होआ

मनु खिडिआ हरिआ बागु।"[267]

"जिउ जल दुध भिन्न-भिन्न काऊ चणि हंसुला

त्यों देही ते चुणि काऊ साधु हउमै ताति।"[268]

श्रव्य आधारितः

श्रव्य बिम्ब वह हैं जिनको कानों के द्वारा,ध्वनियों के माध्यम से ग्रहण किया जाता है या सुना जाता है।"काव्य के क्षेत्र में ध्वनि कल्पना से अभिप्राय कविता के श्रव्य पक्ष से है। नाद सौन्दर्य का ऐसा संचरण जो कवि के भावों को श्रोता तक

[266] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग माझ चउपदे, महला 4, (श्री अमृतसरः सक्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः194.

[267] वही, पोथी तीजी, बिलावल की वार, पृष्ठः 849.

[268] वही,पोथी चौथी, राग मलार, पृष्ठः1264.

संचारित कर दे।''[269] मनुष्य जो सुनता है उसकी तस्वीर दिमाग में सुरक्षित रहती है। गुरु रामदास जी की वाणी में श्रव्य बिम्बों का वर्णन इस प्रकार मिलता है-

"जमु चूहा किरस नित कुरकदा।''[270]

"हरि बिनु सांति न पाईए मेरी जिंदुडीए

जिउ चात्रिक जल बिनु टेरे राम।''[271]

"उनवै घनु घनु घनिहरु गरजै''[272]

उपरोक्त पंक्तियों में चूहे का अनाज को कुतरना,चात्रिक या पपीहे का जल के बिना अलापना तथा बादलो की गर्जन से श्रव्य बिम्ब का बोध होता है।गुरु रामदास जी ने चूहे का अनाज को कुतरना बिम्ब के माध्यम से जीवात्मा को विषय विकारों से दूर रहने की शिक्षा दी है क्योंकि जीवात्मा विषय विकारों में लुप्त रहती है उसके मन को काल का भय चूहे की भांति कुतरता है इस तरह विषय विकार जीवात्मा को परमात्मा से दूर करते हैं। इसी प्रकार चात्रिक का जल की बूँद के लिए तरसना जीवात्मा तथा परमात्मा के वियोग को दर्शाता है। बादलों की गर्जन मनुष्य मन में काल के प्रति भय पैदा कर उसको प्रभु स्मरण करने की ओर प्रेरित करती है। गुरु जी ने श्रव्य आधारित तथा लोक समझ के अनुकूल बिम्बों का प्रयोग करके वाणी के आध्यात्मिक उपदेश को कलात्मक रूप में प्रकट किया है

---

[269] कुमार विमल, सौन्दर्या शास्त्र के तत्व, (दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 1967), पृष्ठः 22.

[270] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी पहली, गउड़ी की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः304.

[271] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग बिहागड़ा, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 538.

[272] वही, पोथी तीजी, राग नट नारायण, महला 4, पृष्ठः 975.

आस्वाद्य आधारितः

परमात्मा ने मनुष्य को रस चखने की शक्ति प्रदान की है जिसके माध्यम से वह परमात्मा के द्वारा पैदा की गई वस्तुओं का आनंद लेता है। गुरु रामदास जी ने आस्वाद्य रस संबंधी बिम्बों का वर्णन किया है-

"कऊआ काग कउ अमृत रस पाईए

तृपतै विसटा खाए मुखि गौहे।"[273]

"पान सुपारी खातीआ मुखि बीड़ीआ लाईआ।"[274]

गुरु रामदास जी ने आस्वाद्य बिम्बों के द्वारा मानव को हरि रस का स्वाद चखने को कहा है जो केवल हरि नाम स्मरण के द्वारा परमात्मा का ध्यान करके ही प्राप्त हो सकता है। हरि रस के अतिरिक्त पान सुपारी, बीडा आदि को विकारी रस माना है हरि रूपी अमृत रस का सेवन करने से मनुष्य जन्म सफल हो जाता है इसलिए से गुरु जी ने जीव को हरि नाम का रस ग्रहण कर जीवन सफल बनाने का उपदेश दिया है।

स्पृश्य आधारितः

जिन बिम्बों में स्पर्श आधारित भावों का वर्णन हो तथा पाठक को पढ़कर स्पर्श का अनुभव हो उन्हें स्पर्श बिम्ब कहा जाता है। "स्पर्श बिम्बों का बोध अधिक प्रत्यक्ष होता है। ऐसे स्पर्श बिम्बों की सृजना शीतलता, गरमाहट आदि के आधार पर होती

[273] शब्दार्थ श्री ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग गूजरी, महला 4,चउपदे, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 493.

[274] वही, पोथी दूजी, राग तिलंग, पृष्ठः 726.

है।''[275] गुरु रामदास जी की वाणी में इन बिम्बों का वर्णन महत्वपूर्ण रूप में देखा जा सकता है। 'पारस' का बिम्ब प्रयोग कर उन्होंने यह बताया है कि जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है वैसे पूर्ण गुरु अपनी शरण में आए भक्तों को अपने जैसा बना लेता है-

"जिउ लोहा पारसि भेटीए

मिलि संगति सुवरनु होइ जाई।''[276]

"गुरु सतिगुर पिछै तरि गइआ

जिउ लोहा काठ संगोइया।''[277]

गुरु जी के अनुसार परमात्मा वह पारस है जिसका स्पर्श पाकर लोहा स्वर्ण बन जाता है। गुरु जी ने परमात्मा को लकड़ी बताया है जिसका सहारा पाकर लोहा भी तैर जाता है तथा अर्थात् परमात्मा के नाम का जाप करके पापी व्यक्ति भी इस भवसागर को पार कर सकता है। गुरु रामदास जी की वाणी में प्रयोग किये गए बिम्बों का क्षेत्र बहुत विशाल है उन्होंने जीवन के विभिन्न पक्षों में से भिन्न-भिन्न प्रकार के बिम्ब चुने हैं। इनमें से प्रकृति आधारित बिम्ब भी हैं जिनका प्रयोग उनके द्वारा बहुलता में हुआ है।

प्रकृति-बिम्ब:

---

[275] बलदेव सिंह बदन पंजाबी सूफी काव्य का बिंब विधान, (दिल्ली: नेशनल बुक शॉप, प्र. सं. 1996), पृष्ठ: 162.

[276] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी पहली, राग गउड़ी की वार, महला 4, (श्री अमृतसर: सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठ:303.

[277] वही, पृष्ठ:309.

प्राकृतिक बिम्बों में प्रकृति के प्रत्येक रूप को बिम्ब की सामग्री बनाया जा सकता है। आकाश तथा धरती की प्राकृतिक विभिन्नता तथा सौन्दर्य इन बिम्बों के क्षेत्र में आती है।"कवि की प्रकृति से भावात्मक एकता होती है वह प्रकृति में जो कुछ देखता है उसे साधारण व्यक्ति की नज़र नहीं देख सकती। कवि बिम्बों के द्वारा भाव व्यंजना के लिए प्रकृति से सामग्री अवश्य ग्रहण करता है।''[278] गुरु रामदास जी ने धरती, आकाश, समुद्र पानी, बादल इत्यादि बिम्बों का भी प्रयोग किया है-

"तुधु आपे धरती साजीए चंद, सूरज दुए दीवे।

दस चारि हट तुधु साजिआ वापार करीवै।''[279]

"जिउ पसरी सूरज किरणि जोति।

तिउ घटि घटि रमईआ उति पोति।''[280]

"झखड झागी मीहु वरसै भी गुर देखन जाई।

पाला ककरु वरफु वरसै गुरसिक्ख गुरु देखन जाई।''[281]

गुरु जी ने वनस्पति, चंदन, मेहंदी, कमल आदि तथा जीव जंतु मोर,मीन आदि के बिम्बों का प्रयोग कुशलता पूर्वक कर साधारण जन को इनके माध्यम से वाणी के मूल भाव से अवगत करवाया है-

---

[278] दलीप सिंह दीप, काव्य-बिम्ब, (चंडीग: पंजाब स्टेट यूनिवर्सिटी, टेकस्ट बुक बोर्ड,प्र.सं 1976), पृष्ठ:111-112.

[279] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी पहली, सिरी राग की वार, महला 4, (श्री अमृतसर:शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः83.

[280] वही, पोथी चौथी, राग बसंत, महला 4, पृष्ठः 1177.

[281] वही, पोथी तीसरी, राग सूही, महला 4, पृष्ठः 757.

"जिउ जल कमल प्रीति अति भारी

बिनु जल देखे सुकलीधे।"[282]

"चंदन वास सुगंध गंधईआ।" [283]

"प्रभ आणि आणि मेहंदी पीसाइ।

आपे घोलि घोलि अंग लईआ।"[284]

"चातिक मारे बोतल दिनु राती सुनि घनिहर की घोर॥

जो बोलत है मृग मीन पंखेरु

सु बिनु हरि जापत है नही होर।"[285]

गुरु रामदास जी द्वारा वनस्पति तथा जीव जन्तुओं के मौलिक बिम्बों का प्रयोग अस्पष्ट को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत कर वाणी के उचित संदेश का संचार करता है।

जीवन पर आधारित बिम्बः

जीवन आधारित बिम्बों में समाजिक तथा घरेलू जीवन के कार्य व्यापार शामिल है। समाज की विभिन्न जातियों के द्वारा रचनाकार रचना के मूल अर्थ प्रकट करता है। गुरु रामदास जी ने नित्य प्रति जीवन को आधार बनाकर बिम्बों की रचना की है। गुरु

[282] वही, पोथी चौथी, राग बसंत, हिंडोल, महला 4, पृष्ठः1179.

[283] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी तीजी, राग बिलावल, महला 4, (श्री अमृतसरःशिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 834.

[284] वही, पोथी तीजी, राग बिलावल, महला 4, पृष्ठः 857.

[285] वही, पोथी चौथी, राग मलार, महला 4, पृष्ठः 1265.

जी की वाणी में किसान, सन्यासी, आदि से संबंधित बिम्बों का प्रयोग सहजता से कर वाणी के मर्म को परिलक्षित किया है-

"किरसाणी किरसाण करे लोचै जीठ लाई।

हलु जोतै उदमु करै मेरा पुत धी खाई।" [286]

"सनियासी बिभूत लाइ देह संवारी।

पर त्रिअ तिआगु करे ब्रह्मचारी।

खत्री करम करे सुरतणु पावै।

सुदु वैसु परिकरति कमावै।"[287]

गुरु जी ने किसान के द्वारा खेत मे हल चलाकर खेती करने का वर्णन कर आम जीवन के कार्य व्यापारों में रत व्यक्ति का चित्र प्रस्तुत किया है और दूसरी ओर संनियासी की प्रवृति द्वारा त्याग की बात की है इस प्रकार गुरु जी ने जीवन में व्यस्त तथा दूसरी ओर भौतिक कार्यों का परित्याग करने वाले व्यक्तियों में संबंध स्थापित कर वाणी के भावों को जीवन आधारित बिम्बों के द्वारा प्रकट किया है।

इस तरह बिम्ब-विधान के पक्ष से गुरु रामदास जी की वाणी बहु पक्षी तथा श्रेष्ठ है। गुरु जी ने जीवन के हर क्षेत्र से बिम्बों का चयन और प्रयोग, वाणी कर तथा अपनी रचना में बड़ी खूबसूरती के साथ किया है। गुरु जी द्वारा वाणी में अभिव्यक्त

[286] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी पहली, राग गउड़ी गुआरेरी, महला 4,(श्री अमृतसरः शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः166.

[287] वही, पृष्ठः164.

भावों का प्रभाव मनुष्य के मन पर पड़ता है और वह आत्मीय रूप में वाणी से जुडता है इसीलिए गुरु जी ने बिम्बों के माध्यम द्वारा गहन विचारों तथा भावों को भी बड़ी सरलता के साथ प्रकट कर मनुष्य को वाणी के मनोरथ से अवगत करवाया है।

प्रतीकः

साहित्य में प्रतीक सामान्य चिह्नों से भिन्न तथा विशेष अर्थ वाला माना जाता है। अमूर्त, अदृश्य, अप्रस्तुत को प्रतीक के माध्यम से मूर्त तथा दृश्यमयी बनाया जा सकता है। "प्रतीक को एक विशिष्ट सांकेतिक शब्द, प्रतिनिधि शब्द तथा विशेषाभिप्राय शब्द कहा जा सकता है।''[288] प्रतीकों के क्षेत्र की विशालता भाषा, साहित्य, धर्म, राजनीति तक विस्तृत है। प्रतीक शब्द का प्रयोग "किसी के स्थान पर या बदल में रखी हुई या काम आने वाली वस्तु प्रतिरूप, प्रतिमा मूर्ति के लिए किया जाता है।''[289] प्रतीक अमूर्त भावों को रूप प्रदान करके उन्हें वाणी के द्वारा मुखरित करता है। "जिस वस्तु के प्रकट और प्राकृतिक आकार में किसी विशेष अर्थ अथवा भाव का बोध नहीं होता,किन्तु सम्बन्ध और परम्परा के बल से किसी विशेष अर्थ और भाव की व्यंजना होती है।''[290] जैसे किसी मृतक शरीर को देख कर कहना कि 'पंछी उड़ गया', 'पिंजरा खाली पड़ा' है। यहां पर पंछी प्राणों का तथा पिंजरा मृत शरीर का प्रतीक है। इस तरह प्रतीकों द्वारा ऐसी वस्तु को हमारे सम्मुख रखा जाता है जिससे अन्य अप्रस्तुत वस्तुओं का बोध होता है। प्रतीकों का प्रयोग वह कवि ही कर सकते हैं जिनका मानस गहन तथा गूढ अनुभूतियों से भरा पड़ा होता है जो सिर्फ भावना के बहाव में ही नहीं बहते बल्कि

[288]ओमप्रकाश शर्मा शास्त्री, हिन्दी गद्य साहित्य में अलंकार योजना, (नई दिल्लीःआर्य बुक डिपो, प्र.सं. जून 1977), पृष्ठः 29.

[289] लोकभारती वृहत प्रमाणिक हिन्दी कोश, रामचन्द्र शुक्ल, (इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन, गयारहवां सं 2004), पृष्ठः591.

[290] रामनन्द तिवारी, हमारी जीवन्त संस्कृति, (भरतपुरः भारती पुस्तक मंदिर, 1972), पृष्ठः63.

अपने चिन्तन की क्षमता को रागात्मक भूमि पर प्रस्तुत करने की दिशा की ओर अग्रसर होते हैं। गुरु रामदास जी की वाणी भी प्रतीकमयी है उन्होंने अपने अमूर्त भावों को मूर्त रूप देने के लिए तथा अभिव्यक्त करने के लिए निम्नलिखित प्रतीकों का प्रयोग किया है-

पौराणिक प्रतीकः

पौराणिक से अभिप्राय पुरातन से है।पौराणिक शब्द का संबंध पुराण से है। "पौराणिक पुराण संबंधी,पुराण का।जैसे पौराणिक कथा,प्राचीन काल का।''[291] पौराणिक कथाओं में प्राचीन इतिहास में घटित घटनाओं का वर्णन, देवी देवताओं आदि के गुणों तथा पराक्रमों का वर्णन होता है। "पुराण का अर्थ है बहुत पुराना या प्राचीन काल का।प्रायः सभी प्राचीन जातियों, देशों और धर्मों में प्रचलित उन पुरानी,परम्परागत कथा कहानियों का समूह जिनका ऐतिहासिक आधार होता है।''[292] जब लेखक रचना में अपने भावों को स्पष्ट तथा प्रभावशाली रूप देने के लिए ऐतिहासिक प्रसंगों का प्रयोग करता है तब वह पौराणिक प्रतीकों को माध्यम बनाता है। गुरु रामदास जी की वाणी में भी ऐसे प्रतीकों का प्रयोग देखने को मिलता है-

"गुरमुखि प्रहलाद जपि हरि गति पाई॥

गुरमुखि जनकि हरि नाम लिवलाई॥

गुरमुखि बसिसटि हरि उपदेसु सुनाई॥''[293]

---

[291] हिन्दी शबदसागर, छठा भाग, श्यामसुंदर दास (सं), (काशीः नागरी प्रचारिणी सभा, 1967), पृष्ठः3135.

[292] मानक हिन्दी कोश, खण्ड 3, रामचन्द्र वर्मा (सं), (प्रयागः हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1964), पृष्ठः537.

[293] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग वडहंस, पउड़ी, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 591.

गुरु जी ने वाणी में प्रहलाद भक्त का वर्णन कर प्रत्येक मनुष्य को प्रहलाद की भांति भक्ति करने की प्रेरणा दी है।

"अमृतसर सतिगुर सतिवादी

जितु नातै कउआ हंसु होहै।"[294]

"संगति का गुनु बहुत अधिकाई पड़ि सुआ गनक उधारे॥

परस नपरस भए कुबिजा कउ लै बैंकठि सिधारै।"[295]

गुरु रामदास जी ने रजनी और उसके कृष्ट रोगी पति की पौराणिक कथा का संदर्भ देकर अमृतसर सरोवर की महत्ता को प्रतिपादित किया है इसी प्रकार गुरु जी ने श्री राम के चरणों के स्पर्श द्वारा कुब्जा भक्तिन की मुक्ति की पौराणिक कथा को प्रतीक रूप में प्रयुक्त कर वाणी के मूल भाव को अभिव्यंजित किया है।

आध्यात्मिक प्रतीकः

आध्यात्मिकता के क्षेत्र में जब भक्त को परमात्मा की असीमता से तन्मय भाव की प्राप्ति होती है तो उस भाव को व्यक्त करने के लिए भक्त परमात्मा प्रति हरि, मित्र, प्रीतम आदि शब्दों का प्रयोग करता है तो वह शब्द आध्यात्मिक प्रतीक कहलाते हैं। "आध्यात्मिक अनुभव के सम्प्रेष्ण के लिए तो प्रतीकों का प्रयोग अनिवार्य ही होता

[294] वही, पोथी दूजी, राग गूजरी, महला 4, पृष्ठः 493.

[295] वही, पोथी तीजी, राग नट नारायन, महला 4, पृष्ठः981.

है।''[296] गुरु रामदास जी ने परमात्मा की महत्ता को ब्यान करने के लिए आध्यात्मिक प्रतीकों का प्रयोग किया है-

"हरि हरि सजणु मेरा प्रीतम राइआ।

कोई आण मिलावै मेरे प्राण जीवाइआ।''[297]

मेरे साहां मै हरि दरसन सुखु होय

हमरी बेदनि तू जानता साहा अवरू किया जानै कोय।''[298]

गुरु रामदास जी ने परमात्मा के लिए प्राण शब्द का प्रयोग करके परमात्मा की भक्ति को भक्त के लिए आवश्यक माना है उनके अनुसार जैसे प्राणों के बिना कोई व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता ऐसे ही परमात्मा के नाम के बिना भक्त प्राणहीन है।

गुरु रामदास जी की वाणी में प्रयुक्त प्रतीकों से उस युग के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। उनके द्वारा प्रयोग किये गए प्रतीकों में मौलिकता है। उन्होंने प्रतीकों के माध्यम से अस्पष्ट को स्पष्ट कर दिखाया है। इसी कारण उनकी वाणी सार्थक, सहजमयी तथा प्रभावमयी विशेषताओं की धारणी है।

---

[296] यश गुलाटी, सूफी कविता की पहचान, (नई दिल्लीः प्रवीण प्रकाशन, 1979), पृष्ठः130.

[297] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी तीजी, राग नट नारायण, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 981.

[298] वही, पोथी दूजी, राग धनासरी, महला 4, पृष्ठः670.

छन्दः

मन की उल्लासमयी स्थिति में ही छन्दोमयी कविता का उदय होता है। "प्रभावपूर्ण लयात्मक अभिव्यक्ति जो वर्ण, मात्रा, गीत और तुक के नियमों से परिचालित हो, छंद कहलाती है।"[299] भौतिक जगत से संबंधित बहुत सारी घटनाएं हमारी आत्मा पर प्रभाव डालती हैं घटनाओं के प्रभावास्वरूप मन में पैदा होने वाले भावों को जब लेखक या कवि के द्वारा निश्चित वर्ण तथा मात्राओं के साथ अभिव्यक्त किया जाता है तो वह वर्ण, मात्रा के क्रम में बंधी ल्यात्मक अभिव्यक्ति छंद कहलाती है। "छंद कवि की सहज अभिव्यक्ति होती है। यह कविता का आवश्यक अंग है। इसमें वर्ण या मात्रा का निश्चित मापक्रम तथा चरण होते हैं।"[300] छन्द काव्य का अनिवार्य तत्व है। यह काव्यभिव्यक्ति का प्राण है। इसके प्रयोग से न सिर्फ काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न होता है बल्कि छन्दों का प्रयोग कर कवि अपनी अनुभूतियों तथा विचारों को अधिक हृदयग्राही रूप में अभिव्यक्त कर सकता है। गुरु रामदास जी ने अपनी वाणी में छंदो का प्रयोग पूर्ण ज्ञाता की तरह किया है जिनका वर्णन निम्नलिखित है-

उगाहा छंदः

उगाहा छंद का प्रयोग गुरु रामदास जी की वाणी में कम देखने को मिलता है। "उगाहा छंद के दो चरण होते है एक चरण में 26 मात्राएं होती है पर पहला विराम 15 तथा दूसरा विराम 11 मात्राओं पर लगता है।"[301] इसका उदाहरण इस प्रकार हैः

---

[299] राजा बुद्धिराजा, देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान, (दिल्ली: तेज प्रकाशन अन्सारी रोड़, 1975), पृष्ठः 223.

[300] उमेशचन्द्र शुक्ल (डॉ.), हिन्दी व्याकरणः रस-छंद-अलंकार सहित, (नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, प्र.सं 2000), पृष्ठः 73.

[301] महेन्द्र कुमार (डॉ.), रीतिकालीन कवियों का काव्य शिल्प, (नई दिल्लीः आर्य बुक डिपो, द्वि. सं. 1980),

"मैं मनि तनि प्रेम पिरंम का अठे पहर लगंनि॥

जन नानक लिया धारि प्रभु, सतिगुर सुखि वसंनि॥"[302]

गुरु रामदास जी परमात्मा के प्रति प्रेमपूर्ण भावों को व्यक्त करते है कि जिस मनुष्य का मन हर वक्त हरि के प्रेम में लगा रहता है। वह हरि की कृपा से सदैव खुखी रहता है।

अतिगीता छंदः

इसमें चार चरण होते हैं। "प्रत्येक चरण में 32 मात्राएं होती हैं तथा पहला विराम 15 पर और दूसरा 17 पर लगता है।"[303] अंत में गुरु लघु आते हैं।

"जिन हरि हरि नामु न चेतिउ ते मनमुख मूड़ इआणे राम॥

जो मोह माया चित लाइये से अंति गए पहुताणे राम॥

हरि दरगहि □ोई ना लहनि जो मनमुख पापि लुभाणे राम॥

जन नानक गुरु मिलि उबरे हरि जपि हरि नामि समाने राम॥"[304]

गुरु जी के अनुसार जिन मनुष्यों ने परमात्मा का नाम नहीं लिया वह मूर्ख हैं अपने मन को मोह माया में जोड़कर इस बात को भूल जाते हैं कि परमात्मा की दरगाह में वही सुख प्राप्त करते हैं जिन्होंने हरि का नाम स्मरण किया है।

पृष्ठः 560.

[302] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी पहली, गउडी की वार, महला 4, (श्री अमृतसरःसकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः301.

[303] महिन्द्र कौर गिल, गुरु अर्जुन देवः जीवन ते वाणी, (दिल्लीः नेशनल बुक शॉप, 1975), पृष्ठः 380.

[304] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग बिहागड़ा, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः540.

सवैया छंदः

सवैया एक सम मात्रिक छंद है। "यह वर्णिक और मात्रिक दोनो ही प्रकार का होता है। इसमें 32 मात्राएं होती है और विराम दो होते है जो कि 16-16 मात्राओं पर होते हैं।"[305] सवैया छंद का प्रयोग गुरु रामदास जी की वाणी में देखने को मिलता है-

"आपै आपु खाय हठ मेटै अनदिनु हरि रस गीत गवाईआ॥

गुरमुखि परचै कंथन काया निरभठ जोती जोति मिलइआ॥"[306]

गुरु रामदास जी कहते हैं कि जो मनुष्य हर समय हरि नाम रस के गीत गाता है उसको परमात्मा स्वयं में लीन कर उस मनुष्य को विकारों से रहित कर देता है। ऐसे मनुष्य का शरीर स्वर्ण की तरह शुद्ध हो जाता है।

गुरु रामदास जी द्वारा रचित वाणी रागों के अनुसार विभाजित है। रागों की लय को उचित रूप देने के लिए छंदों में मात्राओं की संख्या कहीं अधिक और कहीं कम है जिससे रागों के माध्यम से वाणी का विलक्षण रूप झलकता है।

मुहावरे तथा लोकोक्तियों का प्रयोगः

मुहावरे तथा लोकोक्तियां भाषा के अलंकार हैं। भाषा में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग भावों तथा विचारों को आर्कषक रूप में अभिव्यक्त करने के लिए किया जाता है।भिन्न-भिन्न स्थानों तथा अवसरों पर की जाने वाली क्रियाओं से उत्पन्न विचार जिनका कोई विशेष अर्थ होता है, जब एक स्थान पर किसी घटना, विशेष स्थिति के

[305] महेन्द्र कुमार (डॉ.), रीतिकालीन कवियों का काव्य शिल्प, (नई दिल्लीः आर्य बुक डिपो, द्वि. सं. 1980), पृष्ठः 541.

[306] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग बिलावल, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 757.

लिए प्रयुक्त किये जाते हैं तो मुहावरों तथा लोकोक्तियों का उद्भव होता है। "मुहावरे और लोकोक्तियां भाषा निबद्ध अभिव्यक्ति के विशेष अंग अथवा उपकरण हैं जिनके सही स्थानों पर किये गये उचित प्रयोगों द्वारा किसी भी कथन में विशेष चमत्कार, उक्तिसौष्ठव तथा अभिव्यक्ति में संजीवता, स्पष्टता और प्रभावोत्पादकता का संचार होता है।"[307] मुहावरों का प्रयोग स्वतंत्र न होकर वाक्यों में होता है तथा लोकोक्तियां सम्पूर्ण वाक्य पर आश्रित न रहकर अपने स्वतंत्र कथन के रूप में किसी उक्ति विशेष अथवा किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। उनके निर्माण के पीछे विचारकों के जीवन आधारित अनुभवों की गंभीरता का भी पूरा हाथ रहता है जिनका सार तत्व चुन कर वे लोकोक्तियों का गठन करते हैं। गुरु रामदास जी की वाणी में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग स्वतंत्र रूप में देखने को मिलता है। गुरु जी ने प्रत्येक स्थान पर मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग बहुत सुयोग्यता से किया है। गुरु जी की वाणी में आए मुहावरे तथा लोकोक्तियां इस प्रकार है-

"पुतु कलतु मोह बिखु है अंति बेली कोई न होय॥"[308]

(अंत समय में कोई साथ नहीं देता)

"जन नानक जल बिनु मरीए जीउ॥"[309]

(मच्छली की तरह जल बिन मरना)

"बिसीअर कउ बहु दुध पीआइए

---

[307] वेंकट शर्मा ,हिन्दी मुहावरे और लोकोक्तियाः अर्थ और प्रयोग, (जोधपुरः राजस्थानी ग्रन्थगार, प्र.सं 2000), पृष्ठः1.

[308] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी पहली, सिरी राग, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी,जून 2005), पृष्ठः41.

[309] वही, पोथी पहली, राग माझ, महला 4, पृष्ठः95.

"बिखु निकसै कोलि फुलीठा॥"[310]

(सांप को जितना दूध पीलाओ पर अंत में ज़हर ही उगलेगा)

"जेहा को बीजै तेहा फलु पाए॥"[311]

(जिस तरह का कोई कर्म करता है वैसा ही फल मिलता है)

"एक हरि रस सेई जाणछे जिउ गूंगे मठिआई खाई॥"[312]

(हरी रस गूंगे के मिठाई खाने की तरह है)

"अमृतसर सतिगुर सतिवादी जितु नातै कउआ हंसु होहै॥"[313]

(कअुए से हंस होना अर्थात् वृतियों का बदल जाना)

"फिरि इह वेला हाथि न आवै परतापै पछुतावैगो॥"[314]

(समय निकल जाने के बाद पछताना पड़ता है)

"हउ आकत बिकल भई गुर दोरहै।

हऊ लोट पोट होई पईआ॥"[315]

(खुशी से लोट पोट होना भाव फूले न समाना)

---

[310] वही,पोथी पहली, राग गउड़ी पूरबी, महला 4, पृष्ठः171.

[311] वही, पोथी पहली राग गउड़ी, महला 4, पृष्ठः302.

[312] वही, पृष्ठः311.

[313] वही, पृष्ठः493.

[314] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी,, पोथी चौथी, राग कानड़ा, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः1310.

[315] वही, पोथी तीजी, राग विलावल, महला 4, पृष्ठः836.

"मन की बिरथा मन ही जाणै, अवरू कि जाणै को पीर परईआ॥"[316]

(जिस तन लागै सो तन जाने)

"मन हठि कर्म करै अभिमानी जिऊ बालक बालू घर ठसरईआ॥"[317]

(रेत के घर बनाना,झूठे सपने देखना)

"जो नर भरमि भरमि ठदिआने ते साकत मूडे मुहै।

जिऊ मृग नाभि बसै बास बसना भ्रमि भ्रमिठ झार गहैं॥"[318]

(मृग की नाभि में ही कस्तूरी होती है परंतू वह बेसमझ होने के कारण खुशबू को बाहर ढूं□ता फिरता है)

इस तरह गुरु रामदास जी द्वारा मुहावरों तथा लोकोक्तियां का किया गया प्रयोग वाणी को संजीवता प्रदान करता है। गुरु जी द्वारा मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग करना जीवन से प्राप्त गहरे अनुभव को दर्शाता है। गुरु जी ने लोक को मुहावरों तथा लोकोक्तियों के भावमयी रूप के माध्यम से वाणी की चिंतनशीलता तथा मूल भाव को समझने के लिए प्रेरित किया है।

रस वर्णनः

वाक्य में अनेक प्रकार के भावों को उत्पन्न करने वाली अनुभूति को रस कहते हैं। रस का संबंध भाव से है। भाव परिपक्व तभी कहलाता है जब उससे रस का

[316] वही,पृष्ठः836.

[317] वही,पृष्ठः835.

[318] वही, पोथी चौथी, राग प्रभाती, महला 4, पृष्ठः1336.

अनुभव होता है। साधारणतः काव्य को पढ़कर नाटक को देखकर तथा कथाओं को सुनकार मन को जो आनंद प्राप्त होता है वही रस है। "अपने मूल रूप में रस हृदय में स्थायी रूप में विद्यामान रागात्मकता है उस रागात्मकता में जब कोई विशिष्ट अर्थ उपजता है तो उसकी अभिव्यक्ति के लिए कवि लोक में से विभावों का चयन कर और उन्हें उचित मात्रा में सन्निविष्ट कर काव्य या नाट्य की सृष्टि करता है तब वह रचा हुआ संवाद अर्थ पूर्ण होने के कारण सहृदयों के द्वारा आस्वाद्य होता है। इसी कारण वह 'रस' की संज्ञा प्राप्त करता है।"[319] अर्थात रचनाकार अपने भावों को पाठक तथा श्रोता तक सम्प्रेषित करने के लिए पाठक तथा सहृदय जन में स्थायी भावों को उदबुद्ध करता है।जब पाठक तथा रचनाकार के भावों में एकात्मकता उत्पन्न हो जाती है तो उन भावों से उत्पन्न आनंद रस कहलाता है। गुरु रामदास जी की वाणी में सभी प्रकार के रसों की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है जिनका वर्णन इस प्रकार है-

करुणा रसः

करुणा रस निराशा तथा उदासी को पैदा करता है। "शोक या करुणा के भाव वियोग में उत्पन्न होते हैं जिसमें प्रियतम से बिछुड़ जाने का भाव प्रधान होता है।"[320] किसी भी प्रिय व्यक्ति तथा वस्तु के नाश के उपरांत मन में उपजी निराशा तथा व्याकुलता को करुणा कहा जाता है, शोक इसका स्थायी भाव है। गुरु रामदास जी की वाणी में इसका उदाहरण इस प्रकार है-

"मै प्रेम न चाख्या मेरे पिआरै भाऊ करै॥

[319] ऋषि कुमार चतुर्वेदी, रस सिद्धांत, (अलीगढ़, ग्रंथायन सर्वोदय नगर,प्र. सं 1971), पृष्ठः 29.
[320] नगेन्द्र, रस सिद्धांत, (दिल्लीः नेशनल पब्लिंशिग हाऊस, प्र., सं. 1964), पृष्ठः 336.

मनि तृसन न बूझी मेरे पिआरे नित आस करे॥

नितु जोबन जावै मेरे पिआरै जमु सास हिरे॥''[321]

"दरगहि लेखा मंगीऐ कोई अंति न सकी छडाई

बिनु नावै सभु दुख है दुखदाई मोह माए।

नानक गुरमुखि नदरी आया

मोह माया बिछुडि सभ जाय।१७।''[322]

गुरु जी ने वाणी में माया की तृष्णा में प्रभु प्रेम से वंचित रह गई जीवात्मा का वर्णन किया है।जीवात्मा प्रभु प्रेम न मिलने के कारण,परमात्मा के दर्शनों की अभिलाषा पूरी न होने के कारण उदास होती है। इस उदासी में से करुणा रस निःसृत होता है गुरु जी ने वाणी में करुण रस का वर्णन करके मनुष्य को अपने अंतिम समय में प्रभु नाम स्मरण करने का उपदेश दिया है। उन्होंने जवानी की अवस्था बीत जाने के कारण जीवात्मा के मन में उत्पन्न करुण भावों का वर्णन किया है।

भयानक रसः

इसका स्थायी भाव डर है। "जिससे भय का आभास हो, भयानक दृश्य देखने, सुनने, स्मरण करने अथवा उसकी अनुभूति से उत्पन्न भाव भयानक रस कहलाता

[321] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पोथी दूजी, राग आसा, छंत महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः 451.

[322] वही, पोथी चौथी, सलोक वारा ते वधीक, महला 4, पृष्ठः 1422.

है।"[323] गुरु रामदास जी की वाणी में भूत प्रेत, नर्क, जंगली जानवरों, यमराज आदि के डरावने दृश्य जीवात्मा को सजग करने के लिए प्रस्तुत किये गए हैं।

"जिना सतिगुर पुरख न भेटिउ से भागहीन वसि काल।

हुए फिरि फिरि जोनि भवाईए विणि विसटा करि विकराल॥"[324]

"धरमरराज जमकंकरा नो आखि छड़या, ऐसु तपै नो

तिथै खड़ि पाइअहु, जित्थै महा-महा हतिआरा॥"[325]

गुरु रामदास जी मनुष्य को कुकर्मों के बुरे परिणामों से अवगत करवाकर परमात्मा के नाम की ओर प्रेरित करते हैं। बुरे कर्मों के कारण होने वाले परिणामों के प्रति भयभीत दृश्य आदि का वर्णन कर गुरु जी ने जीवात्मा को सही पथ की ओर प्रेरित किया है।

अद्भुत रसः

अदभुत रस का स्थायी भाव विस्माद है। मानव के लिए प्रकृति द्वारा पैदा की गई सब वस्तुएं अद्भुत हैं। "जिस रचना के द्वारा विस्मय या आश्चर्य के भाव उत्पन्न होते हैं उसे अद्भुत रस कहते है।"[326] परमात्मा ने प्रकृति को ऐसी नियामतों से निवाजा

---

[323] उमेशचन्द्र शुक्ल (डॉ), हिन्दी व्याकरणः रस-छंद-अलंकार सहित, (नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, प्र.सं 2000), पृष्ठः72.

[324] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी पहली, सिरी राग, महला 4, (श्री अमृतसरःसकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी,जून 2005), पृष्ठः40.

[325] वही, पोथी पहली, गउडी की वार, महला 4, पृष्ठः316.

[326] उमेशचन्द्र शुक्ल (डॉ), हिन्दी व्याकरणः रस-छंद-अलंकार सहित, (नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, प्र.सं 2000), पृष्ठः71.

है कि मानव जब भी उन चीजों को देखता है तो वह आश्चर्यचकित हो उठता है इसी आश्चर्य का वर्णन गुरु रामदास जी की वाणी में परिलक्षित होता है-

"सभ आखहु सतिगुर वाहु वाहु

जिनि दान हरिनाम मुखि दिया॥"[327]

"तू हिरदै गुपतु वसहि दिनु राती

तेरा भाऊ न बुझहि गवारी॥"[328]

गुरु जी ने परमात्मा की असीमता,शक्ति के प्रति अद्भुत तथा विस्माद की स्थिति का वर्णन किया है। परमात्मा अप्रत्यक्ष रूप में सभी के हृदयों में वास करता है। गुरु जी ने परमात्मा की परोक्ष सत्ता का वर्णन विस्मादपूर्ण रूप में किया है।

वात्सल्य रसः

औलाद के लिए माता-पिता के मन में जो प्रेम भाव होते हैं उसे वात्सल्य रस के नाम से जाना जाता है।"इसका स्थायी भाव वात्सल्यता अनुराग होता है। माता-पिता द्वारा संतान प्रति अनुराग व्यक्त करना वात्सल्य भाव कहलाता है और जब वाक्य में उसकी अभिव्यक्ति होती है तथा पाठक या श्रोता को जिस समान भावानुभूति का अनुभव हो तो वह वात्सल्य रस कहा जाता है।"[329] गुरु रामदास जी ने वाणी में परमात्मा को माता-पिता बताया है जो प्रकृति में व्याप्त सभी जीव जंतुओं की रक्षा माता-पिता की भांति करता है-

---

[327] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी दूजी, बडहंस की वार, महला 4,(श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः585.

[328] वही, पोथी दूजी, राग सोरठि, महला 4, पृष्ठः607.

[329] श्रीनिवास शर्मा, आधुनिक हिंदी काव्य में वात्सल्य रस, (नई दिल्लीः अशोक प्रकाशन, 1964), पृष्ठः 16.

"जिऊ जननी गरभु पालती सुत की कर आसा।

वडा होय धनु खाटि देई करि भोग बिलासा।

तिऊ हरि जन प्रीति हरि राखदां दे आपि हथासा।"[330]

"जैसी गगन फिरंती उडतह कपरे बागे वाली।

उह राखै चीतु पीछै बिचि बचरे नित हिरदैं सारि समाली।

तिऊ सतिगुर सिख प्रीति हरि हरि की

गुरु सिख रखै जीअ नाली।"[331]

गुरु जी ने वात्सल्य रस का प्रयोग कर यह संदेश दिया है कि परमात्मा ही सभी जीवों की पालना करने वाला है जैसे आकाश में चिड़िया खाने की खोज में उड़ती है पर उसका मन अपने बच्चों में ही होता है जिनको उसने घोंसले में छोड़ा होता है ऐसे ही परमात्मा अदृश्य है पर फिर भी संसार में व्याप्त संम्पूर्ण जीवों की रक्षा,जीवों के श्वासों को प्रतिपालित करता है।परमात्मा के द्वारा जीवों की प्रतिपालना तथा रक्षा ही परमात्मा की सर्वव्यापकता और वात्सल्यता को प्रतिष्ठित करती है।

अतः गुरु रामदास जी की वाणी के सम्पूर्ण अभिव्यक्ति शिल्प एक संयुक्त रूप प्रस्तुत होता है।जिसमें अभिव्यक्ति शिल्प के सभी पक्षों का वर्णन विस्तार सहित तथा क्रमानुसार रूप में किया गया है। गुरु जी के द्वारा वाणी में जिस भाषा का प्रयोग

[330] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी दूजी ,बडहंस की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः585.

[331] शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पोथी दूजी, बडहंस की वार, महला 4, (श्री अमृतसरः सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जून 2005), पृष्ठः585.

किया है वह तदयुगीन लोक के अनुकूल है जैसे गुरु जी की दृष्टि सहज थी वैसी ही उनकी भाषा भी सहज थी। उन्होंने वाणी को आत्मीयता के भावों से युक्त कर अभिव्यक्त भाषा में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।जिसमें उन्होंने शब्दों के महत्व तथा गरिमा का भी पूर्ण ध्यान रखा है। वाणी में प्रयुक्त हुए शब्दों के प्रयोग की सीमाओं से गुरु जी भली भांति परीचित थे। गुरु जी द्वारा की गई प्रतीक योजना में भी सहजता, सरलता का रूप परिलक्षित होता है क्योंकि वह किलष्ट एवं दुरूह चिंतन के पोषक नहीं थे और न ही वह अपने चिंतन को किसी वर्ण्य विषय तक सीमित करना चाहते थे इसीलिए उन्होंने सरल प्रतीकों का ही प्रयोग किया है। इसी प्रकार वाणी में अलंकार प्रयोग भी वाणी के सौन्दर्य को आच्छादित करता हुआ नहीं लगा वह उनकी वाणी के अभिव्यक्ति पक्ष का अभिन्न अंग बनकर प्रस्तुत होता है इसीलिए गुरु जी ने अलंकारों के जिन रूपों का प्रयोग किया है वो जन मानस के सर्वथा अनुरूप थे। अलंकारों की ही तरह छंद योजना भी गुरु जी के भावों और लोक के भावों का सुन्दर सांमजस्य प्रस्तुत करती है। उन्होंने छंद विधान का एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया है जो प्रतिबद्ध साहित्य को सम्प्रेषित करने में सर्वाधिक योगदान देता है। गुरु रामदास जी ने बिम्ब योजना ऐसे परिचित परिवेश में से की है जो अत्यन्त विस्तुत और व्यापक है उन्होंने बिम्ब वर्णन में भी सामंजस्य का पालन किया है। गुरु जी ने मुहावरे तथा लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा प्रयोग को अधिक प्रमाणिक बनाया है तथा जन मानस के अनुरूप भाव प्रवण भी बनाया है। इस तरह हम कह सकते है गुरु रामदास जी ने अपनी साधना तथा चिंतन के अनुरूप ही अभिव्यक्ति शिल्प के ऐसे उपकरणों का संचयन कर उन्हें प्रयोग किया जिससे उनके विचार लोक काव्य के विभिन्न रूपों के माध्यम से परिलक्षित होते हैं। गुरु जी द्वारा भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त किये गए रूपों में

लोक तथा समाज के भाव और चेतनता विद्यमान है जो वाणी के माध्यम से ही एकस्वर होकर ऐसी संश्लिष्ट इकाई का निर्माण करते हैं जिसमें आध्यात्मिक रंग के साथ साथ लौकिक प्रेम के रंग भी मौजूद है जो लोक को गतिशीलता देने के साथ निरंतर विकास के पथ की ओर उन्मुख करते हैं।

उपसंहार

श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की सृजना में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले सिक्ख गुरु साहिबान में गुरु रामदास जी विशेष महत्व रखते हैं वह अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की भांति वाणी सृजन में माहिर थे। गुरु रामदास जी ने वाणी की रचना 31 रागों में की, उन्होंने वाणी में विभिन्न रागों के संयोजन के साथ साथ विभिन्न लोक-काव्य रूपों के माध्यम से उच्च दैवी भावों की अभिव्यंजना की है। गुरु जी ने वाणी को अलौकिक क्षेत्र से बाहर निकालकर लौकिक क्षेत्र के लिए ग्रहनीय बनाने के लिए ही विभिन्न लोक-काव्य रूपों तथा शिल्प की विभिन्न विधियों का प्रयोग किया क्योंकि वह वाणी की रचना किसी विशेष समूह के लिए न करके जनसाधारण के लिए करना चाहते थे इसलिए उन्होंने लोक मन की खुशी, उल्लास को व्यक्त करने के लिए अपनाई जाने वाली लोक गायन की विविध विधियों को आधार बनाया।

लोक काव्य मनुष्य हृदय का शुद्ध प्रतिबिंब होता है जिसमें लोक मन के भावों का यथार्थ और स्वाभाविक रूप प्रस्तुत होता है। लोक हृदय में उठने वाले भावों की सहज तथा लोकस्वीकृत अभिव्यक्ति लोक-काव्य के रूपों के द्वारा प्रकट होती है। लोक चित की गति का आधार लोक-काव्य के द्वारा प्रकट होने वाली सामूहिक चेतना, अनुभूतियां हैं जिसमें लोक जीवन के राग विराग,हर्ष विषाद,संयोग वियोग का जीवंत रूप झलकता है। लोक के इस जीवंत रूप का गुरु रामदास जी की वाणी में सच्चा रूप देखने को मिलता है उन्होंने गायन और श्रृति के द्वारा जीवित रहने वाले लोक-काव्य रूपों को गुरुवाणी के इलाही संदेश को संचारित करने का आधार बनाया जिनके माध्यम से उन्होंने अपने भावों का अधिकाधिक और व्यापक रूप में विर्सजन किया।

गुरु जी द्वारा प्रयुक्त लोक काव्य रूप मनुष्य को चारों ओर फैले संसार के बारे में जागरूक करते हुए मनुष्य को जीवन के सही लक्ष्य की ओर प्रेरित करते हैं। गुरु जी ने वाणी में वर्णित भावों की आत्मिक ऊंचाई को साधारण बुद्धि की सोच का विषय बनाने के लिए लोक-काव्य रूपों का प्रयोग किया गया है जो मनुष्य को जीवन के मूल भाव के प्रति चेतन करते हैं। गुरु रामदास जी की वाणी में लोक काव्य रूपों के माध्यम से वर्णित गुरु जी के विचारों तथा भावों को विस्तार सहित प्रस्तुत कर पाठकों के ज्ञान के साधन बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

लोक काव्य में लोक के रीति रिवाज़ों,अनुष्ठानों की झलक दिखाई पड़ती है पर गुरु जी ने लोक की दृष्टि बदलने के लिए लोक को ही आधार बनाकर व्यक्ति परिष्करण के लिए मानव मूल्यों की स्थापना की है तथा उनके पालन पर भी बल दिया है। इसके लिए उन्होंने लोक काव्य के प्रचलित रूपों को अपनाया गुरु जी ने समाज में फैली विसंगतियों के निवारण तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए युगानुरूप लोक काव्य रूपों का प्रयोग किया है। गुरु रामदास जी की वाणी के मूल भाव को परिलक्षित करते हुए समाज में तीज त्यौहारों, खुशी उल्लास के अवसरों से संबंधित लोक-काव्य की गायन विधियों का संदर्भ दिया गया है।

गुरु जी ने जीवात्मा को व्यर्थ के कर्म काण्डों में से निकलकर गुरु शरण में जाकर परमात्मा प्राप्ति का उपदेश दिया है इसलिए उन्होंने लोक-काव्य के सरल रूपों को आधार बनाकर जीवात्मा को परमात्मा प्राप्ति का मार्ग दिखलाया है तांकि मनुष्य अपने लोक में जीवन यापन करते हुए ही अपने व्यक्तित्व का मूल अर्थ पहचान सके। गुरु जी द्वारा प्रयुक्त लोक-काव्य रूप में लोक संस्कृति की झलक दिखाई देती है। लोक संस्कृति के विभिन्न कार्य व्यवहारों का वर्णन लोक-काव्य के माध्यम से गुरु रामदास

जी की वाणी के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। गुरु जी ने वाणी के संदेश को लोक-काव्य रूपों के सहज मार्ग के द्वारा निर्वाहित किया है।

गुरु रामदास जी सिक्खों के चतुर्थ गुरु तथा श्री अमृतसर साहिब के संस्थापक थे। अधिकतर विचारकों द्वारा इसी महत्व को प्रकट किया है पर उन्होंने गुरु जी की वाणी की साहित्यिक महत्ता को पूर्ण तथा विस्तृत रूप में वर्णित नहीं किया गुरु रामदास जी अपने चिंतन को परिवेश आधारित करने के लिए भावों को लोक-काव्य रूपों,रागों की प्रकृति के अनुकूल □ालकर प्रस्तुत करते हैं। लोक-काव्य रूपों के माध्यम से गुरु रामदास जी की वाणी में वर्णित भाव काव्य भाषा को प्राप्त होते हैं इसका वर्णन विस्तृत रूप में किया गया है।

गुरु राम दास जी वाणी में वर्णित लोक-काव्य रूप पहरे, घोड़ियाँ, लावां, करहला, वणजारा, वारां, सोलहे के माध्यम से रूपायित भावों का मूल अर्थ विश्लेषित रूप में प्रकट कर पुनः व्याख्या के द्वारा विषय को नवीन रूप देने का प्रयास किया गया है। विशेष रूप में घोडियाँ, लावां तथा वारां के माध्यम से पंजाबी संस्कृति को स्पष्ट किया गया है। गुरु रामदास जी की वाणी में लोक-काव्य के विभिन्न रूपों के साथ-साथ ज्ञान का संगम देखा जा सकता है। गुरु रामदास जी की वाणी की आभा सभी पक्षों से अद्वितीय है उनकी वाणी में समकालीन जीवन के साथ ही आध्यात्मिक, रहस्यवादी अनुभवों की अभिव्यंजना झलकती है।

गुरु रामदास जी की वाणी में भाव, राग, रस इत्यादि लोक-काव्य के रूपों के साथ एकस्वर होकर प्रकट हुए हैं और इन्हीं वर्णित लोक-काव्य रूपों का समाजिक, भावनात्मक, दार्शिनक पक्षों से विश्लेषण किया गया है। गुरु जी ने वाणी की विषय

वस्तू, मूल अर्थ को लोक-काव्य रूपों की प्रकृति के अनुसार □ालकर लोक-काव्य के स्वाभाविक रूप को बदलकर नया कलात्मक रूप दिया है। गुरु जी द्वारा वाणी में पंजाबी भाषा का प्रयोग वाणी के कलात्मक पक्ष को और निखार देता है। गुरु जी की वाणी की शब्दावली युग का वास्तविक बिम्ब प्रस्तुत करने में सक्ष्म है। गुरु जी वाणी के माध्यम से असंगठित मनुष्य को संगठित कर गुरुमुख बनाते हैं जो खुद तो पुनःचेतन होता ही है और पुनः चेतना से विकसित अपने व्यक्ति के द्वारा समाज को भी विकास की ओर अग्रसर करता है

गुरु रामदास जी की वाणी में समाजिक संस्कारों का वर्णन केवल लोक को शिक्षा देने के नज़रिए से ही किया गया है क्योंकि लोक समाज की भाषा तथा अनुष्ठानों से अवगत था पर पर गुरु जी के द्वारा जन्म, विवाह, मृत्यु के अवसर पर की जाने वाली समाजिक रस्मों के प्रयोग का खंडन किया है। गुरु जी के द्वारा संस्कारों तथा अनुष्ठानों को केवल वाणी का संदेश संचारित करने का ही आधार बनाया गया। गुरु जी की वाणी में वर्णित लोक-काव्य रूप युग के बिम्ब को प्रकट करते हैं। उनकी वाणी की महानता को,युग की बहुपक्षता को तथा परम सत्य की विशालता को विवेचनात्मक रूप में प्रस्तुत कर मूल भाव को परिलक्षित किया गया है। गुरु रामदास जी की वाणी में भावों का वेगमयी रूप महत्वपूर्ण पक्ष को उद्घाटित करता है जिस पक्ष में अलौकिक ज्ञान और भाव एकस्वर होकर प्रवाहित होते हैं। गुरु रामदास जी की वाणी में भावों का वेग ही लोक-काव्य के विभिन्न रूपों का सहजमयी रूप प्रस्तुत करता है इसी कारण लोक-काव्य रूप वाणी के इलाही रंग में रंगकर वाणी निहित संदेश को प्रवाहित करते जाते हैं।

गुरु रामदास जी की वाणी की विशेषता गुरु जी का व्यक्तित्व है जो कि वाणी में अंतर्निहित भाव से ऐसा संबंध स्थापित करता है जिससे वाणी का मूल अर्थ संजीव हो उठता है। गुरु जी ने लोक-काव्य रूपों के साथ अपने भावों को ओत-प्रोत कर वाणी को विलक्षणता प्रदान की है। गुरु रामदास जी की वाणी में कहीं भी ज्ञान और भावों में,मन और बुद्धि में तथा चेतन और अवचेतन में विभिन्नता परिलक्षित नहीं होती इसलिए उन्होंने लोक-काव्य रूपों में वाणी की अलौकिकता को सहजता से □ालकर प्रस्तुत किया है।

लोक-काव्य के विभिन्न रूपों को बिम्ब, प्रतीक, समाजिक संस्कारों, अनुष्ठानों को, वाणी की अलौकिकता में कला विधि के द्वारा प्रकट करना गुरु जी की कलात्मक गहनता को प्रतिष्ठित प्रस्तुत करता है। गुरु जी ने वाणी में अपने भावों को लोक-काव्य रूपों से सजाकर इसी लिए प्रस्तुत किया है तांकि वाणी का आस्वाद्यन प्रत्येक मनुष्य द्वारा जीवन प्रत्येक अवसर पर ग्रहण किया जा सके। गुरु जी ने लोक-काव्य रूपों को भावों की प्रकृति के अनुकूल □ाला है साथ ही भावों को रागों की प्रकृति के अनुसार भी प्रकट किया है। गुरु रामदास जी की वाणी में भाव, रस, राग इत्यादि लोक-काव्य रूप से एकस्वर होकर समाजिक तथा दार्शनिक पक्षों को प्रस्तुत करते हैं। गुरु जी ने लोक-काव्य रूपों को वाणी के मूल संदेश के अनुकूल □ालकर वाणी में प्रस्तुत भावों को सहजमयी रूप में कलात्मक कर दिया है। इस प्रकार गुरु जी ने लोक-काव्य रूपों के विषय वस्तु को वाणी के अलौकिक रस, राग, महानता के साथ ओत-प्रोत कर अपने संदेश को पूर्ण रूप में संचारित किया है।

गुरु रामदास जी की वाणी में लोक-काव्य रूप

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

के भाषा संकाय के अन्तर्गत

पीएच.डी. (हिन्दी) की शोध-उपाधि

हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

निर्देशिका

नीकौशल

(डॉ.) नीतू कौशल

अस्सिटैंट प्रोफेसर, (हिन्दी) विभाग

पंजाबी विश्वविद्यालय

पटियाला।

शोधार्थी

पवनदीप कौर

पवनदीप कौर

हिन्दी विभाग

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

2023

उपसंहार

श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की सृजना में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले सिक्ख गुरु साहिबान में गुरु रामदास जी विशेष महत्व रखते हैं वह अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की भांति वाणी सृजन में माहिर थे। गुरु रामदास जी ने वाणी की रचना 31 रागों में की, उन्होंने वाणी में विभिन्न रागों के संयोजन के साथ साथ विभिन्न लोक-काव्य रूपों के माध्यम से उच्च दैवी भावों की अभिव्यंजना की है। गुरु जी ने वाणी को अलौकिक क्षेत्र से बाहर निकालकर लौकिक क्षेत्र के लिए ग्रहनीय बनाने के लिए ही विभिन्न लोक-काव्य रूपों तथा शिल्प की विभिन्न विधियों का प्रयोग किया क्योंकि वह वाणी की रचना किसी विशेष समूह के लिए न करके जनसाधारण के लिए करना चाहते थे इसलिए उन्होंने लोक मन की खुशी, उल्लास को व्यक्त करने के लिए अपनाई जाने वाली लोक गायन की विविध विधियों को आधार बनाया।

लोक काव्य मनुष्य हृदय का शुद्ध प्रतिबिंब होता है जिसमें लोक मन के भावों का यथार्थ और स्वाभाविक रूप प्रस्तुत होता है। लोक हृदय में उठने वाले भावों की सहज तथा लोकस्वीकृत अभिव्यक्ति लोक-काव्य के रूपों के द्वारा प्रकट होती है। लोक चित की गति का आधार लोक-काव्य के द्वारा प्रकट होने वाली सामूहिक चेतना, अनुभूतियां हैं जिसमें लोक जीवन के राग विराग,हर्ष विषाद,संयोग वियोग का जीवंत रूप झलकता है। लोक के इस जीवंत रूप का गुरु रामदास जी की वाणी में सच्चा रूप देखने को मिलता है उन्होंने गायन और श्रृति के द्वारा जीवित रहने वाले लोक-काव्य रूपों को गुरुवाणी के इलाही संदेश को संचारित करने का आधार बनाया जिनके माध्यम से उन्होंने अपने भावों का अधिकाधिक और व्यापक रूप में विर्सजन किया।

गुरु जी द्वारा प्रयुक्त लोक काव्य रूप मनुष्य को चारों ओर फैले संसार के बारे में जागरूक करते हुए मनुष्य को जीवन के सही लक्ष्य की ओर प्रेरित करते हैं। गुरु जी ने वाणी में वर्णित भावों की आत्मिक ऊंचाई को साधारण बुद्धि की सोच का विषय बनाने के लिए लोक-काव्य रूपों का प्रयोग किया गया है जो मनुष्य को जीवन के मूल भाव के प्रति चेतन करते हैं। गुरु रामदास जी की वाणी में लोक काव्य रूपों के माध्यम से वर्णित गुरु जी के विचारों तथा भावों को विस्तार सहित प्रस्तुत कर पाठकों के ज्ञान के साधन बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

लोक काव्य में लोक के रीति रिवाज़ों,अनुष्ठानों की झलक दिखाई पड़ती है पर गुरु जी ने लोक की दृष्टि बदलने के लिए लोक को ही आधार बनाकर व्यक्ति परिष्करण के लिए मानव मूल्यों की स्थापना की है तथा उनके पालन पर भी बल दिया है। इसके लिए उन्होंने लोक काव्य के प्रचलित रूपों को अपनाया गुरु जी ने समाज में फैली विसंगतियों के निवारण तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए युगानुरूप लोक काव्य रूपों का प्रयोग किया है। गुरु रामदास जी की वाणी के मूल भाव को परिलक्षित करते हुए समाज में तीज त्यौहारों, खुशी उल्लास के अवसरों से संबंधित लोक-काव्य की गायन विधियों का संदर्भ दिया गया है।

गुरु जी ने जीवात्मा को व्यर्थ के कर्म काण्डों में से निकलकर गुरु शरण में जाकर परमात्मा प्राप्ति का उपदेश दिया है इसलिए उन्होंने लोक-काव्य के सरल रूपों को आधार बनाकर जीवात्मा को परमात्मा प्राप्ति का मार्ग दिखलाया है तांकि मनुष्य अपने लोक में जीवन यापन करते हुए ही अपने व्यक्तित्व का मूल अर्थ पहचान सके। गुरु जी द्वारा प्रयुक्त लोक-काव्य रूप में लोक संस्कृति की झलक दिखाई देती है। लोक संस्कृति के विभिन्न कार्य व्यवहारों का वर्णन लोक-काव्य के माध्यम से गुरु रामदास

जी की वाणी के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। गुरु जी ने वाणी के संदेश को लोक-काव्य रूपों के सहज मार्ग के द्वारा निर्वाहित किया है।

गुरु रामदास जी सिक्खों के चतुर्थ गुरु तथा श्री अमृतसर साहिब के संस्थापक थे। अधिकतर विचारकों द्वारा इसी महत्व को प्रकट किया है पर उन्होंने गुरु जी की वाणी की साहित्यिक महत्ता को पूर्ण तथा विस्तृत रूप में वर्णित नहीं किया गुरु रामदास जी अपने चिंतन को परिवेश आधारित करने के लिए भावों को लोक-काव्य रूपों,रागों की प्रकृति के अनुकूल □ालकर प्रस्तुत करते हैं। लोक-काव्य रूपों के माध्यम से गुरु रामदास जी की वाणी में वर्णित भाव काव्य भाषा को प्राप्त होते हैं इसका वर्णन विस्तृत रूप में किया गया है।

गुरु राम दास जी वाणी में वर्णित लोक-काव्य रूप पहरे, घोड़ियाँ, लावां, करहला, वणजारा, वारां, सोलहे के माध्यम से रूपायित भावों का मूल अर्थ विश्लेषित रूप में प्रकट कर पुनः व्याख्या के द्वारा विषय को नवीन रूप देने का प्रयास किया गया है। विशेष रूप में घोडियाँ, लावां तथा वारां के माध्यम से पंजाबी संस्कृति को स्पष्ट किया गया है। गुरु रामदास जी की वाणी में लोक-काव्य के विभिन्न रूपों के साथ-साथ ज्ञान का संगम देखा जा सकता है। गुरु रामदास जी की वाणी की आभा सभी पक्षों से अद्वितीय है उनकी वाणी में समकालीन जीवन के साथ ही आध्यात्मिक, रहस्यवादी अनुभवों की अभिव्यंजना झलकती है।

गुरु रामदास जी की वाणी में भाव, राग, रस इत्यादि लोक-काव्य के रूपों के साथ एकस्वर होकर प्रकट हुए हैं और इन्हीं वर्णित लोक-काव्य रूपों का समाजिक, भावनात्मक, दार्शिनक पक्षों से विश्लेषण किया गया है। गुरु जी ने वाणी की विषय

वस्तू, मूल अर्थ को लोक-काव्य रूपों की प्रकृति के अनुसार □ालकर लोक-काव्य के स्वाभाविक रूप को बदलकर नया कलात्मक रूप दिया है। गुरु जी द्वारा वाणी में पंजाबी भाषा का प्रयोग वाणी के कलात्मक पक्ष को और निखार देता है। गुरु जी की वाणी की शब्दावली युग का वास्तविक बिम्ब प्रस्तुत करने में सक्ष्म है। गुरु जी वाणी के माध्यम से असंगठित मनुष्य को संगठित कर गुरुमुख बनाते हैं जो खुद तो पुनःचेतन होता ही है और पुनः चेतना से विकसित अपने व्यक्ति के द्वारा समाज को भी विकास की ओर अग्रसर करता है

गुरु रामदास जी की वाणी में समाजिक संस्कारों का वर्णन केवल लोक को शिक्षा देने के नज़रिए से ही किया गया है क्योंकि लोक समाज की भाषा तथा अनुष्ठानों से अवगत था पर पर गुरु जी के द्वारा जन्म, विवाह, मृत्यु के अवसर पर की जाने वाली समाजिक रस्मों के प्रयोग का खंडन किया है। गुरु जी के द्वारा संस्कारों तथा अनुष्ठानों को केवल वाणी का संदेश संचारित करने का ही आधार बनाया गया। गुरु जी की वाणी में वर्णित लोक-काव्य रूप युग के बिम्ब को प्रकट करते हैं। उनकी वाणी की महानता को,युग की बहुपक्षता को तथा परम सत्य की विशालता को विवेचनात्मक रूप में प्रस्तुत कर मूल भाव को परिलक्षित किया गया है। गुरु रामदास जी की वाणी में भावों का वेगमयी रूप महत्वपूर्ण पक्ष को उद्घाटित करता है जिस पक्ष में अलौकिक ज्ञान और भाव एकस्वर होकर प्रवाहित होते हैं। गुरु रामदास जी की वाणी में भावों का वेग ही लोक-काव्य के विभिन्न रूपों का सहजमयी रूप प्रस्तुत करता है इसी कारण लोक-काव्य रूप वाणी के इलाही रंग में रंगकर वाणी निहित संदेश को प्रवाहित करते जाते हैं।

गुरु रामदास जी की वाणी की विशेषता गुरु जी का व्यक्तित्व है जो कि वाणी में अंतर्निहित भाव से ऐसा संबंध स्थापित करता है जिससे वाणी का मूल अर्थ संजीव हो उठता है। गुरु जी ने लोक-काव्य रूपों के साथ अपने भावों को ओत-प्रोत कर वाणी को विलक्षणता प्रदान की है। गुरु रामदास जी की वाणी में कहीं भी ज्ञान और भावों में,मन और बुद्धि में तथा चेतन और अवचेतन में विभिन्नता परिलक्षित नहीं होती इसलिए उन्होंने लोक-काव्य रूपों में वाणी की अलौकिकता को सहजता से □ालकर प्रस्तुत किया है।

लोक-काव्य के विभिन्न रूपों को बिम्ब, प्रतीक, समाजिक संस्कारों, अनुष्ठानों को, वाणी की अलौकिकता में कला विधि के द्वारा प्रकट करना गुरु जी की कलात्मक गहनता को प्रतिष्ठित प्रस्तुत करता है। गुरु जी ने वाणी में अपने भावों को लोक-काव्य रूपों से सजाकर इसी लिए प्रस्तुत किया है तांकि वाणी का आस्वाद्यन प्रत्येक मनुष्य द्वारा जीवन प्रत्येक अवसर पर ग्रहण किया जा सके। गुरु जी ने लोक-काव्य रूपों को भावों की प्रकृति के अनुकूल □ाला है साथ ही भावों को रागों की प्रकृति के अनुसार भी प्रकट किया है। गुरु रामदास जी की वाणी में भाव, रस, राग इत्यादि लोक-काव्य रूप से एकस्वर होकर समाजिक तथा दार्शनिक पक्षों को प्रस्तुत करते हैं। गुरु जी ने लोक-काव्य रूपों को वाणी के मूल संदेश के अनुकूल □ालकर वाणी में प्रस्तुत भावों को सहजमयी रूप में कलात्मक कर दिया है। इस प्रकार गुरु जी ने लोक-काव्य रूपों के विषय वस्तु को वाणी के अलौकिक रस, राग, महानता के साथ ओत-प्रोत कर अपने संदेश को पूर्ण रूप में संचारित किया है।

Abstract

FOLK POETRY FORMS(LOK-KAVYA ROOP) IN GURU RAMDAS JI'S VANI

Guru ramdas ji holds special importance in Sikh Guru Sahiban, who contributed significantly in the ceartion of Sri Guru Granth Sahib Ji.Guru Ramdas Ji was expert in creation of vani like his predecessors. Guru Ramdas Ji composed the vani in 31 ragas, in his vani, along with the combination of different ragas he has expressed high divine feelings through various folk-poetry forms. Guru ji used various folk-poetry forms and different methods of creation only to take vani out of the supernatural realm and make it acceptable to the cosmic realm because he wanted to compose speech not for any special group but for the general public. That's why he made the basis of various methods of folk singing adopted to express the joy and gaiety of the folk mind.

Folk poetry is a pure reflection of the human heart, in which the real and natural form of the sediments of the folk mind is presented. The spontaneous and popularly accepted expression of the sentiments arising in the public heart appears through the forms of folk-poetry. The basis of the movement of the public mind is collective consciousness, experiences manifested through folk-poetry, in which the live form of attachment, disharmony, joy, sadness, coincidence and disconnection of

public life is reflected. the true form of this living form of folk can be seen in vani of Guru Ramdas Ji. He made living folk-poetry forms the basis of transmitting the divine message of Guruvani through singing and shruti, through which he expressed his feelings more and widely immersed. In Guru Ramdas Ji's vani folk-poetry forms (lok-kavya roop) topic is new and original vision, because under this topic the description of folk-poetry forms has been presented in Hindi language with detail, which will be useful for Hindi readers.re-interpretation of the above folk-poetry forms is presented by revealing the true and analyzed form of the basic meanings of the expressions described in the vani of Guru Ramdas Ji through karhla, vanjara, lavan, ghodiyan, pahere, solah. An attempt has been made to give a new look to this topic.folk poetry forms used by guru ji make man aware of the world spread around and point towards the right goal of life. The form of folk poetry used by Guru ji's vani has been presented in an analyzed form so that everyone can get the true essence of his vani.

सारांश

गुरु रामदास जी की वाणी में लोक–काव्य रूप

श्री गुरु ग्रंथ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की सृजना में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले सिक्ख गुरु साहिबान में गुरु रामदास जी विशेष महत्व रखते हैं वह अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की भांति वाणी सृजन में माहिर थे।गुरु रामदास जी ने वाणी की रचना 31 रागों में की,उनकी वाणी में विभिन्न रागों के संयोजन के साथ साथ विभिन्न लोक–काव्य रूपों के माध्यम से उच्च दैवी भावों की अभिव्यंजना की है।गुरु जी ने वाणी को अलौकिक दायरे से बाहर निकालकर लौकिक क्षेत्र के लिए ग्रहनीय बनाने के लिए ही विभिन्न लोक–काव्य रूपों तथा शिल्प की विभिन्न विधियों का प्रयोग किया क्योंकि वह वाणी की रचना किसी विशेष समूह के लिए न करके जनसाधारण के लिए करना चाहते थे इसलिए उन्होंने लोक मन की खुशी,उल्लास को व्यक्त करने के लिए अपनाई जाने वाली लोक गायन की विविध विधियों को आधार बनाया।

लोक काव्य मनुष्य हृदय का शुद्ध प्रतिबिंब होता है जिसमें लोक मन के भावों का यथार्थ और स्वाभाविक रूप प्रस्तुत होता है।लोक हृदय में उठने वाले भावों की सहज तथा लोक स्वीकृत अभिव्यक्ति लोक–काव्य के रूपों के द्वारा प्रकट होती है।लोक के इस जीवंत रूप का गुरु रामदास जी की वाणी में सच्चा रूप देखने को मिलता है उन्होंने गायन और श्रृति के द्वारा जीवित रहने वाले लोक–काव्य रूपों को गुरुवाणी के इलाही संदेश को संचारित करने का आधार बनाया जिनके माध्यम से उन्होंने अपने भावों का अधिकाधिक और व्यापक रूप में विर्सजन किया। गुरु रामदास जी की वाणी में लोक–काव्य रूप विषय के अंतर्गत लोक–काव्य रूपों का वर्णन संकेत मात्र न करके विस्तार सहित हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया गया है जो कि हिन्दी पाठकों के लिए उपयोगी होगा।गुरु रामदास जी की वाणी में वर्णित करहला,वणजारा,लावां,वारां,घोडियाँ,पहरे सोलहा लोक–काव्य रूप के माध्यम से जो भाव रूपायित हुए हैं उनके मूल अर्थों का सही तथा विश्लेषित रूप प्रकट कर उपरोक्त लोक–काव्य रूपों की पुनःव्याख्या प्रस्तुत कर विषय को नवीन रूप देने का प्रयत्न किया गया है।गुरु जी द्वारा प्रयुक्त लोक काव्य रूप मनुष्य को चारों ओर

फैले संसार के बारे में जागरूक करते हुए जीवन को सही लक्ष्य की ओर इंगित करते हैं।गुरु जी की वाणी को लोक काव्य रूपों के विश्लेषित रूप में इसीलिए प्रस्तुत किया गया है तांकि वाणी का आस्वाद्यन सभी प्राप्त कर सकें।

ਸਾਰ

ਗੁਰੂ ਰਾਮਦਾਸ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਰੂਪ

ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਵਿੱਚ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਯੋਗਦਾਨ ਦੇਣ ਵਾਲੇ ਸਿੱਖ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬਾਨ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਰਾਮਦਾਸ ਜੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਮਹੱਤਵ ਰੱਖਦੇ ਹਨ। ਉਹ ਆਪਣੇ ਪੂਰਵਵਰਤੀ ਗੁਰੂਆਂ ਵਾਂਗ ਬਾਣੀ ਸਿਰਜਣ ਵਿੱਚ ਮਾਹਿਰ ਸੀ। ਗੁਰੂ ਰਾਮਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਬਾਣੀ ਦੀ ਰਚਨਾ 31 ਰਾਗਾਂ ਵਿੱਚ ਕੀਤੀ,ਉਨਾਂ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਵਿਭਿੰਨ ਰਾਗਾਂ ਦੇ ਸੰਯੋਜਨ ਦੇ ਨਾਲ ਨਾਲ ਵਿਭਿੰਨ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਰੂਪਾਂ ਦੇ ਮਾਧਅਮ ਨਾਲ ਉੱਚ ਦੈਵੀ ਭਾਵਾਂ ਦੀ ਅਭਿਵਿਅੰਜਨਾਂ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਬਾਣੀ ਨੂੰ ਅਲੌਕਿਕ ਦਾਇਰੇ ਵਿੱਚੋਂ ਬਾਹਰ ਕੱ ਕੇ ਲੌਕਿਕ ਖੇਤਰ ਲਈ ਗ੍ਰਹਿਣ ਯੋਗ ਬਣਾਉਣ ਲਈ ਵਿਭਿੰਨ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਰੂਪਾਂ ਅਤੇ ਸ਼ਿਲਪ ਦੀਆਂ ਵਿਭਿੰਨ ਵਿਧੀਆਂ ਦਾ ਪ੍ਰਯੋਗ ਕੀਤਾ ਕਿਉਂਕਿ ਉਹ ਬਾਣੀ ਦੀ ਰਚਨਾ ਕਿਸੇ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਸਮੂਹ ਲਈ ਨਾ ਕਰਕੇ ਜਨਸਾਧਾਰਣ ਦੇ ਲਈ ਕਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਸੀ ਇਸ ਲਈ ਉਨਾਂ ਨੇ ਲੋਕ ਮਨ ਦੀ ਖੁਸ਼ੀ ਨੂੰ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਨ ਲਈ ਵਰਤੀ ਜਾਣ ਵਾਲੀ ਲੋਕ ਗਾਇਨ ਦੀਆਂ ਵੱਖ ਵੱਖ ਵਿਧੀਆਂ ਨੂੰ ਆਧਾਰ ਬਣਾਇਆ

ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਮਾਨਵ ਮਨ ਦਾ ਸ਼ੁੱਧ ਪ੍ਰਤੀਬਿੰਬ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਲੋਕ ਮਨ ਦੇ ਭਾਵਾਂ ਦਾ ਸੱਚਾ ਤੇ ਸੁਭਾਵਿਕ ਰੂਪ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਲੋਕ ਮਨ ਵਿੱਚ ਉਠਣ ਵਾਲੇ ਭਾਵਾਂ ਦੀ ਸਹਿਜ ਅਤੇ ਲੋਕ ਪ੍ਰਵਾਨਿਤ ਅਭਿਵਿਅਕਤੀ ਲੋਕ ਰੂਪਾਂ ਦੇ ਮਾਧਅਮ ਕਾਵਿ ਨਾਲ ਪ੍ਰਗਟ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।ਲੋਕ ਮਨ ਦੀ ਗਤੀ ਦਾ ਆਧਾਰ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਗਟ ਹੋਣ ਵਾਲੀ ਸਮੂਹਿਕ ਚੇਤਨਾ,ਅਨਭੂਤੀਆਂ ਹਨ ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਲੋਕ ਜੀਵਨ ਦੇ ਰਾਗ ਵਿਰਾਗ,ਖੁਸ਼ੀ ਗਮੀਂ,ਸੰਯੋਗ ਵਿਯੋਗ ਦਾ ਜੀਵੰਤ ਰੂਪ ਝਲਕਦਾ ਹੈ। ਲੋਕ ਦੇ ਇਸ ਜੀਵੰਤ ਰੂਪ ਦਾ ਗੁਰੂ ਰਾਮਦਾਸ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਸੱਚਾ ਰੂਪ ਦੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦਾ ਹੈ।ਉਨਾਂ ਨੇ ਗਾਉਣ ਤੇ

ਸੁਣਨ ਦੁਆਰਾ ਜੀਵਿਤ ਰਹਿਣ ਵਾਲੇ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਰੂਪਾਂ ਨੂੰ ਗੁਰੂਬਾਣੀ ਦੇ ਇਲਾਹੀ ਸ਼ੰਦੇਸ਼ ਨੂੰ ਸੰਚਾਰਿਤ ਕਰਨ ਦਾ ਆਧਾਰ ਬਣਾਇਆ ਜਿਸਦੇ ਮਾਧਿਅਮ ਨਾਲ ਉਨਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਭਾਵਾਂ ਦਾ ਜਿਆਦਾ ਤੋਂ ਜਿਆਦਾ ਅਤੇ ਵਿਆਪਕ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਵਿਸਰਜਨ ਕੀਤਾ। ਗੁਰੂ ਰਾਮਦਾਸ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਰੂਪ ਵਿਸ਼ਾ ਨਵੀਨ ਤੇ ਮੌਲਿਕ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਇਸ ਵਿਸ਼ੇ ਦੇ ਵਿੱਚ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਰੂਪ ਦਾ ਵਰਣਨ ਸੰਕੇਤ ਵਿੱਚ ਨਾ ਕਰਕੇ ਵਿਸਤਾਰ ਸਹਿਤ ਹਿੰਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ ਜੋ ਕਿ ਹਿੰਦੀ ਪਾਠਕਾਂ ਲਈ ਉਪਯੋਗੀ ਹੋਵੇਗਾ। ਗੁਰੂ ਰਾਮਦਾਸ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਵਰਣਿਤ ਕਰਹਲਾ, ਵਣਜਾਰਾ, ਲਾਵਾਂ,ਘੋੜੀਆਂ, ਪਹਿਰੇ, ਸੋਲਹੇ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਰੂਪ ਦੇ ਮਾਧਿਅਮ ਨਾਲ ਜਿਹੜੇ ਭਾਵ ਰੂਪਾਇਤ ਹੋਏ ਹਨ ਉਨਾਂ ਦੇ ਮੂਲ ਅਰਥਾਂ ਦਾ ਸਹੀ ਤੇ ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਿਤ ਰੂਪ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰ ਉਪਰੋਕਤ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਰੂਪਾਂ ਦੀ ਪੁਨਰ ਵਿਆਖਿਆ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਕਰ ਨਵਾਂ ਰੂਪ ਦੇਣ ਦਾ ਪ੍ਰਯਤਨ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਯੁਕਤ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਰੂਪ ਮਾਨਵ ਦੇ ਚਾਰੇ ਪਾਸੇ ਫੈਲੇ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਬਾਰੇ ਜਾਗਰੂਕ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਸਹੀ ਲਕਸ਼ ਦੇ ਵੱਲ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਕਰਦੇ ਹਨ।ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਨੂੰ ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਿਤ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਇਸ ਲਈ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਕੀਤਾ ਹੈ ਤਾਂ ਕਿ ਬਾਣੀ ਦਾ ਰਸ ਸਾਰੇ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰ ਸਕਣ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी (चार पोथियां), सकत्तर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर, जून 2005

सहायक ग्रंथः

हिन्दी पुस्तकें:

अनु, रवि कुमार: हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1990.

कुमार, विमल (डॉ.): सौन्दर्यशास्त्र के तत्व, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1967.

केदारनाथ सिंह: आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सुभाष नगर, दिल्ली, 1971.

गुलाबराय: काव्य के रूप, आत्माराम एण्ड़ संस, कशमीरी गेट, दिल्ली, 1989.

---------- सिद्धांत और अध्ययन, आत्माराम एण्ड़ संस, कशमीरी गेट, दिल्ली, छठा सं, 1985.

गुलाटी, यश: सूफी कविता की पहचान, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979.

गोयन्दका, जयदयाल: नवधा भक्ति, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1994.

चतुर्वेदी, रामस्वरूप: मध्यकालीन हिन्दी काव्य भाषा , लोक भारती प्रकाशन, 15, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, प्र.सं.1974.

चतुर्वेदी, ऋषिकुमार: रस सिद्धांत, ग्रंथायन सर्वोदय नगर, अलीगढ़, प्र.सं.1971.

चतुर्वेदी, द्वारकाप्रसाद: शब्द अर्थ कौस्तुभ, राम नारायण लाल पब्लिशरज़, 1957.

जाधव, हुकुमचंद — घुमंतू जातियों का लोक साहित्य और भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन, मित्तल एण्ड संस सी-32 आर्य नगर सोसायटी, दिल्ली, 2014.

तिवारी, रामानंद: — हमारी जीवन्त संस्कृति, भारती पुस्तक मंदिर, भरतपुर, 1972.

धर्मपाल: — राजस्थान, नवयुग पब्लिशरज़, चांदनी चौंक, दिल्ली-6, 1968.

नीरज: — दर्द दिया है, आत्माराम एण्ड सन्ज़ प्रकाशन, कशमीरी गेट, दिल्ली, 2006.

नगेन्द्र: — काव्य बिम्ब, नेशनल पब्लिंशिग हाऊस, दिल्ली, 1967.

पद्म, प्यारा सिंह: — गुरु रामदास जी की वाणी, भाषा विभाग, पटियाला, पंजाब, 1960.

पंत, सुमित्रानंदन: — पल्लव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966.

पाल, हरि सिंह: — ब्रज लोक काव्यःसमाजिक संदर्भ, नीरज बुक सैंटर, दिल्ली, प्र.सं 2005.

---------- — लोक काव्य के क्षितिज, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं 2005.

पाण्ड़ेय, राजबली: — हिन्दु संस्कार समाजिक तथा धार्मिक अध्ययन, सुरभारती प्रकाशन, चैखम्बा, वाराणसी, पंचम सं. 1995.

पाण्डेय, सुधाकर: — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रतिनिधि निंबध, राधाकृष्ण प्रकाशन, द्वितीय सं. 1972.

पुरूषार्थी, शाकर: — ोला मारू रा दूहा, भाषा विभाग, पंजाब पटियाला, 1960.

बाठ, सुखविन्दर कौर: — कबीर का लोकतात्विक चिन्तन, वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2007.

---------- पंजाब के संस्कारगत लोकगीतों का विश्लेषण, शिवहरि प्रकाशन, कबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली, 2002.

बोरा, राजमल: भाव, उद्वेग और संवेदना, नेशनल पब्लिंशिग हाउस, दिल्ली, 1984.

भ्रमर, रवीन्द्र: हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1961.

मुहम्मद, नज़ीर: कबीर के काव्य रूप, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, प्र.सं1971.

राजा, बुद्धिराजा: देव के काव्य में अभिव्यक्ति-विधान, तेज प्रकाशन, अंसारी रोड़, दिल्ली, 1975.

राजे, सुमन: काव्य-रूप सरंचना उद्भव और विकास, साहित्य रत्नालय, गिलिस बाज़ार, कानपुर, प्र.सं.1989.

राठौड़, गणपत: बंजारा लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, चन्द्रलोक प्रकाशन, 128/106 जी, कानपूर, 2002.

लाल, लक्ष्मीनारायण: हिन्दी कहानियों में शिल्प विधि का विकास, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, प्र.सं 1953.

वर्मा, अलका रानी: धर्मवीर भारती का काव्य शिल्प, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली, प्र.सं 1995.

वोहरा, आशानन्द: काव्य सृजन प्रकिया, ज्ञान ज्योति प्रकाशन, बंगाली महल्ला, अंबाला कैन्ट, 1972.

शुक्ल, उमेशचन्द्र: हिन्दी व्याकरण: रस-छंद- अलंकार सहित वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्र.सं 2000.

शुक्ल, जयश्री(संपा): लोक साहित्य की प्रासंगिकता, भावना प्रकाशन

चतुर्वेदी, राजेश(संपा) पटपड़गज, दिल्ली, प्र.सं, 2014.

शुक्ल, रामचन्द्रः चिन्तामणि (भाग 1) विचारात्मक निबंध, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, 1947.

शुक्ल, सच्चिदानंदः हिंदू धर्म के सोलह संस्कार, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2019.

शर्मा, ओम प्रकाश(डॉ.): अलंकार विधान, पंजाब स्टेट यूनिवर्सिटी, टेक्सट बुक बोर्ड, प्र.सं 1979.

शर्मा, देवदतः काव्य और काव्य रूप, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं, 1980.

शर्मा, वेंकटः हिन्दी मुहावरे और लोकोक्तियां अर्थ और प्रयोग, राजस्थानी ग्रन्थगार, जोधपुर, प्र.सं 2000.

शास्त्री, शर्मा, ओम प्रकाशः हिन्दी गद्य साहित्य में अलंकार योजना, आर्य बुक डिपो, करौल बाग, नई दिल्ली, प्र.सं जून 1977.

सत्येन्द्रः मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1960.

सहगल, मनमोहनः गुरु ग्रंथ साहिब एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, भाषा विभाग, पटियाला, पंजाब, तीसरा सं, 2008.

स्वामी, रामेश्वर लालः हमारे संस्कार एवं रीति रीवाज, चैपड़ा बुक कार्नर, मालवीय नगर, 2010.

त्रिगुणायत, गोबिंदः हिंदी की निर्गुण धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, न्यू ईरा प्रेस, इलाहाबाद, 1961.

त्रिभुवन सिंहः हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग ग्रंथ, अभय प्रकाशन, कानपुर, 1990.

कोश ग्रंथः

हिन्दी कोश ग्रंथः

नगेन्द्र(सं): मानविकी पारिभाषिक कोशःसाहित्य खंड, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

दास, श्यामसुंदर(सं): हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1970.

पाठक, पंडित रामचन्द्र: भार्गव आदर्श हिन्दी कोश, भार्गव बुक डिपो चौंक, 1964.

शुक्ल, रामचन्द्र(सं): लोकभारती बृहत प्रमाणिक हिन्दी कोश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, ग्यारहवां सं 2004.

वर्मा, धीरेन्द्र(सं): हिन्दी विश्वकोश, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्र.सं 1960.

वर्मा, रामचन्द्र(सं): मानक हिन्दी कोश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1964.

पंजाबी पुस्तकें:

अमृतपाल कौरः गुरमति काव्यः स्वरूप सिद्धांत और स्थिति, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 2014.

अर्शी, निरवैर सिंहः बाणी गुरु रामदास आलोचनात्मक अध्ययन आनंदपुरी पब्लिंशिग हाउस, आनंदपुर साहिब जुलाई, 1990.

अशविंदर कौरः लावां समाजिक ते आध्यात्मिक दृष्टि, नाद प्रगास, प्रकाशन, अमृतसर, 2017.

कज़ाक, कृपालः लोक परम्परा और कबीला सभ्याचार, सप्त सिंधू पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1994.

कसेल, कृपाल सिंहः पंजाबी साहित्य का इतिहास, लाहौर बुक शॉप, लुधियाना, 2009.

खालसा, गुरबचन सिंह: गुरमति रहित मर्यादा, धर्म प्रचार कमेटी, शिरोमणि गृरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, 2008.

गुरदीप सिंहः गुरमति सभ्याचार और भाई गुरदास, रवि प्रकाशन, हाल बाज़ार, अमृतसर, प्र.सं.1991.

गुरदेव सिंहः काव्य अलंकार, पवित्र प्रमाणिक प्रकाशन, पटियाला, 1987.

गिल्ल, अमरजीत सिंहः विआह दीआं रहुरीतां ते पंजाबी लोकगीत, रवि साहित्य प्रकाशन, अमृतसर, प्र.सं 2012.

गिल्ल, महिन्द्र कौरः गुरु अर्जुन देवः जीवन ते बाणी, नेशनल बुक शॉप, दिल्ली, 1975.

---------- आदि ग्रंथ लोक रूप, नवयुग पब्लिशरर्ज, दिल्ली, 2002.

---------- बाणी विवेचन, आर्सी पब्लिशरर्ज़, चांदनी चौंक, दिल्ली, 1995.

---------- बाणी सार, नवयुग पब्लिशरर्ज़, दिल्ली, 1982.

---------- बाणी मंडल, दीपक पब्लिशरज़, 1989.

जग्गी, गुरशरन कौरः प्रेम भक्ति स्वरूप और विकास, पवित्र प्रमाणिक प्रकाशन, पटियाला, 1981.

जग्गी, रत्न सिंहः गुरु नानक व्यक्तित्व, कृतित्व और चिंतन, भाषा विभाग, पटियाला, पंजाब, मार्च 1975.

जतिन्द्र कौर(डॉ): पंजाबी लोक-काव्य रूप, यूनिस्टार बुक्स, प्राईवेट लिमिटेड, 2015.

जसवंत सिंहः पंजाब दी लुबाणा बिरादरी, समाजिक, आथिक अते राजनीतिक परिवर्तन (1849-1947), मुरब्बीआ पब्लिश्रर्ज़, कपूरथला, 2003.

थिंद, करनैल सिंहः लोकयान तथा मध्यकालीन पंजाबी साहित्य, रवि साहित्य प्रकाशन, अमृतसर, प्र.सं.1973

दीप, दलीप सिंह: काव्य-बिम्ब, पंजाब स्टेट यूनिवर्सिटी, टेक्सट बुक बोर्ड, चंडीग□, प्र.सं.1976.

दलबीर कौर: गुरमति काव्य विच लोकधारा, सप्तरिशि पब्लिकेशन, चंड़ीग□, 2016.

धीर, कुलदीप सिंह: गुरु रामदासःजीवन ते वाणी, नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली, 2012.

नाहर सिंह: लोक काव्य की सृजन प्रक्रिया, लोकायत प्रकाशन, एस.सी.ओ. 26-27, चण्डीगढ़, 2006.

नारंग, संत मुखतिआर सिंह: कुछ धरमां दीआं अंतिम रस्मां, गुरमति प्रकाशन केन्द्र मुहल्ला गुर नगर, कुराली रोड़, रोपड़ प्र. सं., 1999.

नूर, सतिन्दर सिंह: लोकयान साहित्य ते सभ्याचार, पंजाबी अकादमी, दिल्ली, प्र.सं., 1994.

प्रीतम सिंह: पंजाबी साहित्य विच वीर काव्य दा इतिहास, भाषा विभाग, पटियाला, पंजाब, 1988.

प्रीतइंदर सिंह: वारां गुरु रामदासःपुनः मूल्यांकन, लोकगीत प्रकाशन, चंडीग□, 2011.

बावा, जे एस: श्री गुरु रामदास जीवन, दर्शन ते रचना, श्री गुरु रामदास अवतार पुरब कमेटी, अमृतसर 1990.

ब्रह्मजगदीश सिंह: गुरु रामदास जीवन ते बाणी, वारिस शाह फाउडेशन, अमृतसर, 2016

बाणी गुरु रामदास जी (गउड़ी दी वार) पाठ ते विश्लेषण, वारिस शाह फाउडेशन, अमृतसर, 2009.

वेदी, भगत सिंह: पंजाबी दा वीर काव्य एक अध्ययन, लोकगीत प्रकाशन, चंडीगढ़, 2016.

मध्यकालीन भक्ति काव्य दी भूमिका, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, प्र.सं.1990.

भाई, वीर सिंह: अष्ट चमत्कार, भाग-1, वेस्ट इंडिया प्रेस, 1976.

भट्ठल, रविन्द्र सिंह: श्री गुरु ग्रंथ साहिब विभिन्न पासार, पंजाबी साहित्य अकादमी, लुधियाना, 2005.

मनमोहन सिंह: गुरमति काव्य दा बहुपखी अध्ययन, मनदीप प्रकाशन, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली, 1993.

मनसुखानी, गोबिंद सिंह: गुरु रामदासः जीवन वाणी ते फलसफा, लोक साहित्य प्रकाशन, ग्रीन एवनीयू, अमृतसर, प्र.सं 1997.

महिंदर सिंह: सिक्ख संस्कार अते मर्यादावां, धर्म प्रचार कमेटी अमृतसर, 1983.

महांकवि, भाई संतोख सिंह: श्री गुरु रामदास जी दा जीवन वृतांत, धर्म प्रचार

(लेखक), कृपाल सिंह(संपा) कमेटी,अमृतसर, 2008.

वणजारा बेदी, : पंजाबी साहित्य इतिहास की लोकरूढ़िया, लोक प्रकाशन,

सोहिंदर सिंह: जे-11/80, राजोरी गार्डन, नई दिल्ली, 1982.

---------- लोकधारा अते साहित्य, लाहौर बुक शॉप, लुधियाना, 1986.

विद्यावती: गुरु रामदासःजीवन अते बाणी, संगम पब्लिशरज़, समाना, 2005.

वीर सिंह: संथया श्री गुरु ग्रंथ साहिब (सात पोथियां), खालसा समाचार, हाल बज़ार, अमृतसर, प्र.सं 1963.

शाही, ऊधम सिंह: पंजाबी सूफी काव्य दा वैज्ञानिक अध्ययन, रवि साहित्य प्रकाशन, अमृतसर प्र.सं. 2003.

शेर, शेर सिंह: बार दे ोले, हिन्द पब्लिशरज, अमृतसर, 1954.

साहिब सिंह: जीवन वृतांतः श्री गुरु रामदास जी, सेवा सिंह ब्रदरज़, अमृतसर, 1968.

सुखजिंदर कौर: गुरु रामदास जी दीआं वारां विच विचारधारक रूपांतरण, लोकगीत प्रकाशन, चंडीगढ़, 2017.

सुखविंदर सिंह: लोक वारां अते आध्यात्मिक वारां, बलवंत प्रकाशन, जलंधर, प्र.सं, 2003.

..... :बाणी-सरोकार, सहगल प्रिंटरज़, जलंधर, प्र.सं, 2011.

सहराई, हरनाम दास: रामदास सरोवर नाते, दीपक पब्लिशरज़, जलंधर, 1992.

सतिंदर सिंह: आधुनिक पंजाबी काव्य रूप अध्ययन, पंजाबी अध्ययन स्कूल, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर, मार्च 1980.

सोढ़ी, हिम्मत सिंह: गुरु रामदास जीवन और रचना, पब्लिकेशन ब्यूरो पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 1995.

हरि सिंह: दैवी जीवनःगुरु अर्जुन देव जी, सारदा पंजाबी पब्लिशरज़, तृतीय सं 1960.

हरचरन कौर(सं): मध्यकालीन पंजाबी साहित्य पुनः विचार, बलवंत प्रकाशन, जलंधर, प्र.सं, 2003.

हरवंत कौर: गुरु रामदासः जीवन, चिंतन और वाणी, रूही प्रकाशन, अमृतसर, 2009.

पंजाबी कोश ग्रंथः

लाबां, राजिंदर सिंहः साहित्य कोश पारिभाषिक शब्दावली, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला

नाभा, काहन सिंहः गुरशब्द रत्नाकर महानकोश, इनसाईक्लोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, भाषा विभाग, पटियाला पंजाब, 1960.

पद्म, प्यारा सिंहः गुरु ग्रंथ संकेत कोश पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 2009.

वणजारा बेदी, पंजाबी लोकधारा विश्वकोश, नेशनल बुक शॉप, नयी

सोहिंदर सिंहः दिल्ली,2008.

अंग्रेजी पुस्तकेंः

एच.ए.रोज़ः ग्लासरी ऑफ दि ट्राईबस एण्ड कास्टस ऑफ दि पंजाब एण्ड नारथ वैस्ट फरंटीअर प्रोविंयस, जिलद 3, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, 1970.

यह सत्यापित किया जाता है कि शोधार्थी पवनदीप कौर की निम्नलिखित पत्रिकाएं प्रकाशित हैं

1. पत्रिकाः-मीरायन ISSN 2455-6033

परिपत्र का विषयः-काव्य और काव्य-रूप (68-70)

2. पत्रिकाः-साहित्य सेतू ISSN 2475-1359

परिपत्र का विषयः-लोक-काव्य रूप

शोध निर्देशिका

डा.नीतू कौशल

ISSN 2455-6033

मीरायन

यू.जी.सी. केयरलिस्ट की भारतीय भाषाओं (इण्डियन लेंग्वेजेज) की पत्रिकाओं में क्र.सं. 62 पर सम्मिलित

वर्ष-15 अंक : 4 (पूर्णांक - 60)

दिसम्बर 2021- फरवरी 2022

मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़ की त्रैमासिक शोधपत्रिका

11. डिम्पल शेखावत, उदयपुर (राजस्थान)
गांधीजी की अहिंसक अवधारणा पर भारतीय दर्शनों का प्रभाव (महाभारत के विशेष संदर्भ में) 52–60

8. काव्य मीमांसा पक्ष

12. डॉ. प्रियंका यादव, जयपुर (राजस्थान)
रीतिकालीन ब्रजभाषा काव्य में कृष्ण-भक्ति का स्वरूप 61–64

13. डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा, टोंक (राजस्थान)
काव्य सृजन में बिम्बों की भूमिका 65–67

14. पवनदीप कौर, पटियाला (पंजाब)
काव्य और काव्य-रूप 68–70

9. साहित्यकार पक्ष

15. अंजना शर्मा एवं डॉ. वीणा छंगानी, जयपुर (राजस्थान)
प्रगतिवादी कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' और उनकी रचनाएँ 71–74

16. डॉ. शिवजी चौहान, होजाई (असम)
डॉ. भूपेन हजारिका के गीतों के विविध पक्ष 75–81

10. भाषायी अन्तर्सम्बन्ध पक्ष

17. डॉ. वीरेन्द्र सिंह बर्त्वाल, देहरादून (उत्तराखण्ड)
गढ़वाली और हिन्दी का अन्तर्सम्बन्ध 82–86

11. संस्कृति-कला पक्ष

18. श्री ललित शर्मा, झालावाड़ (राजस्थान)
प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में श्रीराम 87–97

19. श्रीमती धर्मजीत कौर, जयपुर (राजस्थान)
राजस्थान की कतिपय लक्ष्मी प्रतिमाओं का अनुशीलन 98–101

20. डॉ. कृष्णा महावर, जयपुर (राजस्थान)
चित्रकला व रंगमंच का अन्तर्सम्बन्ध 102–105

12. पाठकदीर्घा 106–112

काव्य और काव्य-रूप

- पवनदीप कौर

साहित्य और समाज का संबंध अटूट है। लेखक को लिखने की प्रेरणा समाज से मिलती है क्योंकि लेखक समाज में रहता है और समाज से विमुख होकर वह साहित्य की रचना नहीं कर सकता। साहित्य के माध्यम से वह अपने भावों को सहजमयी रूप में प्रकट करता है। साहित्य के अंतर्गत वह सब कलात्मक अभिव्यक्तियाँ शामिल हैं जो रचनाकार को प्रेरित करती है। इसीलिए वह अपने जीवन के अनुभवों को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकट करता है। रचनाकार अपने अनुभवों को प्रकट करने के लिए साहित्य की किसी भी विधा का आश्रय ले सकता है। सभी साहित्य विधाओं में से काव्य ही एक ऐसी विधा है जो सबसे ज्यादा रस प्रदान करती है। कवि काव्य के माध्यम से कल्पना का सहारा लेकर अलग-अलग प्रकार के सुंदर विचारों के साथ मनुष्य जीवन की विभिन्न अनुभूतियों की झांकियों को प्रस्तुत करता है। काव्य एक ऐसा माध्यम है जिसके जरिए रचनाकार अपने आप को भूल कर चिंतन में खोकर कल्पना के सहारे जीवंत जागती प्रतिमाओं को अपने छंदों में, शब्दों में साकार कर देता है। "काव्य संसार के प्रति कवि की प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की श्रेय को प्रेय देने वाली अभिव्यक्ति है।"[1] कवि साधारण मनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक भावुक और विचारशील होता है किंतु वह अपने काव्य के माध्यम से अनुभूतियों को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है कि विधाता की इस नाशवान सृष्टि को भी वह अमरता प्रदान कर देता है और इसे पढ़ने वाले पाठकों को वह अभिभूत तभी कर सकता है जब वह पाठक के स्तर पर जाकर उसके भावों को ही समान भाव प्रकट करेगा और पाठक उसके विचारों से साधारणीकृत हो जाएगा। इसके लिए कवि का सहृदय होना बहुत ज़रूरी है तभी वह काव्य सृजन कर सकेगा और उसके काव्य सृजन की सार्थकता इसी में है कि कवि, पाठक के अंदर भी रचना के माध्यम से अपनी अनुभूति को इस प्रकार प्रकट करे कि पाठक भी उसकी अनुभूति को समान रूप में ग्रहण कर सके।

जीवन की विभिन्न घटनाओं, सहयोगी या प्रतिरोधी परिस्थितियों के प्रभावों के कारण कवि का कोमल और संवेदनशील हृदय जिन अनुभूतियों को अनुभूत करता है वह बहुत सूक्ष्म होती है, जिनको वह भाषा और शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। अनुभूति के बिना काव्य नहीं रचा जा सकता और अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए वह काव्य सृजन करता है। कवि के द्वारा सही शब्दों का चयन और उनके अभिव्यंजन अर्थों की संप्रेषण क्षमता उस की सूक्ष्म और अमूर्त अनुभूति को अभिव्यक्ति का स्थूल रूप प्रदान करती है। अनुभूति की सूक्ष्मता और अमूर्तता साधारण मनुष्य तथा पाठक की सोच और बुद्धि की पकड़ से बहुत दूर होती है इसीलिए वह अनुभूति के लिए प्रयुक्त अभिव्यक्ति के स्थूल माध्यम को पहचान देने लगता है और काव्य सृजन की यह सारी प्रक्रिया कवि की आत्मानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति से संबंधित अलग-अलग काव्य रूपों पर निर्भर करती है।

हमारे चारों ओर पदार्थ संसार की सभी वस्तुएँ रूपों के माध्यम से ही प्रकट होती हैं। संसार में कोई भी वस्तु रूप के बिना नहीं है। किसी भी वस्तु के बाहरी संपर्क से हमें जो अनुभव होता है वही उसका रूप है और रूप के कारण ही किसी वस्तु को निश्चित अर्थ मिलते हैं। लिखने के लिए कवि को रूप दृष्टि की ज़रूरत पड़ती है। रूप, रचना का आंतरिक कार्य है, यह कार्य रचना आरंभ करते समय शुरू होता है

Setu सेतु

** ISSN 2475-1359 **
* Bilingual monthly journal published from Pittsburgh, USA :: पिट्सबर्ग अमेरिका से प्रकाशित द्वैभाषिक मासिक *

Home

अनुक्रमणिका, जनवरी 2022

सेतु वर्ष 6, अंक 8, जनवरी 2022

सेतु के पीडीएफ़ (PDF)
डाउनलोड, कविता कोश पर

सम्पादकीय

- सम्पादकीय: अनुराग शर्मा

कथा, व्यंग्य, गद्य साहित्य

- फ़ैसला: सुषमा मुनींद्र
- सौदा: राम नगीना मौर्य
- कुनबेवाला: दीपक शर्मा
- घोड़ा एक पैर: दीपक शर्मा
- मुलायम चारा: दीपक शर्मा
- शीतयुद्ध: विजय कुमार संदेश
- अमरीकी प्याले में भारतीय चाय: हरीश नवल

विशेष

- कुमाऊँनी-हरियाणवी मिश्र-काव्य: हिमांशु पाठक

समीक्षा

- स्टेपल्ड पर्चियाँ (प्रगति गुप्ता): हंसा दीप
- सफ़र (राकेश चक्र): आचार्य नीरज शास्त्री
- वैश्विकी रामकथा (हर्षदेव माधव): अरुण कुमार निषाद

setumag.com

Setu सेतु

** ISSN 2475-1359 **

* Bilingual monthly journal published from Pittsburgh, USA :: पिट्सबर्ग अमेरिका से प्रकाशित द्वैभाषिक मासिक *

Home

लोक-काव्य रूप

पवनदीप कौर

हिन्दी विभाग, पंजाबी युर्निवर्सिटी, पटियाला। चलभाष: +91 981 401 0529

लोक-काव्य लोक जीवन की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति है। जनमानस के जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति इस के माध्यम से होती है। लोक-काव्य की उत्पत्ति मानव के जीवन के अनुभव से हुई जब वह स्वानुभूति से प्रेरित होकर दुख तथा सुख की संवेदनाओं से आंदोलित हुआ तभी काव्य उसके मुख से निकल उठा इसी लिए उस ने आरम्भ से जो कुछ अनुभव किया उसे धरोहर के रूप में सुरक्षित रखने के लिए से ही लोक-काव्य का निर्माण किया। "लोक-काव्य व्यक्ति का समाजीकरण करता है और सामाजिक जीवन में समरसता उत्पन्न करता है तथा मानव सम्बन्धों को बुनता है। लोक काव्य में लोक मानस की व्यथा, चिंता, प्रसन्नता, कल्पना, संवेदना और स्मृति की अभिव्यक्ति है।" लोक मानस की सरल भावनाओं का सच्चा रूप लोक-काव्य में ही उजागर होता है जब लोक ने अपने उद्वेगों को संगीतमय रूप में प्रस्तुत किया तब लोक-काव्य का उद्य हुआ। "लौकिक काव्य रूप लोक प्रचलित गान शैलियों अथवा लोक-काव्य के विभिन्न प्रकारों अथवा लोक गायन की विविध परिपाटियों की अनुकृति होते हैं।" लोक-काव्य रूप लोक में प्रचलित लोक-काव्य की विधियाँ हैं। जिसके माध्यम से लोक मन अपनी खुशी, उल्लास को व्यक्त करता है। "लोक काव्य रूपों से भाव लोक गीतों के विशेष रूप हैं। जिनको लोक समूह ने स्वीकृति देकर सर्वप्रिय बना लिया होता है। जन साधारण में रुचि देखकर ही विशिष्ट साहित्य के रचयिता बार-बार इन काव्य रूपों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हैं।" लोक चित की अभिव्यक्ति लोक-काव्य रूप हैं और समाज में रहने के कारण कवि का संबंध लोक समूह से

Document Information

Analyzed document	all chapter final data pawandeep kaur hindi .pdf (D164231769)
Submitted	2023-04-17 16:41:00
Submitted by	
Submitter email	cpawan35@gmail.com
Similarity	1%
Analysis address	neetukaushal29.pursuni@analysis.urkund.com

Sources included in the report

SA	**Atul Kumar (Hindi) PHD Unicode (Urkund Plagirijam).pdf** Document Atul Kumar (Hindi) PHD Unicode (Urkund Plagirijam).pdf (D158855308)	4
SA	**Punjabi University, Patiala / hindi pdf fiel.pdf** Document hindi pdf fiel.pdf (D154187256) Submitted by: chhinderpalkaur1990@gmail.com Receiver: ravidatt.kaushish.pursuni@analysis.urkund.com	6
SA	**MKK Book-1 Mohan Rakesh.pdf** Document MKK Book-1 Mohan Rakesh.pdf (D163949962)	16
SA	**Ph.D. Thesis of Janak Nandini Tripathi.pdf** Document Ph.D. Thesis of Janak Nandini Tripathi.pdf (D90683865)	10
SA	**Sushil Sokhal_AU193094.pdf** Document Sushil Sokhal_AU193094.pdf (D157709410)	6
SA	**आयुर्वेद परम्प में कौमारभृत् य-तन्त्र का स्वरूप.pdf** Document आयुर्वेद परम्प में कौमारभृत् य-तन्त्र का स्वरूप.pdf (D119605826)	1
SA	**Sandeep Kumar Singh, Ph.D. in Geography.pdf** Document Sandeep Kumar Singh, Ph.D. in Geography.pdf (D44193451)	2
SA	**Smriti Kannoje - Rasakhan ke kavya mein loksanskriti ke paridrishya - Ek anusheelan.pdf** Document Smriti Kannoje - Rasakhan ke kavya mein loksanskriti ke paridrishya - Ek anusheelan.pdf (D109815949)	2
SA	**mangal pdf thesis.pdf** Document mangal pdf thesis.pdf (D111531777)	1
SA	**MKK RP-8 Laghunatak.pdf** Document MKK RP-8 Laghunatak.pdf (D165950207)	1
SA	**Full Thesis.pdf** Document Full Thesis.pdf (D141129170)	1

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोध-छात्रा पवनदीप कौर के द्वारा **'गुरु रामदास जी की वाणी में लोक-काव्य रूप'** विषय पर शोध कार्य मेरे निर्देशन में संपन्न किया गया है। यह शोध प्रबन्ध नितान्त मौलिक एवं स्तरानुकूल है। मेरी जानकारी अनुसार इससे पहले पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला तथा अन्य किसी भी विश्वविद्यालय में इस शोध-विषय पर शोध-कार्य नहीं हुआ है। मैं इस शोध-कार्य को पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला से पीएच.डी (हिन्दी) की उपाधि हेतु परीक्षार्थ अग्रसारित करती हूँ।

दिनांकः 26/4/2023

निर्देशिका

(डॉ.) नीतू कौशल
असिस्टैंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय,पटियाला

घोषणा-पत्र

मैं पवनदीप कौर यह घोषणा करती हूँ कि **'गुरु रामदास जी की वाणी में लोक-काव्य रूप'** विषय पर पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला से पीएच.डी (हिन्दी) की शोध उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध मेरे निजी परिश्रम का परिणाम है। मेरी जानकारी के अनुसार प्रस्तुत शोध विषय पर आज तक किसी भी अन्य विश्वविद्यालय तथा अन्य किसी संस्था द्वारा कोई शोध-उपाधि प्रदान नहीं की गई। यह पूर्णतः मौलिक शोध प्रबंध है।

दिनांकः 26-04-2023

शोधार्थी

पवनदीप कौर

पवनदीप कौर

भूमिका

साहित्य और लोक का संबंध अटूट है। लोक मानस की सहज अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से ही होती है इसलिए लोक भूमि से परिचित हुए बिना श्रेष्ठ एवं कालजयी साहित्य का सृजन नहीं किया जा सकता क्योंकि लोक भूमि में लोक के उद्गार, प्रवृतियां, भावनाएं, धारणाएं, रूचियां, सामूहिक रूप में प्रकट होती हैं। लोक का अर्थ भाषाई, क्षेत्रीय, जातीय तथा एकता की भावना में बंधा ऐसा समूह है जिसके पास अपनी परंपरा अपना लोक साहित्य है। लोक अपने भीतर विभिन्न रीति रिवाजों, उत्सवों, त्योहारों का सम्पूर्ण क्षेत्र समाहित किये हुए है। इसी कारण लोक मन के भावों को लोक काव्य के माध्यम से गेय रूप में प्रकट किया जाता है। गायन की इन्हीं भावनाओं ने लोक-काव्य को जन्म दिया। जैसे लोक-काव्य की उत्पत्ति लोक समूह के क्रिया कलापों, खुशी के अवसरों पर उल्लासमयी गायन के द्वारा हुई वैसे ही काव्य की उत्पत्ति मानव के नित्य जीवन के अनुभव से ही हुई होगी। जब मनुष्य स्वानुभूति से प्रेरित होकर दुख तथा सुख की संवेदनाओं से आंदोलित हुआ होगा तभी काव्य उसके मुख से निकल उठा होगा। मनुष्य की रागात्मक प्रवृति का लयबद्ध रूप ही काव्य है। जब लोक ने अपनी भावनाओं, उद्वेगों को संगीतमयी रूप में प्रस्तुत किया तब लोक-काव्य का उदय हुआ। इसलिए लोक काव्य के माध्यम से साहित्यकार अपने साहित्य को लोकप्रिय बनाने का प्रयास करता है और अपनी रचना को लोक के विभिन्न काव्य रूपों के माध्यम से सजाकर लोकप्रिय बनाता है। लोक काव्य के इन्हीं विभिन्न रूपों का अध्ययन तथा विश्लेषण गुरु रामदास जी की वाणी के संबंध में किया गया है। गुरु रामदास जी अपने युग के प्रतिनिधि थे। वह अपने समाज के मुख और मस्तिष्क दोनों थे। गुरु रामदास जी सिक्ख धर्म के चतुर्थ गुरु होने के साथ-साथ एक महान्

कवि भी थे। उन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से समाज को शक्ति देने के साथ-साथ नई दिशा भी दी। इसीलिए उन्होंने वाणी में निहित लोक कल्याण के संदेश को लोगों तक सम्प्रेषित करने के लिए लोक-काव्य रूपों (करहला, वणजारा, वारां, घोड़ियाँ, लावां, पहरे, सोलहे) को माध्यम बनाया। गुरु रामदास जी की वाणी में चित्रित इन्हीं महत्वपूर्ण लोक-काव्य रूपों का अध्ययन किया गया है और वाणी के संदेश तथा महत्ता को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। गुरु रामदास जी की वाणी में लोक-काव्य रूप लौकिक धरातल पर प्रत्यक्ष रूप में स्पष्ट होते हैं तथा अलौकिक धरातल पर सूक्ष्म रूप में स्पष्ट हो जाते हैं। लोक जीवन से जुड़े इन्हीं रीति रिवाज़ों के माध्यम से अलौकिक धरातल संबंधी विषय प्रभु नाम स्मरण, परमात्मा, जीवात्मा आदि को रेखांकित किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध दो भागों में विभाजित किया गया है। शोध प्रबंध का प्रथम भाग सैद्धान्तिक तथा द्वितीय व्यावहारिक रूप से संबंधित है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध को सात अध्यायों में विधिपूर्वक विभाजित करके विषय के मूल भाव को दर्शाया गया है।

प्रथम अध्याय 'काव्य, काव्य रूप और लोक-काव्य रूप तथा उनका उद्भव और विकास' है। काव्य के द्वारा मानव मन की भावनाओं की सहज तथा लयात्मक अभिव्यक्ति होती है और इन्हीं भावनाओं की सहज तथा लयात्मक अभिव्यक्ति का विशेष क्रम, संख्या तथा विषय के आधार पर सजाया छन्दबद्ध रूप ही काव्य रूप कहलाता है। विभिन्न खुशी के अवसरों पर लोक मन द्वारा अपनी भावनाओं को गाकर अभिव्यक्त करना लोक-काव्य के विभिन्न रूपों को जन्म देता है। प्रथम अध्याय के अंतर्गत इन्हीं लोक प्रचलित विविध लोक-काव्य रूपों करहला, वणजारा, वारां, घोड़ियाँ, लावां, पहरे, सोलहे आदि के उद्भव और विकास को परिलक्षित किया गया है

द्वितीय अध्याय 'गुरु रामदास जी का जीवन, उनकी वाणी और उसमें प्रयुक्त लोक-काव्य रूपों की युगीन पृष्ठभूमि' है। युग की परिस्थितियों का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है। गुरु रामदास जी ने अपने युगीन परिवेश को समझा और उन्होंने उसे उत्कृष्ट बनाने के लिए लौकिक धरातल पर अनेक व्यापारों तथा भिन्न-भिन्न वस्तुओं का उत्पादन करने वाले कारीगरों को उत्साहित किया और अलौकिक धरातल पर वाणी की रचना कर जन-जन को परमात्मा से भी जोड़ा। गुरु रामदास जी के विचारों का प्रभाव वाणी में वर्णित लोक-काव्य रूपों में दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत अध्याय में लोक-काव्य रूपों का मूल्यांकन युगीन पृष्ठभूमि के संदर्भ में ही प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय 'गुरु रामदास जी की वाणी: भावगत स्वरूप' है। किसी घटना या परिस्थिति के कारण उत्पन्न होने वाले भाव मनुष्य मन में स्थायी रूप में स्थापित होते हैं। भाव हृदय को स्पर्श करने वाली रसमय क्रिया है। यह क्रिया ही मनुष्य के भीतर विभिन्न भावों को उत्पन्न करती है और इन्हीं भावों के द्वारा ही मनुष्य सुख दुख का अनुभव करता है। रचनाकार भी इन्हीं भावों को अनुभव करता है तथा इनकी अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं के माध्यम से करता है। गुरु रामदास जी ने अपनी भावनाओं का चित्रण वाणी में जीवात्मा तथा परमात्मा के माध्यम से किया है। इस अध्याय में गुरु रामदास जी की वाणी में लौकिक आधार पर परिलक्षित भावों को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करके वाणी के मूल भाव से अवगत करवाया गया है। गुरु रामदास जी ने लोक के आचार व्यवहार, रीति-रिवाजों से संबंधित भावों के वर्णन को वाणी के मूल उद्देश्य से जोड़कर प्रस्तुत किया है और इन्हीं भावों के स्वरूप को साधक वाणी के द्वारा ग्रहण कर अपना जीवन सफल बना सकता है। प्रस्तुत अध्याय में गुरु रामदास

जी के जीवन में आए भावों जैसे कि रागात्मकता, आशा-निराशा, दृढ़ता आदि को लोक-काव्य रूपों के संदर्भ में प्रकट किया गया है।

चतुर्थ अध्याय 'गुरु रामदास जी की वाणी में प्रयुक्त संस्कारगत लोक-काव्य रूप पहरे, घोड़ियाँ, लावां' है। प्रस्तुत अध्याय में लोक प्रचलित काव्य रूपों का संदर्भ देकर उन्हें वाणी के अनुसार विश्लेषित किया गया है। गुरु रामदास जी की वाणी में प्रयुक्त संस्कारगत लोक-काव्य रूपों का लोक जीवन के प्रत्येक पक्ष से गहरा संबंध दिखलाया गया है। पहरे जीवन के प्रत्येक पहर (पक्ष) को ब्यान करता ऐसा लोक-काव्य रूप है जिसमें मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के चारों पड़ावों को प्रकट किया है। जीवन के चार पड़ावों में से गृहस्थी में प्रवृत होना महत्वपूर्ण पड़ाव है। गृहस्थ जीवन की महत्ता को ब्यान करते घोड़ियाँ तथा लावां ऐसे लोक-काव्य रूप हैं जिनके बिना दाम्पत्य जीवन में प्रवेश कर पाना संभव नहीं है। घोड़ियाँ लोक-काव्य रूप में विवाह में किये जाने वाले रीति रिवाजों का वर्णन है तथा लावां वाणी का पाठ भौतिक जगत में स्त्री पुरुष को विवाह के बंधन में बाँधता है। लावां वाणी में निहित संदेश मनुष्य-मनुष्य का मिलन न करवाकर अलौकिक रूप में जीवात्मा तथा परमात्मा के मेल को प्रस्तुत करता है। यह तीनों लोक-काव्य रूप लौकिक धरातल के संस्कारों को पेश करते हैं। प्रस्तुत अध्याय में लौकिक धरातल पर इनकी महत्ता को प्रदर्शित करके वाणी के महत्व से अवगत करवाया गया है।

पंचम अध्याय 'गुरु रामदास जी की वाणी में यात्रागत लोक-काव्य रूप करहला, वणजारा' है इसमें विशेष रूप से करहला तथा वणजारा को विश्लेषित किया गया है। गुरु रामदास जी ने लोक प्रचलित करहला, वणजारा लोक-काव्य रूपों का प्रयोग वाणी के संदेश को सम्प्रेषित करने के लिए किया। करहला लौकिक व्यापार के कारण जैविक

वस्तुओं को जुटाने के लिए इधर उधर की भाग दौड़ तथा मनुष्य मन की भटकन को प्रस्तुत करता है तथा वणजारा जीवन यापन हेतू साधन जुटाने वाले व्यापार को प्रस्तुत करता लोक-काव्य रूप है। गुरु रामदास जी द्वारा मनुष्य जीवन का सही व्यापार, प्रभु नाम स्मरण को बताया गया है और परमात्मा के नाम स्मरण की महत्ता को इस अध्याय में विस्तृत रूप में विश्लेषित किया गया है।

छठा अध्याय 'गुरु रामदास जी की वाणी में वारां और सोलहे का अध्ययन' है। प्रत्येक रचनाकार अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट माध्यमों का प्रयोग करता है जिससे वह अपने भावों का प्रकटीकरण कर सके। गुरु रामदास जी वाणी के रचयिता हैं उन्होंने परमात्मा संबंधी अपने मन के भावों को विशेष लोक-काव्य रूपों वारां तथा सोलहे के माध्यम से अभिव्यंजत किया है। वारां समाज में प्रचलित वीर रस पूर्ण ऐसा लोक-काव्य रूप हैं जिसके द्वारा युद्ध के मैदान में योद्धाओं को उत्साहित किया जाता था। पुराने समय में कवि युद्ध में राजा के साथ होते थे तथा वह राजा को उत्साहित करने के साथ युद्ध के आँखों-देखे दृश्यों का वीर रसी वारां में लेखन करते थे। इन वीर रसी वारां को गायन रूप में पेश करके जनसाधारण को इतिहास तथा योद्धाओं की वीरता से परिचित करवाया जाता था। इसका प्रचलन आज भी है। गुरु रामदास जी ने लोक प्रचलित वारां का प्रयोग वाणी के आध्यात्मिक अर्थ को प्रकट करने के लिए किया है। यह प्रयोग करना ही गुरु रामदास जी की वाणी की विशिष्टता है। विचार पक्ष के लिए उन्होंने पउड़ी का प्रयोग किया है। मारू राग में रचित सोलहे वाणी में परमात्मा की प्रशंसा को प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत अध्याय में वारां तथा सोलहे के लोक पक्ष के द्वारा परमात्मा की असीमता का यशोगायन विवरणात्मक रूप में किया गया है।

सप्तम अध्याय 'गुरु रामदास जी की वाणी का शिल्प' है। शिल्प अभिव्यक्ति का साधन है। लेखक अपने भावों, विचारों को जिन उचित शब्दों, वाक्यों,अलंकारों और भाषा के प्रयोग द्वारा सजाकर अभिव्यक्त करता है उसे शिल्प कहते हैं। गुरु रामदास जी की वाणी का शिल्प पक्ष तदयुगीन भाषा के माध्यम से प्रकट किया गया है। उनकी भाषा किसी वर्ग, विशेष से प्रतिबद्ध ना होकर जन-जन के अनुकूल है क्योंकि उन्होंने वाणी की रचना सम्पूर्ण जगत के कल्याण के लिए की। गुरु रामदास जी ने सहज दृष्टि से सरल भाषा, क्षेत्रीय भाषा और अन्य भाषाओं का सर्वोत्तम रूप में प्रयोग करके गुरु वाणी के मूल अर्थ को अभिव्यंजत किया है। उन्होंने बड़ी सहजता तथा परिपूर्णता के साथ अपने विचारों को प्रकट किया है। इस तरह प्रस्तुत अध्याय में गुरु जी ने जन जीवन के निकट सम्पूर्ण भाषागत रूपों, अलंकारों, युग विशेष में प्रचलित मुहावरों के प्रयोग का वर्णन तथा अध्ययन विश्लेषणात्मक रूप में किया है।

गुरु रामदास जी के जीवन और वाणी को विभिन्न विद्वानों द्वारा अपनी शोध का विषय बनाया गया है। गुरु जी की वाणी मे वर्णित अनेक विचारों पर विविध विधियों में शोध कार्य हो चुका है तथा अधिकतर शोध कार्य पंजाबी भाषा में हुआ है पर 'गुरु रामदास जी की वाणी में लोक-काव्य रूप विषय नवीन एवं मौलिक है क्योंकि इस विषय के अंतर्गत लोक-काव्य रूपों का वर्णन संकेत मात्र न करके विस्तार सहित हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया गया है जो कि हिन्दी पाठकों के लिए उपयोगी होगा।

गुरु रामदास जी की मूल प्रतिबद्धता अपने विचारों के प्रति थी। जिसको प्रकट करने के लिए उन्होंने विविध लोक-काव्य रूपों के स्वरूप को विस्तार सहित प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार उनके पावन विचारों की गंगा जन-जन को प्रेरित करने के लिए वाणी के माध्यम से प्रकट हुई है ठीक उसी प्रकार गुरु रामदास जी द्वारा प्रयुक्त लोक-

काव्य रूप वाणी के संदेश को जन-जन तक सम्प्रेषित करते हैं। शोध-प्रबंध के अंत में उपसंहार दिया गया है जिसके अंतर्गत शोध कार्य के प्रमुख बिदुंओं पर प्रकाश डालते हुए विषय की उपलब्धियों को प्रस्तुत किया गया है। विषय को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों की पुस्तकों का आश्रय लिया गया है जिनकी सूची अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची शीर्षक के अंतर्गत दर्ज की गई है। शोध विषय विस्तृत होने के कारण त्रुटियां होना स्वाभाविक है क्योंकि वाणी के रचयिता गुरु रामदास जी दैवी शक्ति के मालिक थे उनके द्वारा रचित वाणी की गहराई को सम्पूर्ण तौर पर समझ पाना मानव बुद्धि के क्षेत्र से बाहर है।'गुरु रामदास जी की वाणी में लोक-काव्य रूप ' विषय पर शोध कार्य में मैं केवल निमित मात्र हूं। इस शेध कार्य की सम्पन्नता और सफलता के लिए सर्वप्रथम गुरु रामदास जी को सादर नमन जिनकी कृपा से अक्षर ज्ञान प्राप्त हुआ और यह शोध दृष्टि मिली है। मेरे शोध निर्देशिका डॉ. नीतू कौशल जी अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की मैं बहुत आभारी हूँ, जिनकी सुयोग्य प्रेरणा तथा प्रौढ़ अनुभव के कारण मैं इस शोध प्रबन्ध को उचित रूप देने में सक्षम हो पाई। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उनके अपनेपन, सद्भाव, प्रेरणा, अमोध दृष्टि का प्रमाण है।

मैं डॉ. सुखविन्दर कौर बाठ जी, डॉ. रवि कुमार अनु जी, डॉ. रवि दत्त कौशिक जी, डॉ. रजनी प्रताप जी के प्रति आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने अपनी मूल्यवान प्रेरणा से मेरा मार्गदर्शन किया। मैं डॉ. रीतू, डॉ.वरिन्दर, डॉ.परविन्दर, डॉ. परविंदर सिंह, डॉ. गुरजीत की भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे योग्य जानकारी देकर मेरी सहायता की।

मैं अपने पारिवारिक सदस्यों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिनके प्रेम, स्नेह के कारण मैं अपना शोध कार्य सम्पन्न कर सकी।

मैं हिन्दी विभाग के कार्यालय अधिकारियों का धन्यवाद करती हूं जिन्होंने विभागीय औपचारिकताओं को पूरा करने में सहयोग दिया।

सामग्री संचयन में मैं पंजाबी विश्वविद्यालय,पटियाला के भाई काहन सिंह नाभा पुस्तकालय, धर्म अध्ययन विभाग, पंजाबी रैफरेंस पुस्तकालय, श्री गुरु ग्रंथ साहिब अध्ययन विभाग के पुस्तकालयों के कर्मचारियों के द्वारा दिए गए सहयोग के लिए धन्यवाद करती हूँ। गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर तथा भाषा विभाग, पटियाला की भी आभारी हूँ जिन्होंने उचित समय पर पुस्तकें उपलब्ध करवाकर मेरी सहायता की।

शोध कार्य से संबंधित त्रुटियां मेरी बुद्धि और मेरे परीक्षण की हैं। शेष जो प्रशंसनीय भाग इस शोध प्रबन्ध में है वह गुरु रामदास जी के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व के कारण है। त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करते हुए शोध प्रबन्ध आपके समक्ष प्रस्तुत है।